CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

संगीताञ्जलि

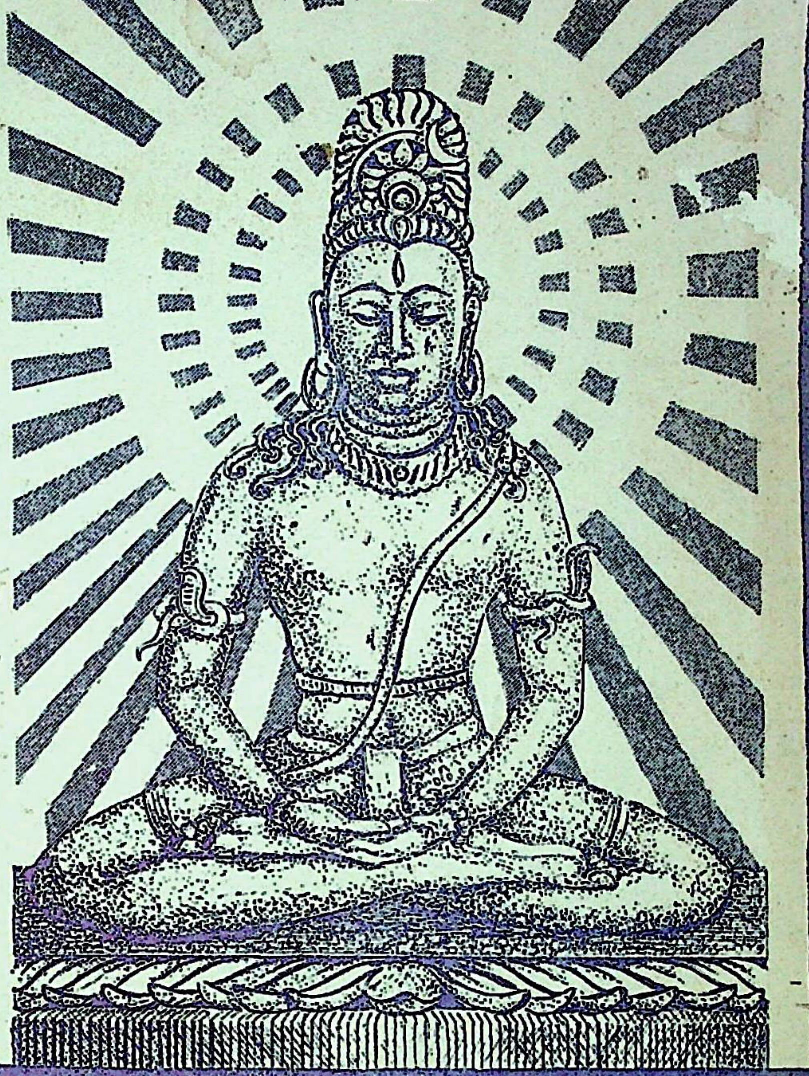

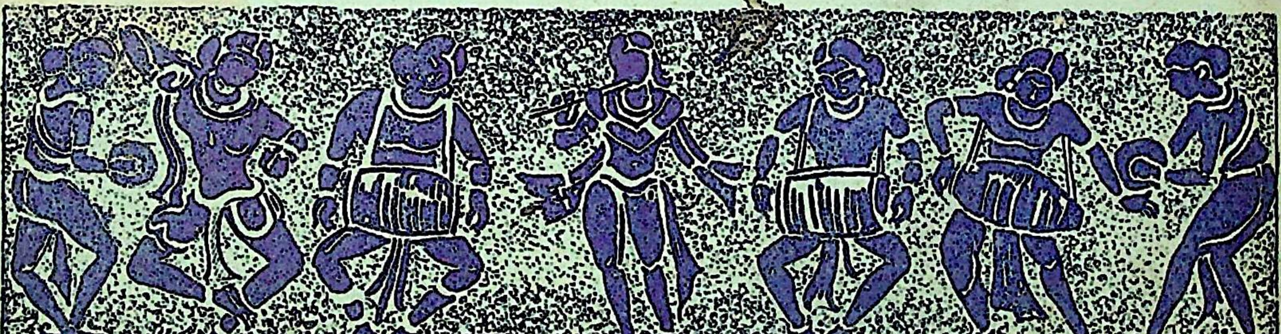

पं० ओम्कारनाथ ठाकुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५-५

संगीताञ्जलि

(षष्ठ भाग)

तृतीय पुष्प] [द्वितीय कली

लेखक और प्रकाशक—

संगीत मार्तण्ड, संगीत महामहोदय, संगीत सम्राट्

पं० ओम्कारनाथ ठाकुर

अवकाशप्राप्त कुलगुरु,

श्री कला संगीत भारती,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी.

१-६ सभी भागों की सम्पादिका- डॉ. प्रेमलता शर्मा

सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित

प्रथम आवृत्ति मूल्य ८)

जनवरी १९६२.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्ति-स्थान :

१. संगीत कार्यालय, हाथरस (उ. प्र.)

२. एन. एम. त्रिपाठी एण्ड कं० (प्राइवेट लि०),
प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई नं० २.

३. हिन्दी भवन, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता,
जालन्धर सिटी (पू० पं०)

४. पं० ओंकारनाथ ठाकुर,
लंका, वाराणसी-५ (उ० प्र०)

प्रथम खण्ड तथा मुखपृष्ठ तारा यन्त्रालय, वाराणसी में तथा द्वितीय खण्ड सरला प्रेस, वाराणसी में मुद्रित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
आमुख	३-५
अकारादि क्रम से गीत-सूची	६
संगीतलिपि चिह्न परिचय	६, ७
सूक्ष्म स्वर-नामों की तालिका	७

प्रथम खण्ड

विषय	पृष्ठ संख्या
जाति	१-९१
'जाति' का अर्थ	१-२
भरतकाल में 'राग'	२-४
दशविध जातिलक्षण	४-१२
शुद्धा विकृता जातियां	१२-१६
संसर्गजा विकृता जातियां	१६-१९
अष्टादश जाति-लक्षण	१९-२३
जातियों के स्वर-रूप	२४-५८
शुद्धा जातियां (षड्जग्राम की)	२४-३२
शुद्धा जातियां (मध्यमग्राम की)	३२-३७
संसर्गजा विकृता जातियां	३८-५८
जातिगत रसप्रकरण	५८-६८
जातिसाधारण	६८-७१
मतंग	७२-७६
शार्ङ्गदेव	७६-९०
शार्ङ्गदेव के परवर्त्ती ग्रन्थकार	९०-९१
उपसंहार	९१
राग और राग वर्गीकरण	९१-१११
नारद, भरत और 'राग'	९२-९३
मतंग का राग-वर्गीकरण	९४-९७
शार्ङ्गदेव " "	९८
मध्ययुग की राग— वर्गीकरण-व्यवस्था	
राग-रागिणी-वर्गीकरण	९८-१०६
मेल पद्धति	१०७-१०८
थाट पद्धति	१०९-१११
परिशिष्ट	
भिन्न-भिन्न ग्रन्थों की राग-वर्गीकरण-तालिकाएं 'क' से 'ड' तक	११२-१२५

द्वितीय खण्ड

विषय	पृष्ठ संख्या
१—राग कोमल आसावरी	१-१४
शास्त्रीय विवरण	१-२
मुक्त आलाप	३-५
मुक्त तानें	६
ख्याल-'एरी वीर' (विलंबित एकताल)	७-९
गीत —'बढ़ैया लावो'—(त्रिताल)	१०-११
मुखड़े के प्रकार	११-१२
(तालबद्ध) तानें	१२-१४
२. राग देशी (देशी तोड़ी)	१५-३०
शास्त्रीय विवरण	१५-१६
मुक्त आलाप	१७-२०
मुक्त तानें	२१
ख्याल—'म्हारे डेरे' (विलंबित एकताल)	२२-२३
गीत 'सांची कहो तुम' (त्रिताल)	२४-२५
(तालबद्ध) तानें	२६-३०
३—राग गुर्जरी तोड़ी	३१-५२
शास्त्रीय विवरण	३१-३३
मुक्त आलाप	३४-३९
मुक्त तानें	४०-४१
ख्याल—'अब मोरे राम' (तिलवाड़ा)	४२-४३
गीत 'रंग जिन डारो' (त्रिताल)	४४-४५
(तालबद्ध) तानें	४६-४९
ध्रुवपद—'तेरे मन में' (सूलताल)	५०-५२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्ति-स्थान :

१. संगीत कार्यालय, हाथरस (उ. प्र.)

२. एन. एम. त्रिपाठी एण्ड कं० (प्राइवेट लि०), प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई नं० २.

३. हिन्दी भवन, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, जालन्धर सिटी (पू० पं०)

४. पं० ओंकारनाथ ठाकुर, लंका, वाराणसी-५ (उ० प्र०)

प्रथम खण्ड तथा मुखपृष्ठ तारा यन्त्रालय, वाराणसी में तथा द्वितीय खण्ड सरला प्रेस, वाराणसी में मुद्रित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या		पृष्ठ संख्या
आमुख	३-५	संगीतलिपि चिह्न परिचय	६, ७
अकारादि क्रम से गीत-सूची	६	सूक्ष्म स्वर-नामों की तालिका	७

प्रथम खण्ड

- जाति — १-९१
  - 'जाति' का अर्थ — १-२
  - भरतकाल में 'राग' — २-४
  - दशविध जातिलक्षण — ४-१२
  - शुद्धा विकृता जातियां — १२-१६
  - संसर्गजा विकृता जातियाँ — १६-१९
  - अष्टादश जाति-लक्षण — १९-२३
- जातियों के स्वर-रूप — २४-५८
  - शुद्धा जातियाँ (षड्जग्राम की) — २४-३२
  - शुद्धा जातियां (मध्यमग्राम की) — ३२-३७
  - संसर्गजा विकृता जातियां — ३८-५८
- जातिगत रसप्रकरण — ५८-६८
- जातिसाधारण — ६८-७१
- मतंग — ७२-७६
- शार्ङ्गदेव — ७६-९०
- शार्ङ्गदेव के परवर्ती ग्रन्थकार — ९०-९१
- उपसंहार — ९१
- राग और राग वर्गीकरण — ९१-१११
  - नारद, भरत और 'राग' — ९२-९३
  - मतंग का राग-वर्गीकरण — ९४-९७
  - शार्ङ्गदेव " " — ९८
  - मध्ययुग की राग—वर्गीकरण-व्यवस्था
  - राग-रागिणी-वर्गीकरण — ९८-१०६
  - मेल पद्धति — १०७-१०८
  - थाट पद्धति — १०९-१११
- परिशिष्ट
  - भिन्न-भिन्न ग्रन्थों की राग-वर्गीकरण-तालिकाएं 'क' से 'ड' तक — ११२-१२५

द्वितीय खण्ड

- १—राग कोमल आसावरी — १-१४
  - शास्त्रीय विवरण — १-२
  - मुक्त आलाप — ३-५
  - मुक्त तानें — ६
  - ख्याल-'एरी बीर' (विलंबित एकताल) — ७-९
  - गीत—'बढ़ैया लावो'—(त्रिताल) — १०-११
  - मुखड़े के प्रकार — ११-१२
  - (तालबद्ध) तानें — १२-१४
- २. राग देशी (देशी तोड़ी) — १५-३०
  - शास्त्रीय विवरण — १५-१६
  - मुक्त आलाप — १७-२०
  - मुक्त तानें — २१
  - ख्याल—'म्हारे डेरे' (विलंबित एकताल) — २२-२३
  - गीत 'सांची कहो तुम' (त्रिताल) — २४-२५
  - (तालबद्ध) तानें — २६-३०
- ३—राग गुर्जरी तोड़ी — ३१-५२
  - शास्त्रीय विवरण — ३१-३३
  - मुक्त आलाप — ३४-३९
  - मुक्त तानें — ४०-४१
  - ख्याल—'अब मोरे राम' (तिलवाड़ा) — ४२-४३
  - गीत 'रंग जिन डारो' (त्रिताल) — ४४-४५
  - (तालबद्ध) तानें — ४५-४९
  - ध्रुवपद—'तेरे मन में' (सूलताल) — ५०-५२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४—राग पूर्वी ५३-६७

शास्त्रीय विवरण ५३-५४

मुक्त आलाप ५५-५८

मुक्त तानें ५९

ख्याल—'पियरवा की बाँह' ६०-६१

गीत—'अरी ए मैका' (त्रिताल) ६२-६३

(तालबद्ध) तानें ६४-६७

५—राग श्री ६८-९०

शास्त्रीय विवरण ६८-७०

मुक्त आलाप ७१-७६

मुक्त तानें ७७

ख्याल—'गजरवा बाजो' (विलम्बित एकताल) ७८-७९

गीत—'एरी हूँ तो' (त्रिताल) ८०-८१

(तालबद्ध) तानें ८२-८५

ध्रुवपद—'गौरी अरधांग' (सूलताल) ८६-८७

ध्रुवपद—'प्रथम नाद' (चौताल) ८८-९०

६—राग पूर्वकल्याण ९१-१०८

शास्त्रीय विवरण ९१-९२

मुक्त आलाप ९३-९४

मुक्त तानें ९६-९७

ख्याल—'बुला ला आलो' (विलम्बित आड़ाचौताल) ९८-९९

गीत—'दुह दे रे' (त्रिताल) १००-१०१

मुखड़े के प्रकार १०२-१०३

(तालबद्ध) तानें १०४-१०६

तराना (त्रिताल) १०७-१०८

७—राग वसन्त १०९-१२३

शास्त्रीय विवरण १०९-१११

मुक्त आलाप ११२-११४

मुक्त तानें ११५

ख्याल – 'फूली री वसन्त' (तिलवाड़ा) ११६-११७

गीत—'फगवा ब्रिज' (त्रिताल) ११२-११९

(तालबद्ध) तानें १२०-१२१

गीत—'एएडी २ गैएडी २' (द्रुत एकताल) १२२-१२३

८—राग परज १२४-१३८

शास्त्रीय विवरण १२४-१२५

मुक्त आलाप १२६-१२७

मुक्त तानें १२८

गीत—'बंसरी तू कवन' (त्रिताल) १२९-१३०

गीत—'मैं क्यों गई जमुना' („) १३१-१३२

(तालबद्ध) तानें १३३-१३६

धमार—'लाल गुलाल' १३७-१३८

९—राग ललित १३९-१५८

शास्त्रीय विवरण १३९-१४०

मुक्त आलाप १४१-१४६

मुक्त तानें १४७-१४८

ख्याल—'रैन का सपना' (विलम्बित एकताल) १४९-१५०

गीत—'पियु पियु रटत' (त्रिताल) १५१-१५२

(तालबद्ध) तानें १५३-१५६

धमार—'लाल हो कैसे' १५७-१५८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ

आमुख

अपार उलझनों को सुलझाते हुए, 'विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः' की उक्ति को पचाते हुए 'संगीताञ्जलि' का छठा भाग इष्टदेव श्रीराघवेन्द्र के कृपा-प्रसाद का प्रकाश पा रहा है।

श्रद्धेय गुरुदेव पं० विष्णुदिगम्बर पलुस्कर के अमर आत्मा की असीम आशीष और महर्षि भरत की निगूढ़ प्रेरणा से यह ग्रन्थ ग्रथित होकर विश्व के सामने अवतरित हो रहा है। साथ ही जिनके घोर परिश्रम, आत्मसंयम और गुरुसेवा की भावना से इसका प्रकाशन संभव हो सका है, वह मेरी नितान्त प्रिय छात्रा चि० डा० प्रेमलता शर्मा भी मेरे अन्य प्रकाशनों की भांति इस प्रकाशन के श्रेय की अधिकारिणी हैं। मुझ जैसे गुरु के कठोर विनयन (discipline) का परिपालन, एक बार लिखे हुए को पुनः-पुनः संशोधित, परिवर्तित, परिवर्द्धित कराने की मेरी प्रवृत्ति में शिष्यजनोचित सहयोग—ये असाधारण गुण मैंने इनमें पाए हैं। इतने दीर्घ काल के सहकार से अब मुझ में और उनमें इतना तादात्म्य-भाव स्थापित हो गया है कि विचार और वाणी में, भाव और भाषा में संपूर्ण अभिन्नता आ गई है। अतः मैं अब विश्वासपूर्वक अपने सारे अनुसन्धानकार्यों की विरासत उन्हें सौंप कर निश्चिन्त होता हूँ। मेरे जीवन के पश्चात् जो भी कार्य शेष रहेगा उसे ये शास्त्रीय सिद्धान्त-पक्ष को अविचल बनाए रखते हुए, सफलतापूर्वक पूर्ण कर सकेंगी और मेरे जीवन-कार्य को व्यापक तथा समृद्ध बना सकेंगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। अब भविष्य के प्रकाशन मेरे ही नाम से न होकर युग्म-नाम से होंगे, यह घोषित करते हुए मैं अपार आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। यद्यपि इनकी निष्काम गुरुभक्ति और अकैतव सेवा भावना के कारण आज तक कभी मेरी ओर से इस प्रकार के प्रस्ताव का प्रसंग ही उपस्थित नहीं हुआ, तथापि अब मेरी हार्दिक इच्छा है कि मुझसे जो ज्ञान, विद्या और मेरे कार्य में योगदान से जो योग्यता इन्होंने अर्जित की है, उसके लिए उचित श्रेय भी इन्हें मेरी ओर से आशीर्वाद-स्वरूप प्राप्त हो। अतः आगामी प्रकाशन-विषयक उपर्युक्त घोषणा में अपने गुरुपद की पूर्णता मान कर मैं असीम आत्म-तुष्टि का अनुभव कर रहा हूँ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत महाविद्यालय के पाठ्यक्रम के क्रमबद्ध प्रकाशन का यह छठा पुष्प है जिसमें बी० म्यूज़, (संगीतालंकार) के पाठ्यक्रम की पूर्णता होती है।

इस ग्रन्थमाला के अन्य भागों की भांति यह भाग भी दो खण्डों में विभक्त है—प्रथम खण्ड में शास्त्रीय विवेचना और द्वितीय खण्ड में क्रियात्मक (Practical) पाठ्यक्रम के नौ रागों से संबन्धित विषय रखे गये हैं। द्वितीय खण्ड बहुत पहले मुद्रित हो चुका था और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक तथा विद्यार्थी उससे लाभ भी उठाते रहे। किन्तु प्रथम खण्ड के पूर्ण होने में नाना विघ्न-बाधाओं के कारण इस ग्रन्थ का प्रकाशन दीर्घ काल तक टलता रहा। कुछ अनिवार्य कारणों से इसमें 'परिशिष्ट' का समावेश नहीं किया जा सका है।

हमें यह कहते हुए नितान्त हर्ष होता है कि यह ग्रन्थमाला काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत महाविद्यालय के विद्यार्थियों की ज्ञानवृद्धि तथा क्रम-विकास का साधन बनने तक ही सीमित नहीं रही है, अपितु भिन्न २ परंपराओं के कलाकार, विभिन्न संस्थाओं के अध्यापक तथा विद्यार्थी एवं सामान्य संगीतानुरागी भी इससे विपुल मात्रा में लाभ उठा रहे हैं। इतना ही नहीं, अन्य पक्षावलम्बियों ने भी इन ग्रन्थों द्वारा प्रसारित सत्य के आलोक के सामने अपने पक्ष के आग्रह को त्याग कर इनका स्वागत किया है। इनकी उपयोगिता की इस स्वीकृति के लिए हम सभी के आभारी हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुत ग्रन्थ के शास्त्रीय खण्ड में मुख्य प्रतिपाद्य विषय 'जाति' तथा राग-वर्गीकरण हैं। स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना आदि विषयों का विशद निरूपण 'संगीताञ्जलि' के प्रथम पांच खण्डों में किया जा चुका है। भरतादि प्राचीन ऋषियों ने इन विषयों का जो प्रतिपादन किया था, वह कालक्रम से नितान्त दुरूह हो गया था, और उसकी जटिलता के कारण उसे आधुनिक लक्ष्य से अतीत मान लिया गया था। किन्तु उन्हीं भरतादि ऋषियों की कृपा और प्रेरणा से उन सब विषयों को स्पष्ट और सुलझे हुए ढंग से इस ग्रन्थमाला में प्रस्तुत करके आधुनिक लक्ष्य का प्राचीन परम्परा के साथ अटूट संबन्ध स्थापित किया जा सका है। प्रस्तुत ग्रन्थ में विशिष्ट 'स्वर-सन्निवेश' के रूप में 'जाति' और 'राग' का परस्पर संबन्ध, 'जाति' का स्वरूप, राग और राग-वर्गीकरण का ऐतिहासिक विवेचन तथा भिन्न २ राग-वर्गीकरण-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन—ये विषय लिये गये हैं। पञ्चम भाग में 'संगीत के शास्त्र-ग्रन्थों का अल्प परिचय' शीर्षक के अन्तर्गत जो सामग्री प्रस्तुत की गई थी, उस में आधुनिक युग के ग्रन्थों का विवरण नहीं था और प्रस्तुत भाग में वह विवरण देने की योजना थी। किन्तु अनिवार्य कारणों से उसका समावेश आगामी भाग के प्रकाशन तक स्थगित करना पड़ा है।

'जाति' के प्राचीन ग्रन्थोक्त विवरण को स्पष्ट करने में, सुलझाने में, आज के लक्ष्य की भाषा में उसे प्रत्यक्ष प्रतीतिगोचर बनाने में हमें अपार कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। 'जाति' के विषय—प्रतिपादन की दृष्टि से, मतंग के परवर्ती ग्रन्थकारों (शार्ङ्गदेव से लेकर आधुनिक युग तक के संगीत-ग्रन्थ-लेखकों) को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है—एक वे जिन्होंने भरत अथवा मतंग के जाति विवरण को ज्यों का त्यों, किसी टीका-टिप्पणी या स्पष्टीकरण के बिना, उतार लिया है और दूसरे वे जिन्होंने इस विषय को छुआ ही नहीं है। इस परिस्थिति में आधुनिक काल के अनुसन्धान-कर्त्ता को भरत-मतंग के बाद 'जाति' के विषय में कोई मार्गदर्शन या परम्परागत सूत्र उपलब्ध नहीं होता। इसलिए आज दो ही मार्ग सुलभ हैं कि या तो गतानुगतिक भाव से अन्य ग्रन्थोक्त विवरण जैसा का तैसा उद्धृत करने में अथवा उसका भाषान्तर प्रस्तुत कर देने मात्र में ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लें और या फिर इस विषय को out-of-date (प्रचारातीत) कह कर इसके संबन्ध में मौन-सेवन करें। किन्तु हमें इन सुगम मार्गों का अवलम्बन न ले कर बीहड़ और कण्टकाकीर्ण पथ चुनना पड़ा है तथा उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में वर्षों का कठोर परिश्रम करना पड़ा है। तात्कालिक विफलताओं के प्रबल अवरोध, तर्क-वितर्कों के थपेड़े, स्वयं किये गये निर्णयों में पुनः पुनः शंका और स्वयं उत्थापित शंकाओं के समाधान में मुहुर्मुहु यत्न —इन सब कारणों से इस विषय को लेखबद्ध करने में हमें दीर्घकाल अतिवाहित करना पड़ा है। इतना करने पर भी अभी हमने 'इदमित्थं' कह कर किसी बात को 'अन्तिम' नहीं बताया है और अपने यत्नों की 'इति' नहीं की है। जो भी सुलझनें जैसी भी उपलब्ध हुई हैं, उन्हें भिन्न २ विकल्पों के रूप में प्रस्तुत किया है। अनुसन्धान-कर्त्ता इन्हीं दिशाओं में आगे भी विचार कर सकते हैं। जिनका भी यत्न सुष्ठु, संपूर्ण और सुसंगत होगा, उनके प्रतिपादित सिद्धान्तों को विद्वज्जन अवश्य स्वीकार करेंगे। हमारी ओर से इस विषय की विविध उलझनों, गुत्थियों का यथावत् निरूपण तथा उन्हें सुलझाने का कुछ दिशासूचन—ये दो कार्य यदि विद्वज्जन संपन्न हुए समझेंगे तो हम अपनी साधना को सार्थक मानेंगे।

'जातिगान' के 'पुनरुद्धार' की बात आजकल कहीं २ सुनने में आती है। 'पुनरुद्धार' के नाम पर अपठित कलाकारों एवं सामान्य जनता की अबोधावस्था का लाभ उठा कर, स्वकल्पित बातों को भरतादि प्राचीनों के 'सिद्धांत' के रूप में प्रचारित किया जाना भी देखने में आ रहा है। हम स्वर-श्रुति-ग्राम-मूर्च्छना का अविच्छेद्य संबन्ध दृढ़ रूप से प्रतिपादित कर चुके हैं; उन्हीं की आधारभूमि पर, विशिष्ट स्वर-सन्निवेशों के निर्माण की दिशा में 'जाति' का आविर्भाव हुआ और उसी का 'राग' के रूप में विकास हुआ। अतः 'जाति' की परम्परा 'राग' के रूप में विकसित होकर आज हमारे संगीत में पूर्णरूप से सजीव है; उसे किसी 'पुनरुद्धार' की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता केवल इतनी ही है कि 'जाति' के वास्तव स्वरूप को समझ कर हम उसमें निहित 'रागों के जननीत्व' को भलीभाँति पहचान सकें, उसकी प्रत्यक्ष प्रतीति पा सकें और भरत के 'यत्किञ्चिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्'—इस वचन की सार्थकता को आत्मसात् कर सकें। जाति-गान के 'पुनरुद्धार' की दोहाई दे कर आत्म-प्रचार करने से यह प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'राग' के विकास का संक्षिप्त इतिहास दे कर हमने मतंग से लेकर आधुनिक काल तक प्रचार में आई प्रमुख राग-वर्गीकरण-पद्धतियों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। साथ ही आधुनिक लक्ष्यगत रागों के शास्त्रीय वर्गीकरण के लिए एक सुसंगत, पूर्ण और वैज्ञानिक पद्धति की आवश्यकता को ओर भी संकेत किया है। यह अपेक्षित वर्गीकरण-प्रणाली हम 'प्रणव-भारती' के द्वितीय भाग (रागशास्त्र) में प्रस्तुत करेंगे।

द्वितीय (क्रियात्मक) खण्ड के विषय में दो शब्द। प्रस्तुत कक्षा के विद्यार्थियों के लिए 'राग' के स्वतन्त्र विकास का अनिवार्य महत्त्व है। इसके लिए मुक्त आलाप-तानों की विशेष उपयोगिता है। राग का नियमबद्ध ढांचा तथा उसके अन्तर्गत स्वतन्त्र विकास का मार्गदर्शन—अभ्यासी विद्यार्थी को इन दोनों का बोध देना, यही मुक्त आलापतानों का प्रयोजन है। तालबद्ध आलापतानों को इस कक्षा में स्थान नहीं है; फिर भी तालबद्ध तानों के विभिन्न उठान और मुखड़े पकड़ने के विभिन्न प्रकारों के बारे में मार्गदर्शन कराने के उद्देश्य से कुछ तालबद्ध तानों का समावेश किया गया है। इस पूरी सामग्री से शिक्षक तथा विद्यार्थी लाभ उठाएंगे ऐसा विश्वास है। भिन्न २ तालों और भिन्न-भिन्न लय-विभागों में इन मुक्त आलाप-तानों के आधार पर स्वतन्त्र विकास करने में प्रस्तुत कक्षा के विद्यार्थी कोई कठिनाई अनुभव नहीं करेंगे ऐसी आशा है।

राग-विवरणों में स्वरों के सूक्ष्म-भेदों के लिए तीव्रतर, अतिकोमल आदि संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है। उन्हें समझने के लिए पाठक कृपया स्वर-संज्ञाओं की सारिणी देख लें।

इस ग्रन्थ-माला के आगामी दो भागों में एम० म्यूज़० (संगीताचार्य) का पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया जाएगा। उक्त पाठ्यक्रम में अनेक अप्रचलित रागों का भी समावेश है। इन भागों के प्रकाशन के पूर्व प्रणव-भारती के द्वितीय भाग (राग शास्त्र) का शीघ्र ही प्रकाशन करने का विचार है।

प्रथम खण्ड तारा प्रेस, वाराणसी में और द्वितीय खण्ड सरला, प्रेस, वाराणसी में मुद्रित हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अत्यधिक विलम्ब के अनेक कारण हैं जिनमें सरला प्रेस की शिथिलता का प्रमुख स्थान है। फिर भी दोनों प्रेसों के संचालकों तथा कर्मचारियों को हम धन्यवाद देते हैं।

लंका, वाराणसी
शनिवार, पौषी पूर्णिमा
वि० सं० २०१८,
२० जनवरी, १९६२ ई०

निवेदक—
ओमकारनाथ ठाकुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अकारादि क्रम से गीत-सूची

क्रम-संख्या	पृष्ठ संख्या
गीत	
१—अब मोरे राम	४२-४३
२—अरी ए मैका	६२-६३
३—एरी वीर बामनवा	७-९
४—एरी हूं तो	८१-८२
५—ऐएडी ऐएडी गैएडी गैएडी	१२२-१२३
६—गजरवा बाजो	७८-७९
७—गौरी अरधांग	८६-८७
८—तानों तदेरेना	१०७-१०८
९—तेरे मन में	५०-५१
१०—दुह दे रे	१००-१०१
११—प्रथम नाद	८८-९०
१२—पियरवा की बांह	६०-६१
१३—पियु-पियु रटत	१५१-१५२
१४—फगवा ब्रिज देखन	११८-११९
१५—फूली री बसन्त	११६-११७
१६—बढ़ैया लावो	१०-११
१७—बुला ला आली	९८-९९
१८—बंसरी तू कवन	१२९-१३०
१९—म्हारे डेरे	२२-२३
२०—मैं क्यों गई	१३१-१३२
२१—रंग जिन डारो	४४-४५
२२—रैन का सपना	१४९-१५०
२३—लाल गुलाल	१३७-१३८
२४—लाल हो कैसे	१५०-१५७
२५—सांची कहो तुम	२४-२५

संगीतलिपि चिन्ह परिचय

१—त्रिस्थान के चिन्ह

सरिगम मध्य स्थान
सरिगम (नीचे बिन्दु) मन्द्र ,,
संरिंगंमं तार ,,

२—विकृत (कोमल-तीव्र) स्वर—रि॒, म॑

३—कण या स्पर्श स्वर $^{सा}$रि $^{नि}$स

४—आन्दोलन या कम्प*—ध〰

५—मींड—सां⌒प

६—ताल के स्तम्भ—मोटी खड़ी रेखा ताल के विभाग-स्तम्भ को दिखाती है और पतली रेखा एक मात्रा की अवधि को। यथा—

| स | रि | ग | म | प | ध | नि | सां |

एक मात्रा के स्तम्भ में जितने भी स्वर लिखे हों, उनकी संख्यानुसार वहां लय की गति समझकर उच्चार करना होगा। जैसे—यदि एक, दो, तीन, चार, छः, आठ, बारह या सोलह स्वर एक मात्रा के स्तम्भ में लिखे हों तो क्रमशः १, $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{6}$, $\frac{1}{8}$, $\frac{1}{12}$, $\frac{1}{16}$ लय-विभाग समझना होगा। इसमें भी एक मात्रा के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न स्वरों अथवा गीत के अक्षरों का लय-विभागानुसार मात्रांश-मूल्य समझने के लिए (—) तथा (⌣ या ⌴) चिन्हों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसे—

स रि – ग	म – प रिं	ग – म	ग – स प – ध
$\frac{1}{4}$ $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{4}$	$\frac{1}{2}$ $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{4}$	$\frac{2}{3}$ $\frac{1}{3}$	$\frac{1}{3}$ $\frac{1}{6}$ $\frac{1}{3}$ $\frac{1}{6}$
सरि ग म प	रि ग मप ध	गम पध नि	म प ध निसां
$\frac{1}{8}$ $\frac{1}{8}$ $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{4}$	$\frac{1}{4}$ $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{8}$ $\frac{1}{8}$ $\frac{1}{4}$	$\frac{1}{8}$ $\frac{1}{8}$ $\frac{1}{8}$ $\frac{1}{8}$ $\frac{1}{2}$	$\frac{1}{4}$ $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{8}$ $\frac{1}{8}$

*प्रस्तुत ग्रंथ के दो खण्ड दो प्रेसों में मुद्रित होने से आन्दोलन का चिह्न दोनों खण्डों में भिन्न २ लगा है। प्रस्तुत चिह्न प्रथम खण्ड का है। द्वितीय खण्ड में अन्य भागों की भांति कंगूरेदार चिह्न लगा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊपर जहां-जहां (‿) का उपयोग हुआ है वहां उस ब्रैकेट के अन्तर्गत दोनों स्वरों का एकत्र मूल्य तो $\frac{१}{४}$ ही है, परन्तु एक-एक स्वर का पृथक् मूल्य $\frac{१}{८}$ है। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

७—सम— ×

८—खाली ०

९—ताली—जहां ताली है वहां ताल के उस-उस विभाग की मात्रा-संख्या निर्दिष्ट की गई है। जैसे त्रिताल में दूसरी ताली के लिए ५ और तीसरी ताली के लिए १३ की संख्या रखी गई है।

१०—एक ही स्वर के दीर्घोच्चार के लिए अवग्रह ऽ का प्रयोग किया गया है। इस अवग्रह का मात्रा-मूल्य तो उस मात्रा के विभाजन पर निर्भर रहता है।

११—गीत के एक ही अक्षर का जहां दीर्घोच्चार करना हो, अथच स्वरों में परिवर्त्तन होता हो, वहां उन स्वरों के नीचे अवग्रह के स्थान पर बिन्दु का प्रयोग किया गया है। यथा :—

प	ध	नि	सां
का	०	०	०

सूक्ष्म स्वर-नामों की तालिका

श्रुति संख्या	
१	कोमल निषाद
२	शुद्ध निषाद
३	तीव्र निषाद
४	षड्ज
५	अतिकोमल ऋषभ
६	कोमल ऋषभ
७	त्रिश्रुति (द्वैमामिक) ऋषभ
८	शुद्ध ऋषभ
९	अतिकोमल गान्धार
१०	कोमल गान्धार
११	शुद्ध गान्धार
१२	तीव्र गान्धार
१३	शुद्ध मध्यम
१४	तीव्र मध्यम
१५	तीव्रतर मध्यम
१६	तीव्रतम मध्यम
१७	पञ्चम
१८	अतिकोमल धैवत
१९	कोमल धैवत
२०	शुद्ध धैवत
२१	चतुःश्रुति धैवत
२२	अतिकोमल निषाद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुद्धिपत्र तथा परिशिष्ट

पृ० ६७ तथा ६८ पर मतंग के देशी-राग-वर्गीकरण के सम्बन्ध में जो उल्लेख है उसे कृपया निम्नलिखित संशोधन तथा परिवर्द्धन के साथ पढ़ें।

शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, राग, साधारणी—इन पांच गीतियों के अन्तर्गत ग्राम-राग कहने के बाद मतंग ने भाषा-विभाषा का प्रकरण पूर्ण कर के 'अतः परं प्रवक्ष्यामि देशीरागकदम्बकम्'—यों कह कर 'देशी-रागों' के निरूपण की प्रतिज्ञा की है। किन्तु ग्रन्थ का यह अंश मुद्रित संस्करण में बहुत ही खण्डित अवस्था में है। केच्छेल्ली, माङ्गाली, हम्माणिका पुलिन्दिका, कर्णाटी—इत्यादि कुछेक संज्ञाएं और उनके छिन्न-भिन्न लक्षण—यही सामग्री पृ० १४१ पर 'देशी-रागों' के सम्बन्ध में उपलब्ध होती है। किन्तु संगीत रत्नाकर २।२।१, २ की टीका में कल्लिनाथ ने मतंग का जो उद्धरण दिया है उससे स्पष्ट होता है कि मतंग ने रागाङ्ग, भाषाङ्ग और क्रियाङ्ग—इन तीन के अन्तर्गत देशी रागों का विभाजन किया है और शार्ङ्गदेव ने इन तीन के अतिरिक्त 'उपाङ्ग' के रूप में जो चौथा वर्गीकरण समूह स्वीकार किया है, उसका मतंग ने रागाङ्ग में ही अन्तर्भाव कर दिया है।

× × ×

मतंग का काल आज सामान्यरूप से छठी-सातवीं शताब्दी ई० के आसपास माना जाता है; किन्तु 'मतङ्ग' एक पौराणिक नाम है और इसकी पौराणिकता के प्रकाश में इसकी ऐतिहासिकता पुनः विचारणीय है। वाल्मीकि रामायण (आर० स० ७३।२८, २९), रघुवंश (स० ५ श्लो० ५३-५५) तथा महाभारत (सभा० अ० ८ श्लो० २९), में जिन मतङ्ग मुनि का उल्लेख है, उनका 'बृहद्देशी' के रचयिता मतङ्ग के साथ क्या सम्बन्ध रहा होगा यह अनुसन्धान का विषय है। इसका संकेतमात्र ही यहां सम्भव है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ

समर्पण - पत्र

दीदी माँ

श्रीमती मंजुलाबहन चन्द्रशंकर (उर्फ़ नानू भाई) दवे

अपनी धर्मपत्नी के निधन के वज्राघात से प्रपीड़ित, लोभग्रस्त भ्राताओं से आतङ्कित, जनयित्री के रहते हुए भी मातृ-वात्सल्य से वञ्चित एवं एक सन्निकट स्नेही के दिए हुए वचन को पराङ्मुखता से दुःखित होने के अवसर पर जिन्होंने मुझे अपनी छाया प्रदान की, जगत् की निन्दा-प्रशंसा सुन कर, सह कर, निगल कर, मुझे शक्ति प्रदान की, ऐसी—

'या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता' 'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता'

—मेरी 'बूची बहन' के वात्सल्य को 'नमस्तस्यै' सह यह ग्रन्थ समर्पित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम खंड

(शास्त्रीय विवेचन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ॐ ॥

जाति

मूर्च्छना- प्रकरण[१] के बाद भरत ने जाति का निरूपण किया है। स्वर, श्रुति, ग्राम और मूर्च्छना के बाद 'जाति' को जान लेना क्रमप्राप्त ही है। भरत के काल में जो गान-क्रिया प्रचलित होंगी, जिस प्रकार के गीत-प्रयोग नाट्य में व्यवहृत होंगे, वे सब प्रयोग नाट्यशास्त्र में जाति के अन्तर्गत विभाजित किए गए हैं। जिस प्रकार पाणिनि ने अपने 'शब्दानुशासन' में संस्कृत भाषा के अन्तर्गत भारत के विभिन्न प्रदेशों में बोली जानेवाली बोलियों के शब्दों का भी संग्रह (समावेश) किया है, तद्वत् भरत मुनि ने भी भारत और भारतेतर देश-प्रदेशों में जो विशेष स्वर-समूह प्रचार में होंगे, उन सबको एक ही जगह समाविष्ट करने के लिए और एक ही शास्त्र में नियमबद्ध करने के लिए जातियों का निरूपण किया है। यहां इस प्रकार का अनुमान भी हो आता है कि भारतीय और भारत के संपर्क में आई हुई भिन्न-भिन्न मानव-जातियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वररूप विशेष प्रचलित होंगे, उन्हीं स्वर-रूपों को शास्त्रीय रूप देते समय उन्हें जाति संज्ञा देना शायद उचित समझा होगा क्योंकि भिन्न-भिन्न मानव-जातियों से वे स्वरावलियां संबंधित रही होंगी।

भरत की अपनी दी हुई 'जाति' की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या उपलब्ध नहीं होती। फिर भी उस विषय पर मतंग के वचनों से जो प्रकाश पड़ता है वह निम्नोक्त है :—

१. श्रुतिग्रहस्वरादिसमूहाज्जायन्त इति जातयः —(बृहद्देशी पृ० ५५)

अर्थात्—श्रुति और ग्रह-स्वरादि के समूह से जो जन्म पाती हैं उन्हें 'जाति' कहा है।

अथवा—

२. यस्माज्जायते रसप्रतीतिरारभ्यते इति जातयः —

अर्थात्—जिससे रसप्रतीति की उत्पत्ति अथवा आरंभ हो उसे जाति कहा है।

अथवा—

३. सकलरागादेर्जन्महेतुत्वात् जातय :—

अर्थात्—सब रागों के जन्म का हेतु होने के कारण 'जाति' कहा गया है।

अथवा—

४. जातय इति जातयः। यथा नराणां ब्राह्मणत्वादयो जातयः—

अर्थात्—'जाति' शब्द का सामान्य अर्थ लिया गया, जैसे कि मनुष्यों में ब्राह्मणत्वादि जातियां होती हैं।

कल्लिनाथ द्वारा रचित 'संगीत रत्नाकर' की टीका में 'जाति-सामान्य' के लिए इस प्रकार कहा है:—

यथायोगं ग्रामद्वयाज्जायन्त इति जातयः। अत एवानित्यतया साकल्येन सामान्यरूपजातिलक्षणाभावेऽप्यनेकगोव्यक्तिषु अनुवृत्तत्वमात्रेण गोत्वादिवज्जातय इति वा। गीतजातं तस्योपरञ्जनं वाऽभ्यो जातय इति जातय इति वा।

[सं० र० १।७।१ कल्लिनाथी टीका]

---

१. मूर्च्छना-प्रकरण 'संगीताञ्जलि' पञ्चम भाग में द्रष्टव्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात्—यथायोग दोनों ग्रामों से उत्पन्न होती हैं, अतः जाति कहलाती हैं। जिस वस्तु की उत्पत्ति हो, वह अनित्य ही होती है। अतः 'जाति' अनित्य है। अर्थात् संगीत-शास्त्रोक्त 'जाति' में 'सामान्य रूप जाति' का लक्षण नहीं घट सकता, क्योंकि 'जाति-सामान्य' तो नित्य होती है। फिर भी अनेक गेय व्यक्तियों में (अर्थात् पृथक्-पृथक् गीत-प्रकारों में) अनुवृत्त होने के कारण अनेक गो-व्यक्तियों में अनुवृत्त गोत्व की भाँति इन्हें भी 'जाति' कहा जाता है। अथवा गीतसमूह की वा गीतोपरञ्जन की इनसे उत्पत्ति होती है, इसलिए ये 'जाति' कहलाती हैं।

नान्यदेव ने जाति के लिए इस प्रकार कहा है:—

रसभावप्रकृत्यादिविशेषप्रतिपत्तयः। जायन्ते जातिभिर्व्यक्ताः.......... ॥ [भरत कोष पृ० २२७]

अर्थात्—रस, भाव, प्रकृति आदि की विशेष प्रतिपत्ति जातियों से होती है।

अभिनवगुप्त ने जाति की व्याख्या इन शब्दों में की है:—

स्वरा एव विशिष्टा सन्निवेशभाजो रक्तिमदृष्टाभ्युदयञ्च जनयन्तो जातिरित्युक्तः। कोऽसौ सन्निवेश इति चेत् जातिलक्षणेन दशकेन भवति सन्निवेशः। (वही)

अर्थात् स्वर ही जब विशिष्ट बनकर और सन्निवेशगत होकर रंजकता और अदृष्ट अभ्युदय* को उत्पन्न करते हैं, तब वे जाति कहलाते हैं। सन्निवेश से क्या समझा जाय? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि दश 'जाति' लक्षणों से 'सन्निवेश' बनता है।

'जाति' की व्याख्याएं हमने पढ़ीं। जाति को रागों की जननी कहा गया है। इस उल्लेख से यह प्रश्न उद्भूत होता है कि भरत-काल में रागों का प्रचार था या नहीं?

भरत-काल में राग

'अंश' स्वर के दश लक्षण देते समय भरत ने 'राग' शब्द का प्रयोग अवश्य किया है; यथा:—

यस्मिन्वसति रागस्तु यस्माच्चैव प्रवर्तते। [ना० शा० २८।७२]

किंतु इतने उल्लेख मात्र से ऐसा नहीं ही कह सकते कि भरत के नाट्यशास्त्र में राग का निरूपण है, क्योंकि यहां 'राग' शब्द स्पष्टरूप से रञ्जकता के लिए प्रयुक्त हुआ है। साथ ही हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऊपर उद्धृत 'राग' शब्द का प्रयोग जाति के लक्षणों के प्रकरण में आया है और उस प्रकरण में रञ्जकता के सामान्य अर्थ के अतिरिक्त किसी अन्य विशेष अर्थ में 'राग' के प्रयोग का प्रसंग ही उपस्थित नहीं हुआ है।

ऊपर के उद्धरण के अतिरिक्त भरत के निम्नोद्धृत वचन से कुछ लोगों ने ऐसा अनुमान लगाया है कि भरत ने कुछेक ग्रामरागों का नामोल्लेख किया है:—

नाट्यशास्त्र (चौखम्बासंस्करण)	निर्णयसागर संस्करण
पूर्वरंगविधाने तु कर्तव्यो गानजो विधिः।	.... ।
दैवपूजाधिकारस्तु तत्र संप्रकीर्तितः॥	..............................स च पूर्वं प्रकीर्तितः॥
ततश्च काव्यबन्धेषु नानाभावसमाश्रयम्।	.... ॥

* शब्दसमन्वित संगीत में शब्द के अर्थानुसार मानव-वृत्तियों का और भावों का उतार-चढ़ाव या उत्थान-पतन जीवन में होता रहता है; केवल स्वर-लय-समन्वित संगीत सदैव ऊर्ध्वगामी ही होता है और मन, बुद्धि तथा आत्मा को सदैव उन्नत पथ पर आरूढ़ करता है। शब्द अपनी अभिधा शक्ति द्वारा स्थूल भूमिका को स्पर्श करते हैं और स्वर, लय की गति सूक्ष्म-देह या कारण-देह की गुहा तक है। इसीलिए जाति के स्वर-सन्निवेश को अदृष्टाभ्युदयकारक कहा है। हमारे अनजानपने में, हमारी उपचेतनावस्था (Sub-conscious) में अथवा अवचेतन (Unconscious) अवस्था में ही इन स्वर-सन्निवेशों द्वारा मन, बुद्धि और आत्मा का उत्कर्ष होता रहता है और उसी से 'अदृष्ट' अभ्युदय की प्राप्ति होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रामद्वयं न कर्तव्यं साधारणाश्रयम् ।······ ······च······यथा साधारणाश्रयम् ।।
मुखे तु मध्यमग्रामः षड्जं प्रतिमुखे स्मृतः ।·········षड्जः·············भवेत् ।।
साधारितं तथा गर्भेऽमर्शे कैशिकमध्यमः ।··· ················विमर्शे चैव पञ्चमः ।।
कैशिकञ्च तथा कार्यं गानं निर्वहणे बुधैः ।·············गाननिर्वहणे········· ।।
सन्धिवृत्ताश्रयञ्चैव रसभावसमन्विताः ।
यथा रसकृता याः स्युः ध्रुवाः प्रकरणाश्रयाः । तथा ······नित्यं ······प्रकरणाश्रिताः ।।
नक्षत्राणीव गगनं नाट्यमुद्योतयन्ति ताः । नक्षत्रीव······················ ···········।।
(ना० शा० ३२।४५१-५५) (ना० शा० ३२।४३२-३६)

अर्थात्—नाट्य के पूर्वरंग विधान में गान का विधिपूर्वक प्रयोग करना चाहिए। पूर्वरंग विधान में देव पूजा (रंग देवता की पूजा) का अधिकार या प्रसंग कहा गया है।

(गानविधि के) काव्यवन्धों में ग्रामद्वय (षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम) का प्रयोग करना चाहिए; ये ग्राम नाना भावों और रसों के आश्रय हैं तथा स्वर साधारण भी इन ग्रामों के आश्रित है।

मुखसन्धि में मध्यमग्राम, प्रतिमुखसंधि में षड्जग्राम, गर्भ में साधारित (यानी उभय ग्राम के स्वर-साधारण अर्थात् अंतर काकली युक्त स्वरावलि), अमर्श संधि में कैशिक-मध्यम (मध्यम ग्राम के कैशिक मध्यम से युक्त स्वरावलि) तथा निर्वहण-सन्धि में कैशिक* (कैशिक स्वर साधारण युक्त स्वरावलि) युक्त गान करना चाहिए। [दोनों ग्रामों में त्रिश्रुति अन्तरालों के बीच एक श्रुति के सूक्ष्म स्वरों की जहां २ उपलब्धि होती है, उसी को भरत ने 'कैशिक' संज्ञा दी है। उन्हीं सूक्ष्म स्वरों का प्रयोग यहां 'कैशिक' संज्ञा से अभिप्रेत है। इसके पूर्व 'अमर्श संधि' में 'कैशिक-मध्यम' के प्रयोग का जो विधान दिया गया है, उसमें मध्यमग्राम के 'म-प' के त्रिश्रुति अन्तराल में प्राप्त कैशिकमध्यम से अभिप्राय है जो कि पञ्चम से एक श्रुति पूर्व स्थित है। इस प्रकार गानविधि नाट्य की संधियों के आश्रित है अर्थात् जहां जो सन्धि हो तदनुकूल रसभाव-समन्वित रहनी चाहिए। जो ध्रुवा-गीति रस के अनुसार प्रयुक्त होती हैं और प्रकरण के आश्रित रहती हैं, वे नाट्य रूपी गगन को नक्षत्रों की भांति उद्योतित (प्रकाशित) करती हैं।

मतंग के 'बृहद्देशी' में भरत के ऊपर लिखे श्लोक कुछ पाठभेद सहित उद्धृत किए गए हैं और इनमें कही गई संज्ञाओं को शुद्धा गीति के अन्तर्गत ग्राम रागों के नाम मान लिया गया है। यथा:—

मुखे तु मध्यमग्रामः षड्जः प्रतिमुखे भवेत् । गर्भे साधारितश्चैवावमर्शे तु पञ्चमः ।।
संहारे कैशिकः प्रोक्तः पूर्वरङ्गे तु षाडवः । चित्रस्याष्टादशाङ्गस्य त्वन्ते कैशिकमध्यमः ।।
शुद्धानां विनियोगोऽयं ब्रह्मणा समुदाहृतः । (बृहद्देशी पृ० ८७)

भरत के ध्रुवा प्रकरण में से ऊपर उद्धृत वचन में जो संज्ञाएं उपलब्ध होती हैं, उन्हीं में न्यूनाधिक परिवर्तन के साथ मतंग ने उनका शुद्ध ग्राम-रागों के साथ जो संवंध जोड़ दिया है, उसी के कारण कुछ लोग भरत के उन वचनों में भी ग्राम-रागों का अस्तित्व आरोपित करते हैं। वास्तव में तो भरत के वचनों में कहीं 'ग्राम राग' संज्ञा का प्रयोग न होने के कारण षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम इन ग्राम-नामों को अथवा 'पञ्चम' 'कैशिक' 'मध्यम' इन स्वर नामों को

---

* उभय ग्रामिक अन्तर गान्धार, और काकली निषाद से भिन्न, भरतोक्त कैशिक स्वर-साधारण की विशेष स्पष्टता 'संगीताञ्जलि' पञ्चम भाग पृ० ११३क पर द्रष्टव्य है। यह उल्लेख करते हुए खेद होता है कि शार्ङ्गदेवादि ग्रन्थकारों में 'कैशिक' स्वर-साधारण के प्रसङ्ग में अनेक अनर्थों की सृष्टि की है, जिनके सुदूरगामी दुष्परिणाम आज तक के हमारे संगीत शास्त्र में व्याप्त रहे हैं। इस विषय के विस्तार का यहां अवकाश नहीं है। अस्तु।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा 'साधारित' 'कैशिक' इन 'स्वर विशेषणों' को 'ग्रामराग' के रूप में स्वीकार करना तर्कसंगत नहीं है। परवर्ती ग्रन्थकारों के वचनों को पूर्ववर्ती ग्रन्थकार के मत पर आरोपित करना समीचीन नहीं ही कहला सकता। इतना तो स्पष्ट है कि भरत ने नाट्य की पञ्च संधियों में अभिप्रेत संगीत प्रयोग के प्रकरण में उपर्युक्त संज्ञाओं का उल्लेख किया है। किन्तु इन संज्ञाओं का रागों से सम्बन्ध जोड़ना कैसे और कहां तक समुचित होगा ? यदि भरत को रागों का निरूपण करना ही अभिप्रेत होता तो इन संज्ञाओं के साथ 'राग' का संबंध क्यों न जोड़ते ? साथ ही यदि उन्हें राग निरूपण ही अभीष्ट होता तो वह केवल पांच या छः नामों के उल्लेख तक ही क्यों सीमित रहता ? साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि भरत के ऊपर उद्धृत वचनों के ठीक पहलेवाले श्लोक में भी 'राग' शब्द का 'रञ्जकता' के लिए प्रयोग मिलता है। यथाः—

यथा वर्णादृते चक्रं शोभते न निवेशनम्। एवमेनं विना गानं नाट्यं रागं न गच्छति ॥

(ना० शा० ३२।४५०)

इस प्रसंग में मतंग का निम्नलिखित वचन भी स्मरणीय है, जिसमें उन्होंने स्वयं कहा है :—

रागमार्गस्य यद्रूपं यन्नोक्तं भरतादिभिः। तदस्माभिर्निरूप्यते लक्ष्यलक्षणसंयुतम् ॥

[बृहद्देशी पृ० ८१]

अर्थात्—राग-मार्ग का जो रूप भरतादि ने नहीं बताया है, वह हम लक्ष्य-लक्षण से युक्त निरूपित करते हैं।

मतंग का यह वचन भी इस बात की पुष्टि करता है कि भरत ने रागों का उल्लेख नहीं किया है।

मतंग के ऊपर उद्धृत दोनों वचनों में स्पष्ट विरोधाभास है; इसलिए भरतोक्त संज्ञाओं को शुद्ध ग्रामरागों की संज्ञा मानकर मतंग का जो उद्धरण मिलता है उसे प्रामाणिक स्वीकार करने में हम असमर्थ हैं। यह भी स्मरणीय है कि भरत ने अट्ठाईसवें अध्याय में संगीत प्रकरण के आरम्भ में विषय-प्रतिपादन की विस्तृत प्रतिज्ञा दी है। उसमें 'राग' का कहीं भी नामोल्लेख नहीं है। इन सब प्रमाणों से हमारा स्पष्ट मंतव्य यही है कि भरत ने नाट्यशास्त्र में 'राग' का निरूपण नहीं किया है। आशा है, जिन्होंने ऐसा अनुमान लगाया है उनके भ्रम का निरसन हो जाएगा।

हमने यह देख लिया कि भरत ने नाट्यशास्त्र में रागों का उल्लेख नहीं ही किया है; उन्होंने केवल सात शुद्धा और एकादश संसर्गजा विकृता जातियों का ही निरूपण किया है। 'जाति' यह एक सामान्यार्थक शब्द है। किन्तु संगीतशास्त्र की भाषा में वैशिष्ट्ययुक्त स्वरावलियों के लिए जाति संज्ञा का प्रयोग हुआ है। ऊपर दी हुई जाति की व्याख्याओं से यह स्पष्ट है। जिससे रस-प्रतीति हो ऐसे विशिष्ट स्वर-सन्निवेश को जाति कहा है। इसका यह अर्थ हुआ कि कोई स्वरावलि केवल आरोहावरोह से यानी कोई विशिष्ट आकार धारण किए विना किसी भाव या रस का वहन नहीं कर सकती। ऐसा वैशिष्ट्य प्रदान करने वाले तत्त्व क्या हैं ? भरत ने दश जातिलक्षण के रूप में वे तत्त्व बताए हैं जो निम्नोक्त हैं :—

दशविध-जातिलक्षणम्

ग्रहांशौ तारमन्द्रौ च न्यासोऽपन्यास एव च। अल्पत्वं च बहुत्वं च षाडवौडविते तथा ॥

[ना० शा० २८।८०]

अर्थात्—(१) ग्रह (२) अंश (३) तार (४) मन्द्र (५) न्यास (६) अपन्यास (७) अल्पत्व (८) बहुत्व (९) षाडवत्व, और (१०) औडवत्व यही वे दश लक्षण हैं, जिनसे कोई स्वरावलि 'जाति' का रूप धारण करती है अर्थात् जिनसे विशिष्ट रसवाही स्वर-सन्निवेश का निर्माण होता है। क्रमशः इन दशों लक्षणों की व्याख्या भरत और मतंग यों करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१) ग्रह

ग्रहस्तु सर्वजातीनामंश एव हि कीर्तितः। यत्प्रवृत्तं भवेद्गानं सोंऽशो ग्रहविकल्पितः॥

[ना० शा० २८।७१]

तत्रादौ जात्यादिप्रयोगो गृह्यते येनासौ ग्रहः।

[बृहद्देशी पृ० ५६]

अर्थात्—सब जातियों का जो अंश स्वर है, वही ग्रह कहलाता है। जिस स्वर से गान की प्रवृत्ति होती है, या गान-प्रवृत्ति के आरम्भ ही में जिस स्वर का प्रयोग होता है, वह अंश स्वर ही विकल्प से ग्रह कहलाता है। जहां से जात्यादि प्रयोग आरम्भ किया जाए, उसे ग्रह कहते हैं।

(२) *अंश*—जाति के दश लक्षणों में दूसरा लक्षण है 'अंश'। उस 'अंश' के निम्नलिखित दश लक्षण भरत ने बताए हैं:—

यस्मिन्वसति रागस्तु यस्माच्चैव प्रवर्तते। येन वै तारमन्द्राणां योऽत्यर्थमुपलभ्यते॥
मन्द्रश्च तारविषया पञ्चस्वरपरा गतिः। अनेकस्वरसंयोगो योऽत्यर्थमुपलभ्यते॥
अन्यच्च बलिनो यस्य संवादी चानुवाद्यपि॥ ग्रहोपन्यासविन्याससंन्यासाभ्यासगोचरः।
परिवार्य स्थितो यस्तु सोंऽशः स्याद्दशलक्षणः॥

[ना० शा० २८।७२-७४]

अर्थात् (१) जिस स्वर में राग यानी रञ्जकत्व रहता हो या जिस स्वर पर जाति का रञ्जक स्वरूप अवलंबित हो (२) राग, रङ्ग या रस के उत्पादन में जो स्वर मुख्यतः उपयोगी हो, या जो स्वर स्वयं राग, रङ्ग और रस को उपजाता हो, (३-४) मन्द्र और तार सप्तक में पांच-पांच स्वर तक जिसकी अध-उर्ध्व गति हो, अर्थात् गान क्रिया में जिस स्वर की संवादात्मक प्रवृत्ति नीचे और ऊपर पांच-पांच स्वर तक विस्तार पाई हुई हो, (५) जो अन्य स्वरों से वेष्टित हो, या अन्य स्वरों के संयोग से आवृत हो, (६) जिसके साथ संवाद और अनुवाद करने वाले अन्य स्वर भी उसके समान ही बलवान् हों (७-१०) ग्रह न्यास, अपन्यास और विन्यास का वार-वार उच्चार या अभ्यास होते समय भी जो स्वर निरन्तर दृष्टिगोचर होता हो, ऐसे दश लक्षणों से युक्त स्वर अंश कहलाता है।

अंश स्वर के दश लक्षणों की व्याख्या कुछ भिन्न शब्दों में मतंग इस प्रकार देते हैं:—

अंशविभागः स दशविधो बोद्धव्यः, यस्मिन्नंशे क्रियमाणे रागाभिव्यक्तिर्भवति सोंऽशः। यस्मादारभ्य गीतः प्रवर्तते न ग्रहस्वरितः। स्वांशा द्वितीया तारमन्द्राभिव्यक्तिहेतुः स्वांशस्तृतीयः पञ्चमस्वरमारोहणं तारं कदाचित् षष्ठस्वरारोहण(म)पि तारः। तारनियामकमन्द्रनिशामकस्वरोऽप्यंशः सप्तस्वरावरोहणम्। यश्च बहुप्रयोगतरः सोऽप्यंशः। यो रागस्य विषयत्वेनावस्थितः स्वरः सोऽप्यंशः।

[बृहद्देशी पृ० ५७]

अर्थात्-अंश स्वर दश प्रकार से बनता है। यथा-(१) जिससे रागाभिव्यक्ति हो, (२) जिससे गीत का आरंभ हो, किन्तु फिर भी जो ग्रह और स्वरित से भिन्न हो, (३-४) तार और मन्द्र स्थानों की अभिव्यक्ति का जो हेतु हो, (५) जिसके आगे पांच या छः स्वरों तक तार में आरोह हो सकता हो, (६-७) तार और मन्द्र स्थानों का जो नियामक हो, (८) जिससे सात स्वर तक नीचे अवरोह हो सकता हो, (९) जिसका अधिक प्रयोग हो, और (१०) राग के विषय, अर्थात् केन्द्रविन्दु के रूप में जो स्थित हो।

ग्रह और अंश के लक्षण हमने देख लिए। 'ग्रह' के लिए यह जो कहा गया है कि अंश ही विकल्प से ग्रह बनता है, उस वचन का स्पष्टीकरण अब क्रमप्राप्त है। 'अंश' को '*ग्रहविकल्पित*' ऐसा जो कहा गया है उसको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पष्टता के लिए यह उल्लेख आवश्यक है कि हमारे संगीतशास्त्रों में 'अंश' शब्द का तीन प्रकरणों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग मिलता है। यथा :—

(१) संवाद, विवाद तथा अनुवाद—स्वरों के इन त्रिविध सम्बन्धों के प्रकरण में।
(२) जाति के दश लक्षणों के प्रकरण में जो हम अभी ऊपर देख चुके हैं।
(३) अलंकार प्रकरण में।

इन तीनों प्रकरणों में 'अंश' शब्द के विभिन्न अर्थ अभिप्रेत हैं। उनका स्पष्टीकरण निम्नोक्त है :—

(१) संवाद-विवाद-अनुवाद प्रकरण में अंश

भरत ने सप्तस्वरों के नामोल्लेख के पश्चात् उन स्वरों को चतुर्विध बताया है—वादी, संवादी, विवादी और अनुवादी। संवाद, विवाद और अनुवाद—ये स्वरों के परस्पर सम्बन्ध के द्योतक हैं। इन सम्बन्धों की स्थापना के लिए दो-दो स्वरों की जोड़ियाँ आवश्यक होती हैं। कोई भी अकेला स्वर निरपेक्ष भाव से संवाद, विवाद या अनुवाद का प्रतिनिधि नहीं हो सकता क्योंकि स्वरों के संवादादि सम्बन्ध नियत अन्तरालों के द्योतक हैं और 'अन्तराल' की सिद्धि के लिए दो स्वरों की जोड़ी अनिवार्य है। इन दो स्वरों में से जिस स्वर को आधार मान कर दूसरे स्वर का संवाद, विवाद या अनुवाद सम्बन्ध स्थापित किया जाए, अथवा जांचा जाए, उसी स्वर को 'वादी' कहा है। इसी 'वादी' को समझाते हुए भरत ने कहा है:—'यो यत्र अंशः स तस्य (तत्र ?) वादी'। (ना० शा० २८)

अर्थात्—जब जिस स्वर को आधार मान कर दूसरे स्वर के साथ संवाद, विवाद या अनुवाद संवन्ध स्थापित किया जाए, वही आधार स्वर अंश या (Fundamental Note) है और वही वादी कहलाता है। उदाहरण के लिए 'सा-म' की स्वर जोड़ी में 'सा' को अंश या आधार मान कर-चलने से 'सा' वादी और 'म' उसका संवादी बनता है और 'म-सं' की स्वर-जोड़ी में 'म' को अंश या आधार मानने में 'म' वादी और 'सं' उसका संवादी कहलाएगा। ऐसे ही अन्य संवादी, विवादी और अनुवादी स्वर-जोड़ियों के लिए भी समझना चाहिए।

इस प्रकरण में अंश स्वर के वास्तविक अर्थ को न समझने के कारण ही 'राग'-लक्षण में 'राग' के प्रमुख स्वर को वादी कहा जाने लगा, उससे अपेक्षाकृत कम प्रमुख स्वर को संवादी, सहायक स्वरों को अनुवादी तथा विरोधी स्वरों को विवादी कहा जाने लगा। राग-लक्षण के अन्तर्गत इन पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से इनके स्वरान्तराल-सम्बन्धी शास्त्रीय अर्थ की संगति नहीं रह पाई। उदाहरण के लिए पं० भातखण्डे ने श्रीराग में कोमल ऋषभ और पंचम को वादी-संवादी बताया है और ऐसी ही अन्य स्वर-जोड़ियों को भी कई रागों में वादी-संवादी कहा है, जिनमें संवाद सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। वास्तव में भरत ने 'वादी' के पर्याय के रूप में जहाँ 'अंश' का प्रयोग यह कह कर किया है, "यो यत्र अंशः स तस्य वादी" वहाँ जाति या राग के प्रमुख या प्रधान स्वर से कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि रागलक्षण में 'वादी संवादी अनुवादो विवादी' स्वर भाषा का प्रयोग अशास्त्रीय है। भरतोक्त जाति के दश लक्षण का ही राग-लक्षण में प्रयोग शास्त्रीय दृष्टि से उचित और ग्राह्य है।

(२) 'जाति' के दश लक्षणों के प्रकरण में अंश

'अंश', जाति के दश लक्षणों में से अन्यतम है और उसे जाति का प्रधानीभूत स्वर कह कर उसके जो दस लक्षण दिए गए हैं, वे हम ऊपर देख ही चुके हैं।

(३) अलंकार प्रकरण में अंश

कुछेक अलंकारों के लक्षण देते हुए मतंग ने अलंकार के प्रत्येक टुकड़े के आरंभक स्वर को 'अंश' कहा है। उदाहरण के लिए—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(क) 'तारमन्द्र-प्रसन्न' अलंकार का लक्षण देते हुए मतंग कहते हैं:—

अंशाच्चतुर्थं पंचमं वा स्वरं गत्वा यत्र मन्द्रे पुनरागम्यते स तारमन्द्रप्रसन्नः। यथा:—सारिगमप सा, रिगमपध रि, गमपधनि ग, मपधनिसां म[1]। (बृहद्देशी पृ० ३७)

अर्थात्—'अंश' से चतुर्थ या पंचम स्वर पर जाकर जब पुनः मंद्र[2] में लौट आया जाए तब 'तारमन्द्र-प्रसन्न' अलंकार होता है। यथा—'सा' से 'प' तक आरोह करके पुनः अंशस्वर 'सा' पर लौट आए।

(ख) 'विद्युत' अलंकार का लक्षण बताते समय मतंग कहते हैं:—

अंशस्वरं चतुरुच्चार्य तदनन्तरस्वरद्वयस्य द्रुतोच्चारणादनेनैव क्रमेणारोहणादेकक्लो विद्युतः। सासा सासा रिग, रिरि रिरि गम, गागागागा मप, इत्यादि। (बृहद्देशी पृ० ४२)

अर्थात् 'अंश' स्वर का चार बार उच्चार करके उसके बाद वाले दो स्वरों का द्रुत उच्चार करने से 'विद्युत' अलंकार होता है।

उक्त दोनों उदाहरणों में अलंकार के टुकड़ों के आरम्भक स्वर को 'अंश' कहा है।

'अंश' शब्द का तीन प्रकरणों में विभिन्न अर्थों में प्रयोग हमने देखा। इस विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि 'अंश' शब्द में तीन प्रवृत्तियाँ या (Functions) निहित हैं—(१) 'वादी' के रूप में स्वरों के संवाद, विवाद या अनुवाद सम्बन्धों का वह (अंश) आधार रहता है। (२) 'जाति' या 'राग' में वह (अंश) केन्द्रस्थ या प्राणस्वरूप रहता है। तथा (३) किसी विशिष्ट स्वर-योजना में वह आरम्भ स्थान पाता है (यथा अलंकार प्रकरण में)। 'अंश' का यह त्रिविध कार्य-क्षेत्र हमने ऊपर देखा, उसी प्रकार जाति लक्षणों में भी अंश को तीन क्षेत्रों में व्याप्त बताया है। यथा:—

(१) 'अंश' को 'ग्रह विकल्पित' कहकर उसे ग्रह के रूप में जाति के आरम्भ-स्थान का अधिष्ठाता कहा है।

(२) 'यस्मिन्वसति रागस्तु' इत्यादि दश लक्षणों द्वारा 'अंश' को 'जाति' के प्राण-स्वर या केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

(३) 'अंश, का सम्बन्ध 'न्यास' के साथ भी जोड़ा गया है। यथा:—

अथ न्यासः। अंशसमाप्तौ स चैकविंशतिविधः। (ना० शा० २८)

अर्थात्—समाप्ति में आया हुआ अंश ही न्यास कहलाता है और वह इक्कीस प्रकार का है। 'अंशसमाप्तौ' का विग्रह मतंग ने यों किया है:—

'*अंशः समाप्तौ कार्यः*', अर्थात्—जो अंश समाप्ति में प्रयुक्त हो वही न्यास है। (बृहद्देशी पृ० ६०)

इस प्रकार आरम्भ-स्थान, प्रधानता तथा समाप्ति-स्थान—इन तीन पहलुओं से 'अंश' का व्यापकत्व बताया गया है।

जाति के दो लक्षण 'ग्रह' 'अंश' हम देख चुके। अब तीसरा-चौथा लक्षण ले लें।

---

(१) इस अलंकार के स्वर-रूप का पाठ 'बृहद्देशी' में अत्यन्त भ्रष्ट है। यथा—सारिगम। सारिगमप। रिरिगमपध निगमपधग। गमपधनिग मपधनिम। सपधनिसाम। किन्तु मतंगोक्त लक्षण के अनुसार उक्त अलंकार का शुद्ध रूप बनाकर ऊपर दिया गया है।

(२) यहाँ 'मन्द्र' से मन्द्र स्थान का तात्पर्य नहीं अपितु जहाँ से आरम्भ किया हो वहीं पर नीचे लौट आने से तात्पर्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३-४) *तार-मन्द्र*—अंश स्वर के जो दश लक्षण बताए गए हैं, उनमें तार और मन्द्र तक उसकी व्याप्ति की मर्यादा का उल्लेख हुआ है। उसी को दोहराते हुए यहां स्पष्ट किया गया है कि इन जातियों का गान केवल मध्य सप्तक में ही मर्यादित नहीं है, अपितु तार-मन्द्र में भी उसका प्रस्तार है। इससे सिद्ध होता है कि जाति-गान केवल मध्य-सप्तक के प्रयोग में ही सीमित नहीं था, अपितु तार-मन्द्र स्वरों में भी उसकी व्याप्ति थी अर्थात् तीनों सप्तकों में उसका प्रयोग होता था।

तार और मन्द्र की व्याख्या देते हुए भरत ने कहा है:—

अथ पञ्चस्वराः कण्ठ्यांशात् (?) तारगतिः। अंशात्तारगतिं विद्यादाचतुर्थस्वरादिह ॥
पञ्चमं त्वथवा गच्छेत्ततोऽशविहितं त्विह। आपञ्चमात्सप्तमाद्वा* नातः परमिहेष्यते ॥

(ना० शा० २८।९२-३)

त्रिविधा मन्द्रगतिः—अंशपरा न्यासपरा चेति अपन्यासपरा चेति वा।

अर्थात्—तार की त्रिविध गति है—अंश (न्यास तथा अपन्यास) स्वर से लेकर चौथे, पांचवे अथवा सातवें स्वर तक तार की गति समझनी चाहिए। मन्द्रगति भी त्रिविध है—अंशपरा, न्यासपरा और अपन्यासपरा। 'अंशपरा' अर्थात् अंश है परे जिसके अर्थात् अंश के नीचे। उसी प्रकार न्यासपरा और अपन्यासपरा का भी यही अर्थ है कि जिसके परे न्यास अथवा अपन्यास हो।

जाति-गान में त्रिविधा तार-गति और त्रिविधा मन्द्र गति होती थी, ऐसा इन उद्धृत वचनों से स्पष्ट है। इसका अर्थ यही है कि जिस जाति में जो स्वर अंश हो, उस अंश से अथवा न्यास और अपन्यास स्वर से चार स्वर, पांच स्वर या सात स्वर तक ऊपर जाने की मर्यादा उन्होंने बांध ली थी; तद्वत् त्रिविधा मन्द्रगति कही गई है, जिसे अंशपरा, न्यासपरा और अपन्यासपरा कहा है। इसका भी स्पष्टार्थ यही है कि जिस जातिमें जो अंश, न्यास अथवा अपन्यास स्वर हो, उससे चार, पांच या सात स्वर तक नीचे यानी मन्द्र में जाना चाहिए। इससे अधिक मन्द्र में नहीं जाना चाहिए।

ध्यान रहे कि यहां 'मन्द्र' 'तार' से 'मन्द्र-तार' स्थान अभिप्रेत नहीं है, अपितु 'अंश, 'न्यास' या 'अपन्यास' से नीचे उतरने को 'मन्द्र' और ऊपर चढ़ने को 'तार' कहा गया है।

उपर्युक्त त्रिविधा तारगति और मन्द्रगति में से 'अंशपरा' के कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत किये जाते हैं।

कल्याण में अंश स्वर ऋषभ से चार, पांच या सात स्वर मन्द्र में उतर कर ध़ नि़ रि, म़ ध़ नि़ रि, रि़ ग़ म़ ध़ नि़ रि, यों स्वरविस्तार के खण्ड बनाते हैं; तद्वत् 'तार' में भी अंश से चार, पांच या सात स्वर तक आरोह किया जाता है; यथा—रिगम॒प, रिगम॒ध, रिगम॒धनि, रिगम॒धनिरिं। इस प्रकार रागरूप के निदर्शन के लिए अंश से सप्त स्वर नीचे तक मन्द्रगति और अंश से सप्त स्वर ऊपर तक तारगति पर्याप्त होती है। इस मर्यादा के बाहर 'तारगति' या 'मन्द्रगति' में रागरूप का पुनरावर्तन ही होता है। उसी प्रकार हमीर में अंश स्वर धैवत से मन्द्र में जाकर गम॒ध, सरिगम॒ध, नि़सागमध, इस प्रकार मन्द्रगति में सञ्चरण किया जाता है और 'तार' में गंमंरिंसां यों लेते हुए अंश स्वर से 'तारगति' पूर्ण की जाती है। जयजयवन्ती में अंश स्वर ऋषभ से मुख्य मन्द्रगति ध़ नि़ रि यों चार स्वर तक होती हैं, तद्वत् रिगमप यों तारगति का प्रथम चरण लिया जाता है। वैसे ही गौड़सारंग के अंश स्वर गान्धार से मन्द्रगति में 'नि़सागरिमग' यों मुख्य रूप से स्वरप्रस्तार का खण्ड प्रयुक्त होता है। 'तार' में सात स्वर तक आरोह की मर्यादा इस राग-रूप के लिए भी पर्याप्त है।

* नाट्यशास्त्र के चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ के संस्करण में 'आपञ्चमात्पञ्चमाद्वा' यह पाठ है। बृहद्देशी में उद्धृत इसी श्लोक के पाठानुसार यहां संशोधन कर लिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे यह 'अंशपरा' तारगति और मन्द्रगति हमने देखी, वैसे ही 'न्यास' या 'अपन्यास' के संबन्ध में भी इस द्विविध 'गति' को गुणिजन स्वयमेव समझ सकते हैं, क्योंकि यह सब कुछ प्रत्यक्ष क्रिया से संबन्धित है।

तार-मन्द्र की मर्यादा आज भी हम राग-गान में किस प्रकार प्रयुक्त करते हैं इसके कुछ अन्य उदाहरण भी यहाँ प्रासंगिक होंगे। क्रिया-कुशल गुणी जानते हैं कि कुछ राग ऐसे हैं कि जिनकी तार-सप्तक की मर्यादा बंधी हुई है, और कुछ राग ऐसे हैं, जिनकी मन्द्र सप्तक की मर्यादा बंधी हुई है। उस मर्यादा की लकीर को लांघना, रागरूप को बिगाड़ना है। इसके कुछ उदाहरण समझने से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी। यथा दरबारी कान्हड़ा, इसकी तार मर्यादा बंधी हुई है। यदि दरबारी में बार-बार तार-सप्तक में संचार किया जाए तो वहाँ दरबारी न रहकर अडाणा का दर्शन होने की पूरी संभावना है। दरबारी के मन्द्र सप्तक में जितना भी काम करना चाहें कर सकते हैं, किन्तु तार में नहीं। यह जैसी तार सप्तक की मर्यादा बंधी हुई है, वैसे ही सोहनी, अडाणा, देशकार इत्यादि रागों की मन्द्र मर्यादा भी बंधी हुई है। सोहनी में प्रायः मध्य गान्धार तक ही उतरने की मर्यादा है; चाहे कभी-कभी मध्य षड्ज को छू लेते हैं, किन्तु अधिकतर मध्य गान्धार तक ही उसकी मर्यादा है, मन्द्र में तो बिल्कुल ही नहीं। तद्वत् अडाणे में भी अधिक से अधिक नीचे उतरने की मर्यादा मध्य षड्ज तक है। गुणिजन जानते हैं कि सोहनी में तार षड्ज ही अंश स्वर है और अडाणा में भी वही नियम है। सोहनी में पाँच स्वर तक उतरने की मर्यादा बनाई गई है और अडाणा में सात स्वरों तक उतरने की मर्यादा दिखाई गई है। जैसे इन रागों के निदर्शन के लिए इन मर्यादाओं का पालन आवश्यक है, वैसे ही भरतकालीन जातिगान में भी इन्हीं मर्यादाओं का पालन आवश्यक माना गया था और इसी को समझाने के लिए त्रिविधा तार-गति और त्रिविधा मन्द्र-गति का जाति के लक्षणों में उल्लेख किया गया, ऐसा निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

५-६, न्यास-अपन्यास—ये शब्द ही अपने अर्थ को स्पष्ट करते हैं। अर्थात् जहाँ गान समाप्त किया जाए अथवा गान के बीच में जहाँ मुकाम किया जाए, जाति गान की इन क्रियाओं के निदर्शन के लिए क्रमशः न्यास-अपन्यास इन शब्दों का प्रयोग हुआ है।

"न्यासो ह्यंशसमाप्तौ" इस वचन में 'न्यास' के उपर्युक्त अर्थ के अतिरिक्त जो अधिक व्यापक अर्थ निहित है, उसका विस्तृत विवेचन जाति के शुद्ध विकृत प्रकरण में द्रष्टव्य है।

७-८, अल्पत्व एवं बहुत्व—इस सम्बन्ध में भरत ने कहा है:—

द्विविधमल्पत्वं लङ्घनादनभ्यासाच्च। गीतान्तरमार्गमुपगतानां षाडवौडवितकरणत्वमंशानाञ्च* स्वराणां लङ्घनादनभ्यासाच्च सकृदुच्चारणं यथाजाति, तद्वत् बहुत्वमल्पत्वविपर्ययात् द्विविधमेषामन्येषामपि बलिनां सञ्चारः।

अल्पत्वञ्च बहुत्वञ्च यथापूर्वं विनिश्चयात्। जातिस्वरैश्च नित्यं स्यात् जात्यल्पत्वं विधानतः॥
संचारोंऽशबलस्थानमल्पत्वं दुर्बलेषु च। द्विविधोऽन्तरमार्गस्तु जातीनां व्यक्तिकारकः॥

[ना० शा० २८।९०-१]

अर्थात्—अल्पत्व द्विविध है—एक लङ्घन द्वारा अर्थात् छोड़ देने से और दूसरा अनभ्यास द्वारा यानी बार-बार आवृत्ति के अभाव से। गीत के अन्तर मार्ग में आनेवाली (जातियों की) षाडवौडवित क्रिया में जिन अंश स्वरों का

*ऊपर के उद्धरण में मतंग के 'क्वचिद्वा अनंशो विनाल्पः' इस वचन को देखते हुए यदि भरत के ऊपर उद्धृत वचन में 'अंशानाञ्च स्वराणां' के स्थान पर 'अनंशानाञ्च स्वराणां' पाठ लिया जाए तो उस गद्यांश का निम्नोक्त अर्थ होगा:—'गीत के अन्तरमार्ग में आए हुए जो अनंश स्वर हों, जो स्वर (जातियों के) औडवषाडव प्रकार बनाने में साधन हों, उनके लंघन या अनभ्यास से अल्पत्व होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लंघन या अनभ्यास द्वारा अल्पोच्चार होता है, उसे अल्पत्व कहते हैं और इसके विपर्यय से यानी अलंघन और अभ्यास से बहुत्व होता है।

दो प्रकार के अन्तरमार्ग से जातियों की अभिव्यक्ति होती है—१, अंश या बलवान् स्वर के सञ्चरण से, और २, दुर्बल स्वरों के अल्पत्व से। इस विषय में मतंग कहते हैं:—

अल्पत्वं बहुत्वं च द्विविधो संन्यासादिगतो भवेत् तदान्तरमार्गेणेति। अन्तरमार्गस्य लक्षणं यथा जातिषु क्वचिद्वा अनंशो विनाल्पः। [बृहद्देशी पृ० ५९]

अर्थात् अल्पत्व और बहुत्व दो प्रकार का होता है। हम ऊपर कह आए हैं कि लंघन और अनभ्यास से अल्पत्व द्विविध होता है, तद्वत् अलंघन और अभ्यास से बहुत्व भी द्विविध है। ऐसा द्विविध अल्पत्व और बहुत्व जब सन्यासादिगत होता है यानी जब स्वरों का न्यास, अपन्यास आदि अवस्था के अनुसार अल्पत्व-बहुत्व होता है, तब वह अल्पत्व-बहुत्व अन्तरमार्ग द्वारा हुआ समझना चाहिए। कभी-कभी जातियों में अनंशत्व के बिना ही अल्पत्व होता है यानी अनंशत्व तो स्वयमेव एक प्रकार का दौर्बल्य या अल्पत्व है ही, किन्तु उस प्रकार के अल्पत्व से यहां कोई अभिप्राय नहीं है, बल्कि उस अल्पत्व से अभिप्राय है जो अनंशत्व पर निर्भर नहीं है।

इन अल्पत्व-बहुत्व को हम आज के लक्ष्य की भाषा में समझ लें। हमारे वर्तमान प्रचलित संगीत में भी किस स्वर पर कितना ठहरा जाए, या कौन सा स्वर कितना लंबाया जाए, इन बातों की मर्यादा पाई जाती है। जाति-गान के युग में भी गान-क्रिया के अवसर पर जिस स्वर का अल्प स्पर्श किया जाता होगा अथवा वक्रत्व से जिसका अल्पोच्चार होता होगा, या अन्य स्वरों की छाया में जो ढका हुआ रहता होगा, जिसका लंघन या अनभ्यास होता होगा, ऐसे स्वरों का अल्पत्व कहा गया है और जो स्वर ग्रह, अंश या न्यास न होते हुए भी गान में अधिक प्रयुक्त होता है, उसी स्वर का बहुत्व कहा गया है। आज हमारी गान-क्रिया में अल्पत्व और बहुत्व का जो प्रयोग होता है, वह उसी प्राचीन परंपरा का द्योतक है। आज के कुछ रागों के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

जैसे केदार में गान्धार प्रयुक्त होते हुए भी दीर्घोच्चरित मध्यम की छाया में ढका रहता है और उसका केवल गुप्त उच्चारण होता है, यह एक अल्पत्व का उदाहरण हुआ, तद्वत् मल्हार (मियाँ मल्हार) का धैवत तथा शंकरा का धैवत वक्रगति के अल्पत्व के उदाहरण हैं। विहाग में ऋषभ धैवत का आरोह में वर्जन होता है, यह लंघन के अल्पत्व का उदाहरण है और अवरोह में उन्हीं ऋषभ-धैवत की 'निऽऽ धप' और 'गऽऽ रिनिसा'-यह क्रिया स्वरों के उच्चार में दीर्घत्व के अभाव का उदाहरण है। तिलंग में ऋषभ का नियमपूर्वक आरोहावरोह में प्रयोग नहीं होता, किन्तु क्वचित् तार सप्तक में ऋषभ लिया जाता है। अतः अनभ्यास यानी बारंबार प्रयोग न करने के अल्पत्व का यह उदाहरण है और ऐसे ही अन्य अल्पत्व के प्रकार भी भिन्न-भिन्न रागों में सन्निहित हैं, जो विद्वज्जन से अविदित नहीं हैं।

जो स्वर राग में ग्रह, अंश, न्यास न होते हुए भी बल पाता है, उसका 'बहुत्व' माना जाता है। जैसे कि कल्याण में गान्धार। ध्यान रहे कि कल्याण के अंश और उपांश* ऋषभ-पंचम ही हैं, गांधार निषाद नहीं। कारण कि ऋषभ-पञ्चम के बिना कल्याण के कल्याणत्व का ही लोप हो जाएगा; किन्तु गांधार का बहुल प्रयोग होने पर भी उसके बिना कल्याण का कल्याणत्व नष्ट नहीं होता, यह गुणिजन जानते हैं। कल्याण के पूर्वांग में ऋषभ और उत्तरांग में पंचम के बिना उसका रागत्व कैसे नष्ट होता है यह निम्नोक्त उदाहरण से स्पष्ट होगा। यथा :—

* यहां सप्तक के पूर्वांग और उत्तरांग में स्थित अंश स्वरों के लिए ही क्रमशः 'अंश' और 'उपांश' इन संज्ञाओं का प्रयोग किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा ऽ, नि सा ग, ध नि सा ग, नि ध सा नि ग, म् ग, म् ध नि सा ग, म् ग, ध म् ग, नि ध म् ग, म् ध म् ग, सा, नि ध सा।

इस प्रकार इन स्वरावलियों में गान्धार का वहुत्व दिखाने पर भी कल्याण का दर्शन नहीं ही होता; परन्तु—

नि रे-सा, ध नि रे-सा, म् ध नि रे-सा, अथवा उत्तरांग में प म् ध-प, प म् ध ऽ प, म् प म् ध-प, म् ध नि ध-प, म् ध ऽ प, म् रि ऽ, रि म् ध नि ध ऽ प, म् ध ऽ प रि ऽ, सा नि रि ऽ ऽ सा। इस प्रकार गुणिजन देख सकते हैं कि पूर्वांग में ऋषभ और उत्तरांग में पञ्चम का प्रयोग करने से ही कल्याण का कल्याणत्व प्रकट होता है, निखर आता है। इससे स्पष्ट है कि कल्याण में गान्धार का लंघन करने पर भी कल्याण का कल्याणत्व पूरी तौर से विद्यमान रहता है।

शुद्ध-कल्याण, भूप-कल्याण, जयत-कल्याण आदि में कल्याण का अंग 'परि' संगति पर ही निर्भर रहता है और पूर्वकल्याण में पंचम पर ही कल्याण दिखाई देता है, तद्वत् जहां-जहां नि रे-सा, म् ध-प या प-रि लगेंगे, वहां-वहां कल्याण का दर्शन होगा। इससे सिद्ध है कि कल्याण का कल्याणत्व 'प-रि' पर ही अवलम्बित है, गान्धार पर नहीं, जैसा कि पं० भातखण्डे ने कल्याण में 'ग' को वादी वता कर अपने ग्रन्थों में कहा है।

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट है कि कल्याण में ऋषभ और पंचम ये अंश स्वर हैं और गान्धार उसमें अंश न होने पर भी वल पाता है। इसी को वहुत्व' कहा गया है क्योंकि 'वहुत्व' द्वारा ऐसे स्वरों का सूचन किया जाता है, जो कि अंश न होते हुए भी वल पाते हैं।

वहुत्व का एक अन्य उदाहरण भी देख लें। देश और सोरठ में हम जानते हैं कि पूर्वांग में ऋषभ पर और उत्तरांग में पंचम पर मुकाम करना अनिवार्य है, आरोह अवरोह दोनों ओर से बार-बार ऋषभ और पंचम का दीर्घोचार सहित प्रयोग आवश्यक है। ऋषभ पंचम के इस वहुत्व से यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि इन रागों में 'ऋषभ-पंचम' अंश हैं। इसी भ्रमवश पं० भातखण्डे ने ऋषभ को वादी और पंचम को संवादी कहा है। वास्तव में इन रागों के अवरोह में धैवत और गान्धार का प्रयोग अल्प दिखते हुए भी इतना अनिवार्य है कि उनके वग़ैर इन रागों का रागत्व हो समूचा नष्ट हो जाता है। यथा:—

रि म ऽ रि, नि सा रि म ऽ ऽ रि, रि म प ऽ म रि, रि म पनि् ऽ प म रि, प म नि् ऽ पमरि, रिमपरिमनि्ऽ पमरि, म नि सा।

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि विना गान्धार-धैवत के देश या सोरठ के स्थान पर सारंग आविर्भूत होता है। किन्तु इन्हीं स्वरों के अवरोह में गान्धार धैवत का अल्प प्रयोग होते ही देश या सोरठ की प्रतिष्ठापना निम्नोक्त रूप से होगी:—

रिम ऽ गरि, नि सारि म ऽ गरि, रि मप रिम ऽ गरि, रि म पनि्ध ऽ प, ध ऽ म गरि पमनि् ध ऽ प, ध ऽ म गरि, रि मप रिम नि् ध ऽ ऽ प, रि म ऽ गरि, ग नि ऽ सा।

यह उदाहरण किसी भी शंकित मनुष्य को निःशंक वना सकता है कि देश या सोरठ में गान्धार धैवत का वहुत्व न होने पर भी अंशत्व है क्योंकि उसके विना राग की स्थापना ही असंभव है और ऋषभ पञ्चम का अंशत्व न होते हुए भी वहुत्व है।

इन दो उदाहरणों से ही बुधजन वहुत्व का यथायथ बोध पा सकेंगे और अन्य रागों में इसकी अनुभूति ले सकेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

९-१०) षाडवत्व-औडवत्व—सम्पूर्ण सप्तक के भीतर से एक स्वर निकालने से षाडव और दो स्वर निकालने से औडव प्रकार बनते हैं, यह सभी जानते हैं। इस विषय में भरत ने कहा है :—

पंचस्वरमौडवितं विज्ञेयं दशविधं प्रयोगज्ञैः।
षट्स्वरस्य प्रयोगोऽयं तथा पञ्चस्वरस्य च ॥
चतुःस्वरप्रयोगोऽपि देशापेक्षः प्रयुज्यते ॥

[ना० शा० २८।९५]

अर्थात्—पांच स्वरों के प्रयोग से औडव प्रकार बनते हैं। ऐसे ये औडव प्रकार दशविध हैं। जैसे षाडव में छः और औड़व में पांच स्वरों का प्रयोग होता है, तद्वत् चार स्वरों का प्रयोग भी देशी संगीत में प्रचलित है।

भरत की ऊपर उद्धृत कारिकाओं के अन्तिम भाग में जातिगान में चार स्वरों के प्रयोग का जो उल्लेख मिलता है, उससे अधुना प्रचलित मालश्री, धवलश्री जैसे रागों को आधार मिल जाता है। कुछ लोगों ने राग के स्वरों की न्यूनतम संख्या पांच मानकर इन रागों में तीव्र मध्यम का प्रयोग करके इन्हें औडव बनाने का यत्न किया है। किन्तु ऊपर उद्धृत भरत के वचन के अनुसार ऐसा यत्न अनावश्यक ही नहीं, अपितु शास्त्र-विरोधी होने के करण अनुचित भी ठहरता है, क्योंकि चार स्वरों के रागों का प्रयोग भी विहित है, निषिद्ध नहीं है।

शुद्धा विकृता जातियाँ

अब हम इन जातियों के भेद-प्रभेदों के प्राचीन-ग्रन्थोक्त विवरण को समझ लें। जाति के दो मुख्य भेद हैं। यथा:—१) शुद्धा २) विकृता।

शुद्धा जातियाँ

शुद्धा जातियां सात मानी गई हैं, जिनके नाम सप्त स्वरों पर से रखे गए हैं। यथा षाड्जी, आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती और नैषादी अथवा निषादवती। इन सात शुद्धा जातियां में से चार षड्जग्राम की हैं, यथा—षाड्जी, आर्षभी, धैवती और निषादवती तथा तीन मध्यमग्राम की हैं, यथा—गान्धारी, मध्यमा और पञ्चमी।

यों तो षड्जग्राम और मध्यमग्राम की चौदहों मूर्च्छनाओं को ग्रह, अंश, न्यासादि नियम लगाने से जातियां बनाई जा सकती थीं। किन्तु भरत ने दोनों ग्रामों में कुल मिलाकर सात ही शुद्धा जातियां कही हैं। दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं के स्वर-रूप देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चौदह मूर्च्छनाओं के स्थान पर केवल सात ही मूर्च्छनाओं को शुद्धा जातियों का रूप देने के पीछे भरत का क्या हेतु रहा होगा। हम जानते हैं कि दोनों ग्रामों की मूल स्वर-व्यवस्था में इतना ही अन्तर है, * कि षड्जग्राम में 'म-प' अन्तर चतुःश्रुति तथा 'पध' त्रिश्रुति है और मध्यमग्राम में 'मप' त्रिश्रुति और 'प-ध' चतुःश्रुति है। इन दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाएं यदि वीणा पर निकाल कर देखी जाएं तो उनकी स्वरावलियों में, श्रुति-व्यवस्था के सूक्ष्म भेदों को छोड़ कर, साम्य पाया जाता है। अर्थात् स्थूल रूप से दोनों ग्रामों की मूर्च्छनाओं द्वारा समान रागों का ही संकेत मिलता है। ये स्वर-सप्तक पुनरावृत्त न हों, संभवतः इसीलिए भरत ने शुद्धा जातियों के लिए दोनों ग्रामों में से केवल सात मूर्च्छनाओं को ही चुना है।

---

*नान्यदेव ने कहा है:—

यदाऽन्योन्यविपर्यस्तश्रुती पञ्चमधैवतौ। तदा तं मध्यमग्रामं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

अर्थात् जब पञ्चम धैवत का आपस में श्रुतिविपर्यय हो जाता है यानी पञ्चम की चार श्रुति धैवत को और धैवत की चार श्रुति पञ्चम को मिल जाती हैं, तब मध्यमग्राम कहा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन द्वैग्रामिक सात शुद्धा जातियों के नाम सात स्वरों पर से रखे गए हैं। यथा — षड्ज से षाड्जी, ऋषभ से आर्षभी, गान्धार से गान्धारी, मध्यम से मध्यमा, पंचम से पञ्चमी, धैवत से धैवती और निषाद से निषादवती। इन शुद्धा जातियों के लक्षण भरत ने इस प्रकार निरूपित किए हैं :—

(१) 'अन्यूनस्वरा:'—अर्थात् जिनके आरोहावरोह संपूर्ण हों।

(२) 'स्वस्वरांशग्रहन्यासा'—अर्थात् जिस स्वर पर से जिस जाति का नाम रखा गया हो, वही स्वर उसका ग्रह, अंश और न्यास भी हो। उदाहरण के लिए षड्जग्राम की षाड्जी जाति का ग्रह षड्ज हो और षड्ज ही उसका अंश और न्यास भी हो। इसी प्रकार दोनों ग्रामों की सभी शुद्धा जातियों को समझना चाहिए अर्थात् ये लक्षण सभी पर घटित होते हैं

(३) 'न्यासविधावप्यासां मन्द्रो नियमात् भवति शुद्धासु'

अर्थात्—शुद्धा जातियों में न्यास स्वर नियम से मन्द्र में ही होना चाहिए।

भरत के इस वचन में 'मन्द्र' का अर्थ मन्द्र सप्तक नहीं अपितु जिस स्वर पर मन्द्र सप्तक पूर्ण करते हैं, उससे, यानी मध्य षड्ज से अभिप्राय है। आज भी जब हम गान-क्रिया और वादन-क्रिया करते हैं, तब अपवादरूप रागों को छोड़कर प्रायः सभी रागों में हम मध्य षड्ज पर ही पूर्ण न्यास करते हैं। यानी गान-क्रिया, आलाप-क्रिया, तान-क्रिया उसी मध्यषड्ज पर पूर्ण होती हैं। ऐसा ही नियम जाति-गान के लिए भी प्रयुक्त होता था, यह उपर्युक्त वचन से स्पष्ट है। सामान्य बोलचाल में अल्पविराम, प्रश्न, उद्गार और पूर्णविराम के उच्चारों की भिन्नता देखने से स्पष्ट होता है कि पूर्णविराम का वाचिक स्वर मध्य स्थान में ही होता है। जो वाग्व्यवहार में पूर्णविराम कहलाता है, उसे ही संगीत में न्यास वा पूर्ण न्यास कहा जाता है। अतः संगीत में भी उसका प्रयोग तार में नहीं, अपितु मध्य स्थान में किया जाता है। इसी तथ्य को निर्दशित करने के लिए भरत ने यह कहा है कि शुद्धा जाजियों का न्यास मन्द्र में ही होना चाहिए।

विकृता जातियाँ

शुद्धा जातियों की व्याख्या देखने के बाद अब हम जातियों के दूसरे मुख्य भेद विकृता को देख लें। भरत ने कहा है:—

एभ्योऽन्यतमेन द्वाभ्यां बहुभिर्वा लक्षणैर्विक्रियामुपगता न्यासवर्जं विकृतसंज्ञा भवन्ति।

अर्थात्—शुद्धा जातियों के लक्षणों में से 'न्यास' को छोड़कर एक दो या उससे अधिक लक्षणों में विकार उपजाने से विकृता जाति बनती हैं। उनके न्यास स्वर में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता यह ध्यान देने की बात है।

इसका स्पष्टार्थ यही हुआ कि विकृता जातियाँ दो प्रकार से बनती हैं :—(१) पूर्णत्व-सम्बन्धी नियम को भंग करने से यानी औडव षाडव प्रकार बनाने से और (२) जिस स्वर पर से जिस शुद्धा जाति का नाम-करण हुआ हो, उसी स्वर को अंश, ग्रह, अपन्यास मानने के नियम का उल्लंघन करने से। हाँ, केवल न्यास-स्वर के नियम का कभी उल्लंघन नहीं होता।

यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शुद्धा और विकृता जातियों का पार्थक्य बताते हुए भरत ने 'न्यास' शब्द का यहाँ दो अर्थों में प्रयोग किया है—(१) जाति के स्वर रूप का नियामक, तथा (२) विराम, ठहराव या मुकाम।

हम पहले ही देख आए हैं कि 'अंश' का भिन्न २ प्रकरणों में भिन्न २ अर्थों में प्रयोग हुआ है। उसी प्रकार यहाँ 'न्यास' से दो अर्थ अभिप्रेत हैं। ऊपर उद्धृत भरत के वचनों में 'न्यास' के द्विविध अर्थ की स्पष्टता निम्नोक्त विवरण से प्राप्त होगी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत के निम्नलिखित दो वाक्यांशों में 'न्यास' का प्रथम अर्थ यानी 'जाति' के स्वर रूप का नियामकत्व स्पष्ट होता है।

(क) शुद्धा अन्यूनस्वराः स्वरांशग्रहन्यासाः।

(ख) एभ्योऽन्यतमेन द्वाभ्यां बहुभिर्वा लक्षणैर्विक्रियामुपगता न्यासवर्जं विकृतसंज्ञा भवन्ति।

अर्थात् शुद्धा जतियों में तो उनका नाम-स्वर ही ग्रह, अंश और न्यास होता है। इन लक्षणों में से न्यास के नियम को छोड़कर अन्य लक्षणों में से एक दो या अधिक का भंग करने से जातियों के विकृत भेद बनते हैं। यहां 'न्यासवर्जं' यह कह कर 'न्यास' को अपरिवर्तनशील बताते हुए भरत ने इस सिद्धान्त को स्पष्ट किया है कि उन-उन जातियों का न्यास-स्वर ही उनके स्वर-रूप का नियामक है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जाति के न्यास स्वर से उत्थित मूर्च्छना से प्राप्त स्वरावलि को बनाए रखते हुए ग्रह-अंश अपन्यास के परिवर्तन से तथा संपूर्णत्व-भंग करके औडव-षाडव रूपों के निर्माण से शुद्धा जातियों के विकृत भेद बनाने की विधि भरत ने कही है।

यहां कुछ प्रश्न हो सकते हैं। ग्रह या अंश को जातियों के स्वर-रूप का नियामक क्यों न माना जाए? गान की प्रवृत्ति के प्रवर्त्तक 'ग्रह' को अथवा प्रधानीभूत या प्राणस्वरूप 'अंश' को जाति के स्वर-रूप का अर्थात् मूर्च्छना का नियामक क्यों न माना जाए? 'न्यास' को ही क्यों माना जाए? 'न्यास' को नियामक मानने के प्रमाणीभूत कारण क्या हैं? उत्तर निम्नोक्त है:—

(१) शुद्धा जातियों के अन्तर्गत विकृत भेद बनाने के प्रसंग में भरत का 'न्यासवर्जं' यह विधान है। यदि एक जाति के अन्तर्गत अन्य विकृत भेदों का निर्माण करना है तो उस जाति को मूल स्वरावलि को स्थिर रखना ही होगा, उसे अपरिवर्तनशील रखते हुए ही उसी स्वरावलि के अन्तर्गत ग्रह, अंश का परिवर्तन करके तथा औडव-षाडव आदि भेद बनाकर विकृत भेद उपजाए जा सकते हैं। तभी वे सब विकृत भेद एकता के सूत्र में आबद्ध रहेंगे और किसी जाति-विशेष के अन्तर्गत समाविष्ट रह सकेंगे।

(२) भरत ने १८ जातियों में कुल मिलाकर ग्रह-अंश की संख्या ६३ कही है, किन्तु न्यास केवल २१ ही बताए हैं। यदि इन विपुलसंख्यक ग्रहों अथवा अंशों को जातियों के स्वर-रूप का नियामक मान लें और उन-उन स्वरों से मूर्च्छनाएं बनाएं तो कैसा अपार पुनरुक्ति दोष खड़ा होगा? ग्रह-अंशों की यह विपुल संख्या कितनी घोर अव्यवस्था की सृष्टि करेगी?

(३) हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रायः प्रत्येक जाति में एक से अधिक स्वरों को ग्रह और अंश का स्थान दिया गया है। यदि प्रत्येक ग्रह-अंश से मूर्च्छना बना कर जातियों के स्वर-रूप बनाने लगेंगे तो किसी भी जाति का कोई निश्चित रूप ही नहीं रह पाएगा; नियमन का सर्वथा अभाव हो जाएगा और घोर अराजकता की-सी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

(४) इसीलिए अपवाद-स्वरूप एक दो जातियों को छोड़कर प्रत्येक जाति में न्यास स्वर एक ही एक बताया गया है, साथ ही उसे अपरिवर्तनशील भी कहा है। जो सर्वथा अपरिवर्तनशील है, वही अचल है और वही नियामक हो सकता है, अन्य नहीं।

ऊपर लिखे कारणों से यह स्पष्ट है कि न्यास स्वर ही जातियों के स्वररूप का नियामक है और उसे उसी रूप में ग्रहण करने से ही जातियों के सुसंगत, नियमित, व्यवस्थित और स्थिर रूपों का निर्माण हो सकता है, अन्यथा नहीं। जिस प्रकार 'अंश' ही विकल्प से 'ग्रह' बनता है वैसे ही 'अंश' ही न्यासत्व को प्राप्त होता है। ग्रह अंश का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'ग्रहत्व' और 'अंशत्व' परिवर्तनशील है। किन्तु उसका न्यासत्व अपरिवर्तनशील है। इस दृष्टि से भी न्यासत्व को प्राप्त अंश ही जाति का नियामक बन सकता है।

शास्त्र-वचन से स्पष्ट है कि जो अंश है, वही न्यास है।

अथ न्यासः। अंशसमाप्तौ स चैकविंशतिविधः। (ना० शा० २८)

इसी वचन को मतंग ने यों उद्धृत किया है:—

न्यासो ह्यंशसमाप्तौ स चैकविंशतिविधो विधातव्यः। (बृहद्देशी पृ० ६०)

इसी 'अंशसमाप्तौ' का विग्रह मतंग ने यों किया है—'अंशः समाप्तौ कार्यः।' अर्थात् जो अंश समाप्ति में प्रयुक्त किया जाये वही न्यास है।

इससे यह स्पष्ट है कि जो अंश न्यासत्व को प्राप्त होता है वही जाति के स्वरों का नियामक बनता है, अन्य अंश नहीं। इसलिए नियामकत्व 'न्यास' में ही निहित है, अंश में नहीं। इसीलिए ग्रह-अंशादि में परिवर्तन विहित है, न्यास में नहीं। न्यास की अपरिवर्तनशीलता एवं 'अंश' का 'न्यासत्व' को प्राप्त होना, इन दोनों 'न्यास' की विशेषताओं से वह जाति के स्वरों का नियामक है। इस अर्थ की स्पष्टता और पुष्टि हम ऊपर लिखे वचनों में देख आए हैं। अब 'न्यास' शब्द में दूसरा अर्थ जो सन्निहित है, उसको देख लें। उसके लिए भरत कहते हैं:—

'न्यासविधावप्यासां मन्द्रा नियमात् भवति शुद्धासु विकृतास्वनियमात्।

अर्थात् न्यास-विधि में भी शुद्धा जातियों में न्यास सर्वदा (नियम से) मन्द्र में होता है; किन्तु विकृताओं में ऐसा कुछ नियम नहीं है।

शुद्धा जातियों के विकृत भेद बताते समय न्यास किस अर्थ में अपरिवर्तनशील रहता है, और जातियों के स्वरों का नियामक बनता है वह हम ऊपर देख चुके हैं; किन्तु इन्हीं विकृत भेदों में 'न्यास' किस भिन्न अर्थ में परिवर्तनशील बनता है, उसकी स्पष्टता भरत के उपर्युक्त वचन में प्राप्त है।

'न्यास' का यह भिन्न अर्थ है—ठहराव, मुकाम या विराम।

न्यास सम्बन्धी भरत के ये दो विधान आपाततः परस्पर विरोधी दिखाई देते हैं। एक ओर तो 'एकस्योऽन्यतमेन द्वाभ्यां बहुभिर्वा लक्षणैर्विक्रियामुपगताः न्यासवर्जं विकृतसंज्ञा भवन्ति. इस वचन में न्यासवर्जं' कहकर 'न्यास' को शुद्ध विकृत भेदों में 'अपरिवर्तनशील' कहा है और दूसरी ओर 'विकृतास्वनियमात्' कहकर विकृत जाति-भेदों में न्यास' को परिवर्तनशील भी बताया है। किंतु इस विरोधाभास की संगति तभी बैठ सकती है जब 'न्यास' के जो दो भिन्न-भिन्न अर्थ भरत को अभिप्रेत हैं, उन्हें यथायथ रूप से समझ लिया जाए। इन अर्थों की स्पष्टता के अभाव में ही विरोध दिखाई देता है, वास्तव में भरत के वचनों में कोई विरोध नहीं है।

ऊपर के पूरे विवरण का निष्कर्ष यह है कि 'न्यास' को जहां 'न्यासवर्जं' कह कर अपरिवर्तनशील कहा है वहां उससे जाति के स्वरों का नियामकत्व अभिप्रेत है और नियामक का अपरिवर्तनशील होना अनिवार्य है; दूसरी ओर 'विकृतास्वनियमात्' कह कर 'न्यास' को जब 'परिवर्तनशील' बताया है. तब उससे ठहराव या मुकाम या विराम ही अभिप्रेत है और विराम की परिवर्तनशीलता से न्यास में निहित जाति के स्वरों का नियामकत्व किसी प्रकार से बाधित नहीं होता।

शुद्धा जातियों में तो एक ही स्वर, ग्रह, अंश और न्यास होता है। वहां ग्रह का 'प्रवर्तकत्व', अंश का 'प्रधानत्व' तथा न्यास का नियामकत्व एवं 'समाप्तिकृतत्व'—ये सब कुछ एक ही स्वर में अन्तर्हित रहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु शुद्धा जातियों के अवान्तर विकृत भेदों में नाम-स्वर से भिन्न-भिन्न ग्रह, अंशों, अपन्यास आदि का प्रयोग विहित है। इन विकृत जाति-भेदों में भी 'नियामक' न्यास तो अपरिवर्तित ही रहता है, किन्तु ठहराव, विराम, मुकाम के रूप में न्यास परिवर्तित हो सकता है, यही अर्थ भरत के 'विकृतास्त्वनियमात्' इस वचन में निहित है।

इस ग्रह अंश-परिवर्तन के लिए क्षेत्र निर्धारित करने के निमित्त ही शुद्धा जातियों में एक से अधिक अंश (ग्रह) बताए हैं। ध्यान रहे कि प्रत्येक जाति का न्यास स्वर उसके अंशों (ग्रहों) में से ही एक है। इसीलिए यहाँ कहा गया है कि जो 'अंश' समाप्ति में प्रयुक्त हो, वही न्यास है।

शुद्धा जातियों के अवान्तर विकृत भेदों की संख्या निर्दिष्ट न करते हुए भी भरत मुनि ने इन भेदों की रचना की मर्यादा निर्धारित कर दी है। जिस प्रकार ग्रह-अंशों की संख्या निश्चित करके ग्रह-अंश परिवर्त्तन का क्षेत्र निर्धारित कर दिया है, तद्वत् औडव-पाडव भेदों की रचना का भी नियमन कर दिया है। 'रत्नाकर' कार ने जो विकृत भेद गिनाए हैं, उनकी संख्या नीचे की सारिणी में प्रस्तुत है:—

जाति नाम	कुल विकृत भेद संख्या	विकृति के प्रकार	
		औडवपाडवादि भेद	ग्रह, अंश, अपन्यास के नियम-भंग से बने भेद
१—षड्जी	१५	८	७
२—आर्षभी	२३	१६	७
३—गान्धारी	२३	१६	७
४—मध्यमा	२३	१६	७
५—पंचमी	२३	१६	७
६—धैवती	२३	१६	७
७—निषादवती	२३	१६	७
कुल संख्या	१५३	१०४	४६

संसर्गजा विकृता जातियाँ

शुद्धा जातियों के उपरिलिखित विकृत भेदों के अतिरिक्त अन्य एकादश संसर्गजा विकृता जातियां पृथक् रूप से कही गई हैं। इन संसर्गजा विकृता जातियों के संबन्ध में भरत, मतंग तथा शार्ङ्गदेव के वचन इस प्रकार हैं:—

भरत—तत्रैकादश जातयोऽधिकृताः परस्परं संयोगादेकादश निर्वर्तयन्ति। यथा:—

शुद्धा विकृताश्चैव समवायाज्जातयस्तु जायन्ते। पुनरेवाशुद्धकृता[1] भवन्त्येकादशान्यास्तु॥
तासां या निर्वृत्ता स्वरेष्वथांशेषु च जातिः। तां वक्ष्यामि यथावत् संक्षेपेण क्रमेणेह॥

[ना० शा० २८।४३, ४४]

अर्थात् एकादश जातियों का अब अधिकार (प्रकरण) है। (शुद्धा जातियों के) परस्पर संयोग से एकादश जातियां निष्पन्न होती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"जातियाँ शुद्धा और विकृता होती हैं।"

[यहां 'विकृता' से शुद्धा जातियों के विकृत भेदों से तात्पर्य है। इन 'विकृता' जातियों के अतिरिक्त अन्य एकादश संसर्गजा विकृता जातियों के लिए भरत ने कहा है "समवाय द्वारा पुनः अशुद्ध की हुई जातियां एकादश होती हैं। इन एकादश जातियों में से जो जाति (संसर्गजा) जिन-जिन अंश स्वरों तथा जिन जातियों (के समवाय) से निष्पन्न होती है, उसे उसी प्रकार संक्षेप से क्रम से बताया जाएगा।"

मतग—तत्र शुद्धानां जातीनां शुद्धत्वं विकृतत्वं च रूपद्वयमस्ति, एकादशानां विकृतोद्भवत्वाद् विकृतत्वमेव रूपं भवति।

[बृहद्देशी पृ० ५४]

अर्थात् शुद्धा जातियों के तो शुद्ध और विकृत यों दो रूप होते हैं, किन्तु एकादश (संसर्गजा) जातियों का उद्भव विकृत जातियों से होने के कारण उनका विकृत ही रूप होता है। अर्थात् ये नित्य विकृता हैं।

इस विषय में शार्ङ्गदेव का वचन निम्नोक्त है:—

विकृतानां तु संसर्गाज्जाता एकादश स्मृताः। [सं र० १।७।२]

अर्थात् विकृताओं के संसर्ग से एकादश जातियां उत्पन्न होती हैं।

ऊपर उद्धृत इन तीनों वचनों का मूल अभिप्राय यह है कि संसर्गजा जातियां विकृत ही होती हैं, उनका शुद्ध रूप नहीं होता। किन्तु भरतोक्त 'पुनरेवाशुद्धकृता', 'समवायात्' तथा 'अन्यास्तु' ये शब्द इस सम्बन्ध में विशेष विचारणीय हैं। 'शुद्धा' जातियों के ग्रह-अंश परिवर्तन तथा औडव-षाडव भेद-निर्माण से उनके (शुद्धा-जातियों के) जो विकृत भेद बनते हैं, उनसे ये एकादश जातियां बिल्कुल भिन्न हैं; इसीलिए 'अन्यास्तु' कहा है। हम यह जानते हैं कि संसर्गजा जातियों का विवरण देते समय उनमें 'शुद्धा' जातियों का ही 'संसर्ग,' 'संयोग' या 'समवाय' कहा गया है। उदाहरण के लिए 'षाड्जी' 'आर्षभी' आदि शुद्धा जाति-नामों का ही 'संसर्ग' 'संयोग' या 'समवाय' के प्रसंग में उल्लेख किया गया है। और कहीं भी यह संकेत नहीं दिया गया है कि अमुक शुद्धा जाति के अमुक विकृत भेद का 'संसर्ग' में उपयोग करना अभिप्रेत है। हम देख आए हैं कि एक-एक शुद्धा जाति के अनेकों विकृत भेद बनते हैं। अतः किसी निश्चित संकेत के बिना किस आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि विकृत भेदों की विपुल संख्या में से कहां कौन से विकृत भेदों का उपयोग करना है। अतः यह कहना ग़लत होगा कि शुद्धा जातियों के विकृत भेदों से संसर्गजा जातियों का उद्भव हुआ है। इसीलिए यह स्पष्ट है कि भरत को इन विकृत भेदों का संसर्ग अभिप्रेत नहीं था; अन्यथा उन्होंने अभीप्सित विकृत भेदों का अवश्य उल्लेख किया होता। ऐसी अवस्था में 'पुनरेवाशुद्धकृता' यह वचनांश बहुत महत्वपूर्ण है। इसको 'समवायात् पुनरेवाशुद्धकृता' यों समवायात् के साथ रखकर देखने से यह अर्थ स्पष्ट होता है कि 'समवाय' द्वारा अर्थात् 'समूहरचना' द्वारा जिन शुद्धा जातियों को 'अशुद्ध' बनाया जाता है, वे ही 'अशुद्धकृता' जातियां समूहगत हो कर अन्य ऐकादश बनती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि शुद्धा जातियों को ही जब निश्चित समूहगत रूप से प्रयोग में लाया जायगा अर्थात् जब एक से अधिक शुद्धा जातियों को पृथक् या स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त न करके उनके समवाय या समूह की रचना की जायगी तब उनकी शुद्धावस्था नहीं रह जाएगी। यह जो समवायज अशुद्धावस्था है वह पूर्वोक्त विकृत भेदों से पृथक है। इसीलिए विकृता न कह कर 'पुनरेवाशुद्धकृता' कहा है। ध्यान रहे कि यहां पुनः' से दुबारा अर्थ नहीं है; अपितु पूर्वोक्त विकृत भेदों से व्यावर्त्तक के रूप में उसका प्रयोग हुआ है।

१—'ता एव शुद्धविकृता' (ना० शा० चौखम्बा संस्करण)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊपर लिखे विवरण से यह स्पष्ट है कि मतंग के 'विकृतोद्भवत्वात्' तथा शार्ङ्गदेव के 'विकृतानां संसर्गाजाता ।' इन शब्दों से यद्यपि ऐसी भ्रान्ति हो सकती है कि शुद्धा जातियों के 'विकृत' भेदों के संसर्ग से ये एकादश जातियाँ बनती हैं, तथापि ऊपर प्रतिपादित सिद्धान्त को देखते हुए ऐसा अर्थ लगाना न तो भरत-सम्मत है और न तर्कसंगत ही ।

इस प्रकार हमने देखा कि शुद्धा जातियों के विकृत भेदों के संसर्ग से एकादश संसर्गजा जातियों की निष्पत्ति मानना उचित नहीं है, क्योंकि :—

(१) शुद्धा जातियों के अवान्तर विकृत भेदों की संख्या विपुल है; उनके परस्पर 'संसर्ग' से विपुलतर संसर्गज रूपों का निर्माण हो सकता है, किन्तु भरतोक्त एकादश संख्या में मर्यादित संसर्गज रूपों के साथ इन अमर्यादित संसर्गों का सम्बन्ध जोड़ना भरत-सिद्धान्त के प्रतिकूल है ।

(२) एकादश संसर्गज रूपों के निर्माण में किस शुद्धा जाति के किस 'विकृत' भेद का संसर्ग में उपयोग करना है, इसका कोई भी संकेत कहीं भी उपलब्ध नहीं है ।

(३) भरतोक्त 'पुनरेवाशुद्धकृता' (समवायात्) से भी यही अर्थ निकलता है कि 'शुद्धा' जातियों के विकृत भेद बनाने की जो विधि बताई गई है, उससे भिन्न विधि द्वारा एकादश 'अन्य' जातियों का निर्माण अभिप्रेत है और वह भिन्न विधि यह है कि 'समवाय' द्वारा 'शुद्धा' जातियों को समूहबद्ध करके उनके 'शुद्धत्व' को भंग किया जाए । अस्तु । जिन जातियों के संसर्ग से एकादश संसर्गजा जातियां निष्पन्न होती हैं उनका विवरण भरत ने इस प्रकार दिया है ।

स्यात् षड्जमध्यमाभ्यां निर्वृत्ता षड्जमध्यमा जातिः ।
षाड्जीगान्धारीभ्यां धैवत्याश्चापि या विनिष्पन्ना ॥

संसर्गाद्वा विज्ञेया षड्जोदीच्यवा जातिः ।
षाड्जीगान्धारीभ्यां सम्भूता षड्जकैशिकी जातिः ॥

षाड्जीगान्धारीभ्यां धैवत्याश्चापि मध्यमया वा ।
निर्वृत्ता या जातिः सा मध्यमोदीच्यवा नाम्ना ॥

गान्धारीपञ्चमीभ्यां नैषादीमध्यमाभ्याञ्च ।
रक्तगान्धारी नाम जातिः स्याच्चतसृभिस्ताभिः ॥

गान्धारीषड्जाभ्यां संसर्गाज्जायते चान्ध्री ।
गन्धारीपञ्चमीभ्यामार्षभीभ्यां चैव नन्दयन्ती तु ॥

गान्धारीपञ्चमीभ्यां जाता गान्धारपञ्चमी जातिः ।
नैषाद्यार्षभीभ्यां पञ्चम्याश्चैव संसर्गात् ॥

कार्मारवी नाम्ना जातिः पूर्णा हि भवति चेयम् ।
धैवत्यार्षभीहीना पञ्चाद्याः कैशिकीं कुर्युः ॥

[ना० शा० २८।४५-५२]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नीचे दी हुई तालिका से यह विवरण स्पष्ट हो जायगा।

संसर्गजा विकृता जातियाँ	ग्राम	किन शुद्धा जातियों के संसर्ग से बनी हैं ?
१—षड्जमध्यमा	षड्ज	षाड्जी + मध्यमा
२—षड्जोदीच्यवा	„	षाड्जी + गान्धारी + धैवती
३—षड्जकैशिकी	„	षाड्जी + गान्धारी
४—गान्धारोदीच्यवा	मध्यम	षाड्जी + गान्धारी + धैवती + मध्यमा
५—मध्यमोदीच्यवा	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी + धैवती + मध्यमा
६—रक्तगान्धारी	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी + नैषादी + मध्यमा
७—आन्ध्री	मध्यम	गान्धारी + षड्जा
८—नन्दयन्ती	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी + आर्षभी
९—गान्धारपञ्चमी	मध्यम	गान्धारी + पञ्चमी
१०—कार्मारवी	मध्यम	नैषादी + आर्षभी + पञ्चमी
११—कैशिकी	मध्यम	षाड्जी + गान्धारी + मध्यमा + पञ्चमी + नैषादी

अष्टादश जातियों के लक्षण

जाति के दश लक्षणों पर हम विस्तार से विचार कर चुके हैं। साथ ही जातियों के शुद्ध विकृत भेदों तथा संसर्गज विकृत भेदों की परस्पर भिन्नता भी हम देख चुके हैं। अब अट्ठारहों जातियों के ग्रह-अंश-न्यासादि लक्षणों का विवरण क्रमप्राप्त है। पाठकों के सौकर्य के लिए हम भरत, दत्तिल, मतंग, नान्यदेव तथा शार्ङ्गदेव के अनुसार सभी जाति-लक्षणों को एक ही सारिणी के अन्तर्गत प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे एक ही दृष्टि में इन ग्रन्थकारों का मतैक्य अथवा मतभेद स्पष्ट हो जाएगा। जहाँ सबका मतैक्य है, वहाँ कोई संकेत नहीं दिया गया है। किन्तु जहाँ कहीं जिस किसी ग्रन्थकार का मतभेद है, वहाँ द० = दत्तिल शा० = शार्ङ्गदेव म० = मतंग ना० = नान्यदेव इन संक्षिप्त संकेतों के साथ मतभेद दिखा दिया गया है। भरत का मत प्रत्येक कोष्ठक में सर्वप्रथम दिया है, अतः भरत के लिये प्रायः किसी संकेत का प्रयोग नहीं किया गया है। जहाँ कहीं ऐसी स्थिति है कि कोई लक्षण केवल भरत में ही प्राप्त होता है, वहाँ 'भ०' संकेत रखा गया है। जहाँ नाट्यशास्त्र के निर्णयसागर संस्करण तथा काशी संस्करण में पाठभेद के कारण लक्षणों में भिन्नता पाई गई है, वहाँ क्रमशः 'नि०' तथा 'का०' इन संकेतों का उपयोग किया गया है। विशेषोल्लेख के स्तम्भ (कॉलम) में मूर्च्छनाओं का जो उल्लेख है, उसे मतंग तथा शार्ङ्गदेव के जाति-प्रकरण के अन्तर्गत स्पष्ट किया जायेगा।

इस प्रकार अष्टादश जातियों में ६३ ग्रह-अंश, २१ न्यास, ५६ अपन्यास तथा अल्पत्व-बहुत्व आदि अन्य लक्षण निम्नोक्त सारिणी में एकत्रित रूप से प्रस्तुत हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्र. सं.	जाति-नाम	ग्राम	ग्रह-अंश	न्यास	अपन्यास	अल्पत्व-बहुत्व	षाडव-औडव भेद	विशेषोल्लेख
१	षाड्जी	षड्ज	षड्ज, मध्यम गान्धार, पञ्चम, धैवत।	षड्ज	गान्धार, पञ्चम।	म० ऋषभ-निषाद का अल्पत्व, म०, षड्ज, गान्धार और षड्ज, धैवत का सञ्चार।	'नि' लोप से षाडव, 'नि-प' लोप से औडव।	शा० जब गान्धार अंश तब निषाद का लोप नहीं। म० जब संपूर्ण तब ऋषभ, पञ्चम और निषाद-पञ्चम का अल्पत्व शा० म० मूर्च्छना धैवतादिका।
२	आर्षभी	षड्ज	ऋषभ निषाद, धैवत।	ऋषभ	ऋषभ, निषाद, धैवत।	निषाद का अल्पत्व, ना. गान्धार-निषाद का बहुत्व, पञ्चम का अल्पत्व, म० निषाद-पञ्चम का अल्पत्व, म. ऋषभ-गान्धार की संगति	निषाद हीन षाडव निषाद-पञ्चम-हीन औडव म. ना. षड्जहीन षाडव, षड्ज-पञ्चमहीन औडव।	शा० म० मूर्च्छना पञ्चमादि।
३	गांधारी	मध्यम	षड्ज, गान्धार, मध्यम, पञ्चम निषाद।	गान्धार	षड्ज, पञ्चम म० षड्ज मध्यम द० षड्ज, पञ्चम।	ऋषभ, धैवत का अल्पत्व, म० द० 'धैवत से ऋषभ पर जाए" (?)	ऋषभ लोप से षाडव ऋषभ धैवत लोप से औडव, ना० शा० द० ऋषभ, पञ्चम लोप से औडव।	शा० जब पञ्चम अंश, तब पूर्णावस्था, जब निषाद, षड्ज, मध्यम अंश, तब संपूर्ण और षाडवा, जब गांधार अंश तब पूर्ण-षाडव (?) म० ऋषभ-धैवत की संगति। शा० म० धैवतादि मूर्च्छना।
४	मध्यमा	,,	षड्ज, ऋषभ मध्यम पञ्चम, धैवत।	मध्यम	षड्ज, ऋषभ, मध्यम, पञ्चम, धैवत।	भ. शा. द. षड्ज, मध्यम का बहुत्व तथा गान्धार का अल्पत्व।	गान्धार लोप से षाडव, गान्धार-निषाद लोप से औडव।	शा० मूर्च्छना ऋषभादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

५ पञ्चमी	,,	ऋषभ, पञ्चम म. पाठ भेद—ऋ. धै.	पञ्चम	(नि.) पञ्चम, निषाद (का.) निषाद, पञ्चम, ऋषभ, ना. शा. म. पञ्चम, ऋषभ, म. पाठभेद—'ष. म.'।	निषाद का अल्पत्व, शा. न. द. म. षड्ज गान्धार मध्यम का अल्पत्व, पञ्चम, ऋषभ का वहुत्व।	गान्धार लोप से षाडव, गान्धार, निषाद लोप से औडव।	शा० जब ऋषभ अंश, तब औडवावस्था नहीं, शा० पूर्णावस्था में 'ग-नि' संगति, षाडवावस्था में नहीं। भ. 'नि-म' संगति। शा. मूर्च्छना ऋषभादि। म० पाठभेद—'रि-म' संगति।
६ धैवती	षड्ज	ऋषभ, धैवत।	धैवत	ऋषभ, धैवत, मध्यम।	षड्ज, पञ्चम का अल्पत्व भ. आरोह में धैवत ऋषभ का लंघन।	षड्ज-पञ्चमहीन औडव, शा. म. पञ्चमहीन षाडव।	शा. म. मूर्च्छना ऋषभादि
७ नैषादी	,,	निषाद, ऋषभ, गान्धार।	निषाद	निषाद, ऋषभ, गान्धार।	षड्ज-पञ्चम का अल्पत्व, शा० 'स म प ध' का अल्पत्व।	पञ्चम लोप से षाडव, षड्ज-पञ्चम लोप से औडव।	म० पूर्णावस्था में 'ष० गां. म. प.' का. अल्पत्व औडवावस्था में मध्यम धैवत का अल्पत्व। शा. म. मूर्च्छना गान्धारादि।
८ षड्ज-मध्यमा	षड्ज	सातों स्वर	षड्ज, मध्यम	सातों स्वर।	निषाद का अल्पत्व, र० जब 'गां' अंश न हो तभी 'नि' का अल्पत्व, म. पूर्णावस्था में नि. गां. का अल्पत्व।	निषाद लोप से षाडव, गान्धार निषाद लोप से औडव।	भ. सभी स्वरों का सञ्चार. म. निषाद गान्धार गतित्वकारी (?), शा. म. मूर्च्छना मध्यमादि।
९ षड्ज-कैशिकी	,,	षड्ज, गान्धार, पञ्चम,	गान्धार	षड्ज, पञ्चम, निषाद।	ऋषभ-धैवत का अल्पत्व, शा. म. ऋषभ मध्यम का अल्पत्व, धैवत, निषाद का 'अल्प-बहुत्व', द. ऋषभ का अल्पत्व।	नित्यपूर्णा।	शा. म. मूर्च्छना गान्धारादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्र० सं०	जाति-नाम	ग्राम	ग्रह-अंश	न्यास	अपन्यास	अल्पत्व-बहुत्व	षाडव औडव भेद	विशेष
१०	षड्जो दीच्यवा	,,	षड्ज, मध्यम, निषाद, धैवत	मध्यम	धैवत ऋषभ ना. म. द. धैवत षड्ज।	गान्धार का बहुत्व, शा. द. मन्द्रगान्धार का बहुत्व।	ऋषभ लोप से षाडव, ऋषभ-पञ्चम लोपसे औडव।	शा. षड्ज, ऋषभ का तारस्थान में भूरि-प्रयोग, तारगत ऋषभ का बहुत्व, मन्द्रगत ऋषभ का अल्पत्व, जब धैवत अंश, तब षाडव नहीं। शा. म. मूर्च्छना गान्धारादि।
११	कैशिकी	मध्यम	षड्ज, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद ना. म. द. (?)	गांधार निषाद, कभी २ पं० भी (जब 'धनि' अंश हों) ना. गांधार शा. म. द. गां. पं. नि.	षड्ज, पञ्चम, निषाद, कदाचित् ऋषभ भी, ना. ष. पं. नि., शा. ष. गां. म. प. धै.-नि. मतंग जब धैवत अंश, तब ऋषभ अपन्यास।	ऋषभ, धैवत का दौर्बल्य, शा. ऋषभ का दौर्बल्य, पं. नि. का बाहुल्य, भ. ष. पं. का बाहुल्य, भ. सब स्वरों का संचार।	नित्यपूर्णा शा. म. ऋषभ लोप से षाडव, ऋ. धै. लोप से औडव।	शा. म. मूर्च्छना गान्धारादि।
१२	कार्मारवी	,,	पञ्चम, ऋषभ, निषाद, धैवत द. पञ्चम के स्थान पर मध्यम	पञ्चम	पञ्चम, ऋषभ, निषाद, धैवत।	गान्धार का बहुत्व।	नित्यपूर्णा	शा. म. मूर्च्छना षड्जादि।
१३	आन्ध्री	,,	पञ्चम, ऋषभ, गान्धार, निषाद	गान्धार	पञ्चम, ऋषभ, गान्धार, निषाद।	गान्धार ऋषभ की संगति। भ. धैवत, निषाद की भी संगति।	षड्ज लोप से षाडव।	शा. म. मूर्च्छना मध्यमादि।
१४	रक्त गांधारी	,,	पञ्चम, ऋषभ, गान्धार मध्यम, निषाद, ना. द. पञ्चम के स्थान पर षड्ज, शा. ष. गां. म. प. नि., मतं. ष. पं. गां, म. नि.,	गान्धार	मध्यम, ना. षड्ज पञ्चम, कदाचित् मध्यम भी, जब धै. नि. अंश, तब पञ्चम अपन्यास, कभी ऋषभ भी।	भ. शा. द. नि. धै. का बहुत्व, भ. द. षड्ज-गान्धार का सञ्चार, म० पूर्णावस्था में ऋषभ धैवत का अल्पत्व।	ऋषभ, लोप से षाडव ऋषभ, धैवत लोप से औडव।	शा. जब पञ्चम अंश तब षाडवत्व नहीं। शा. म. मूर्च्छना ऋषभादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्र. सं.	जाति-नाम	ग्राम	ग्रह-अंश	न्यास	अपन्यास	अल्पत्व-बहुत्व	षाडव औडव भेद	विशेष
१५	मध्यमोदीच्यवा	मध्यम	पञ्चम, शा. षड्ज, मध्यम	मध्यम	भ. म. ना. षड्ज धैवत।	गान्धार का बहुत्व शा. ऋषभ का अल्पत्व, मन्द्र स्थान में गान्धार का बहुत्व।	भ. ऋषभ रहित षाडव शा. म. नित्यपूर्णा।	शा. म. मूर्च्छना मध्यमादि।
१६	गान्धार पञ्चमी	,,	पञ्चम	गान्धार	ऋषभ, पञ्चम।	गान्धार, पञ्चम द्वारा संचार। शा. 'रि-म' संगति।	म. नित्यपूर्णा शा. ना. द.। (?)	शा. म. मूर्च्छना गान्धारादि।
१७	गांधारोदीच्यवा	,,	षड्ज मध्यम म. पाठभेद में अंश पञ्चम्(?)	मध्यम	भ. शा. षड्ज धैवत, ना. ऋषभ धैवत।	भ० गान्धार का बहुत्व। ना. ऋषभ का अल्पत्व, मन्द्र स्थान में गान्धार का बहुत्व।	ऋषभ लोप से षाडव।	शा. म. मूर्च्छना ऋषभादि
१८	नन्दयन्ती	,,	गां. ग्रह, पं. अंश, ना. पञ्चम ग्रह अंश।	गान्धार	ना. भ. मध्यम, म. द. शा. मध्यम, पञ्चम।	भ० 'ऋ. गां.' तथा 'धै. नि.' का सञ्चार, म. द. शा. मन्द्र ऋषभ का बाहुल्य, 'भ.' मन्द्र ऋषभ का लंघन (?। द. क्वचित् मन्द्र ऋषभ का लंघन।	षड्ज लोप से षाडव।	शा. म. मूर्च्छना हृष्यका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जातियों के स्वर-रूप

शुद्धा जातियाँ

भरतोक्त अट्ठारह जातियों के स्वर-रूप निष्पन्न करने के लिए शुद्धा जातियों और संसर्गजा विकृता जातियों पर पृथक्-पृथक् विचार करना आवश्यक है। प्रथम शुद्धा जातियों को ले लें।

शुद्धा जातियों के लक्षणों में से केवल न्यास-स्वर ही अपरिवर्त्तनशील होने के कारण वही उनके स्वर-रूप का नियामक है यह हम ऊपर (पृ० १४, १५ पर) देख चुके हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार षड्जग्राम की चार और मध्यमग्राम की तीन शुद्धा जातियों के संक्षिप्त स्वर-रूप नीचे प्रस्तुत हैं।

इन जातियों के जो स्वर-विस्तार नीचे दिये जा रहे हैं, उनमें भिन्न २ ग्रह-अंशादि का विनियोग करने में विशेष दृष्टि यह रखी गई है कि ये स्वर-विस्तार उसी प्रकार गायन-वादन-उपयोगी बन सकें जिस प्रकार कि हमारे आज के रागों में ग्रह-अंश-भेद के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप बनते हैं।

षड्जग्राम की शुद्धा जातियाँ

१. षाड्जी

षाड्जी का शुद्ध रूप षड्जग्राम के षड्ज को ही ग्रह, अंश, न्यास तथा अपन्यास मानने से बनता है। 'षड्ज' न्यास होने से षड्जग्राम की मूल स्वरावलि का ही इसमें उपयोग होगा जो कि काफ़ी सदृश है। 'सदृश' कहने का तात्पर्य यह है कि काफ़ी में ऋषभ चतुःश्रुति और गान्धार-निषाद षट्श्रुति हैं, किन्तु इसमें ऋषभ त्रिश्रुति और गान्धार निषाद पञ्चश्रुति हैं। यदि इसी स्वरावलि को तानपुरे का पहला तार पंचम में मिलाकर प्रयुक्त करेंगे या वीणा पर षड्जग्राम के मध्यम को परंपरानुसार षड्ज मानकर वादन करेंगे तो हूबहू आधुनिक काफ़ी के ही स्वरान्तर प्राप्त हो जाएंगे। इन दोनों स्वरावलियों में श्रुत्यन्तर का भेद होने पर भी सुनने में स्थूल मान से दोनों एक-सी ही प्रतीत होंगी। इसीलिए 'सदृश' कहा है। अस्तु। षाड्जी के शुद्ध रूप का स्वर-विस्तार निम्नोक्त है :—

सा, सारिसा, सारिग्, सारिसा, रिसाग्रिग्, सारिसा, सारिग्मग्रिग्, सारिसा, सारिपमग्रिग्, सारिसा, ग्रिग्-सारिपमग्रिग्, सारिसा, साग्रिग् सारिपमग्रिग्, सारिसा, सापमप मग्रिग् सरिसा।

अथवा

सा ऽऽ नि् धु सा, सा ऽ नि धु पु, धु पु धु सा, धु नि् धु सा, पु धु पु सा ऽऽ नि् धु सा, सारिग् [सा] रि ग् ऽऽ सा, पु धु सा रि [म] ग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा, सारिमग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा, पु धु सा रि [म] ग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा, सारिमग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा, नि् धु सा ऽऽ ग् रि ग् ऽऽ [सा] रि ग् ऽ सा, सा नि् धु पु धु सा रि [म] ग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा, ग्ग्रिसारि [म] ग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा।

साग्मग् ऽ ग्मपग्, पमपग् ऽ नि्धप ऽ धमप ऽ पधमग्, मधप ऽ प ध ग्, पमधप ऽ पधऽमग् [सा] रि ग् ऽ सा।

सा ऽऽ ग्मपधसां, सां नि् ध सां, सां नि् ध प धसांऽ सां ऽऽ नि् धपम ऽ धपमग्, साग्मप ऽ धपमग् ऽ मग् ऽ [सा] रि ग् ऽ सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा

सा ऽ नि॒ ध॒ सा, सा नि॒ ध॒ प॒ ध॒ सा, ध॒ प॒ ध॒ म॒ प॒ ध॒ सा, नि॒ ध॒ सा, प॒ ध॒ प॒ सा ऽऽ नि॒ ध॒ सा, सारि म ग॒ ऽ सा, प॒ ध॒ सा रि म ग॒ ऽ सा, सा नि॒ नि॒ ध॒ धप॒ पध॒ धसा सारि म ग॒ ऽ सा, ग॒ग॒रिसारि म ग॒ ऽ सा, ग॒रिसानि॒धप॒ पधसारिग॒ ऽ सा।

षाड्जी में 'सागमपध' से पांच ग्रह अंश कहे गए हैं। शुद्धा जातियों के लक्षणों में से किसी एक, दो या अधिक लक्षणों के परिवर्तन से उनके विकृत रूप बनते हैं। क्रियाकुशल गुणियों को यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि एक ही स्वरावली में भिन्न २ स्वरों पर कम या अधिक ठहराव करने से, इन स्वरों को बहुत्व या अल्पत्व देने से उसी एक में से कितने भिन्न-भिन्न रूप बनते हैं। त्रिवेणी, टंकी, रेवा, विभास अथवा देशकार, भूप, शुद्धकल्याण, जैतकल्याण आदि राग इस प्रकार के परिवर्तन से बनने वाले भिन्न-भिन्न रूपों के उदाहरण-स्वरूप, गुणियों को विदित हैं। उसी प्रकार इस शुद्धा षाड्जी जाति के ग्रह अंशों के परिवर्तन से, षाडव-भेद से, अपन्यास बदलने से भिन्न-भिन्न रूप बनेंगे जिन में हमारे आज के प्रचलित रागों से निकटतम साम्य दिखाई देगा। इस के कुछ उदाहरण निम्नोक्त हैं:—

गांधार को ग्रह अंश मानने से—

ग॒ग॒रिसारिग॒, रिरिसानि॒साग॒, सानि॒ ध॒ प॒ ध॒-सारिग॒, साग॒मग॒ पमपग॒, साग॒मपग॒, प॒नि॒साग॒, प॒नि॒साग॒मपग॒, ग॒ म॒प॒नि॒ सा गऽऽमग॒, धपधग॒, मग॒ ऽ पग॒ ऽ मग॒ ऽ सारि ऽ सा।

मध्यम ग्रह-अंश मानने से

ग॒ साग॒ सा म, सानि॒ रिसा सा म, मग॒रिग॒म, मग॒रिसानि॒साम, ध॒नि॒ ध॒ सा नि॒ रिनि॒ सा म, मग॒ सा ग॒रि सा रिसा सा म, म॒ध॒नि॒ सा म, मपधऽम, धपधऽम मग॒रिग॒म ऽ पधऽम, नि॒धपधऽम, मपधऽ पधनि॒धऽम, मग॒रिसा म, मग॒रिसा।

पञ्चम ग्रह-अंश मानने से

सारिग॒मप, प॒ध॒सारिगमप, पमग॒रिसानि॒ध॒प॒ प, पमप, धमप, मधप, ग॒मधप, मग॒साग॒मधप, पमग॒साग॒मधप, पमधप, प॒म॒ध॒प॒, सानि॒ रिसा मग॒पम प, मग॒रिसा।

धैवत ग्रह-अंश मानने से

ध॒नि॒सा ऽ ध॒नि॒ध॒ ऽ ध॒नि॒धसा ऽऽ ध॒नि॒ध॒, ध॒नि॒ रिसा ऽऽ ध॒नि॒ध॒, ध॒नि॒ ग॒रि ऽ ध॒नि॒ध॒, ध॒नि॒सारिग॒ ऽ सा ऽ ध॒नि॒ध॒, प॒ध॒सारिग॒ऽसा ऽ ध॒ नि॒ ध॒, प॒ ध॒ ऽ प॒ध॒नि॒ध॒ म॒प॒ध॒ ऽ प॒ध॒नि॒ध॒, ध॒सानि॒ध॒, ध॒नि॒ सारिग॒ ऽ रिसानि॒ध॒, ध॒नि॒ध॒ ध, धनि॒पध, मपधनि॒ध, मपध पधनि॒ध, ग॒मप मपध पधनि॒ध, रिग॒म ग॒मप मपध पधनि॒ध, धनि॒धसां ऽ धनि॒ध, सांनि॒धपमग॒रिसानि॒ध॒, ध॒नि॒सारि म ग॒ ऽ सा।

यहां यह प्रश्न हो सकता है कि 'ग॒मपध' ये भिन्न-भिन्न ग्रह-अंश होने पर भी प्रस्तुत स्वररूपों का आरंभ प्रायः 'सा' से ही क्यों किया गया है? उन-उन स्वरों से क्यों नहीं किया गया? इसका उत्तर यही है कि षड्ज का प्रथम उच्चार तो किसी भी स्वरावली के आरंभ में स्वरों के परस्पर अन्तराल निश्चित् करने के लिए आवश्यक होता है। किन्तु षड्ज का यह प्रथमोच्चार उसे ग्रह के रूप में स्थापित नहीं करता, क्योंकि प्रस्तुत रूपविशेष के निर्माण में जो स्वर प्रथम स्थान पाता है तथा केन्द्रबिन्दु बनता है, वही ग्रह-अंश है। 'सा' का प्रथमोच्चार (स्वर-सप्तक के नियामक के रूप में) होने पर भी वही ग्रह-अंश हो ऐसा आवश्यक नहीं है। आज के रागों के एक-दो उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सा' का तो सभी रागों में प्रथमोच्चार अनिवार्य होता है, किन्तु जयजयवन्ती में 'ध़नि़ रि' इस रागवाची स्वरयोजना का आरंभक स्वर 'ध़' है, तद्वत् कल्याण में मन्द्र निषाद आरंभक स्वर होता है। पुनः षाड्जी के भिन्न २ ग्रह अंशों पर विचार करें तो यह कहना होगा कि यदि 'ग॒मपध' को क्रमशः षड्ज का स्थान देने लगेंगे तो प्रत्येक वार स्वरान्तराल बदल जायेंगे। किन्तु यहां तो एक ही स्वरावली में से (स्वरान्तराल अपरिवर्तित रखते हुए) केवल ग्रह-अंश-अपन्यास के परिवर्तन से या षाडव-औडव भेद से भिन्न २ विकृत भेद वनाना वांछित है।

षाडव भेद

षाड्जी के लक्षणों में ऋषभ-निषाद का अल्पत्व कहा है और निषाद को वर्ज्य कर के षाडव रूप बनाने का विधान है। तदनुसार षाड्जी का षाडव रूप कुछ इस प्रकार होगा :—

साध़पध़सा, ध़सारिसा, ध़साग॒रिसा, प़ध़सारिग॒ऽसा, सारिमपध, पधसां, सांध, पधसां, रिंसांधप, मग॒रिसा, ध़सारिसा।

षाड्जी का औडव रूप 'प-नि' वर्ज्य कर के बनाने का विधान है। तदनुसार आभोगी कान्हड़ा जैसा निम्नलिखित रूप बनेगा :—

सा, ध़ सा, ध़सारिग॒ ऽ रि ऽ सा, सारिग॒ ऽ म ग॒मरि ऽ सा, सारिग॒मध, धमग॒ ऽ मरि ऽ सा, सारिग॒ ऽ मधसां, सांध ऽ मधसां, मग॒रिग॒मधसां, सांध ऽ म, मधसांध ऽ म, ग॒मधसां ध ऽ म, रिग॒मध ऽ म, ग॒मरि ऽ सा।

यहां यह उल्लेखनीय है कि अल्पत्व या बहुत्व प्रायः संवादी स्वर-जोड़ियों का ही होता है। 'रि-नि॒' कोई संवादी जोड़ी नहीं है। किन्तु 'षाड्जी' में यही दो स्वर ऐसे हैं जो ग्रह-अंशों में स्थान नहीं पाए हैं। संभवतः इसीलिए इन्हीं का अल्पत्व कहा गया हो। यदि ऋषभ के साथ-साथ उसके संवादी धैवत का अल्पत्व कहा जाता तो आज के कई रागरूप प्राप्त हो जाते। यथा भीमपलासी, सुहा, धानी आदि। किन्तु 'रि-नि॒' के अल्पत्व का विधान होने से इन सब रागरूपों को यहां स्थान नहीं दिया जा सका है। यदि ऋषभ के अल्पत्व का नियम न होता तो काफ़ी, शुद्ध धैवत के कान्हड़े, सिन्धूरा आदि कई अन्य रागरूप भी प्राप्त होते। जो भी हो, हमने ग्रन्थों में उल्लिखित नियमानुसार यथासंभव ऋषभ-निषाद का अल्पत्व रख कर स्वर-विस्तार बना दिए हैं।

२. आर्षभी

इसका न्यास-स्वर षड्जग्राम का ऋषभ है। उस ऋषभ से प्राप्त मूर्च्छना का रूप इस प्रकार है :—

रि – ग — म — प — ध — नि — सा – रि
— २ — ४ — ४ — ३, २ — ४ — ३ —

ऋषभ को षड्ज मानने से नीचे लिखा भैरवी का-सा रूप प्राप्त होगा :—

सा — रि॒ — ग॒ — म — प — ध॒ — नि॒ — सां
२ — ४ — ४ — ३ — २ — ४ — ३ —

ग्रह-अंश—षड्जग्राम की मूल स्वरावलि के अनुसार ऋषभ-धैवत-निषाद को इस जाति में ग्रह-अंश बनाया गया है। प्रस्तुत मूर्च्छना में यही स्वर क्रमशः 'सा' 'प' और 'ध॒' का स्थान पाते हैं। अतः 'सा' 'प' 'ध' इस जाति में ग्रह अंश बनेंगे।

अल्पत्व—इस जाति में षड्जग्राम के पञ्चम का अल्पत्व कहा गया है। प्रस्तुत मूर्च्छना में 'पञ्चम' ही 'मध्यम' बन जाता है। अतः मध्यम का इस जाति में अल्पत्व होगा।

यहां यह प्रश्न हो सकता है कि 'आर्षभी' के ग्रह-अंश 'ऋषभ-धैवत-निषाद' का षड्जग्राम की मूल स्वरावलि के साथ तादात्म्य क्यों स्थापित किया गया है? न्यास स्वर ऋषभ से जो मूर्च्छना बने, उसमें जो 'ऋषभ-धैवत-निषाद'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त हों, उन्हीं का ग्रहण क्यों न किया जाए ? षड्जग्राम की मूल स्वरावली के 'ऋषभ-धैवत-निषाद' प्रस्तुत मूर्च्छना में क्या स्थान पाते हैं, यह क्यों देखा जाए ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि जिस प्रकार न्यास स्वर का ग्राम के मूल स्वर विशेष के साथ तादात्म्य स्थापित किया जाता है और उसी स्वर से मूर्च्छना बनाई जाती है, उसी प्रकार ग्रन्थस्थ ग्रह-अंशों का स्थान भी ग्राम के मूल स्वरों में ही समझना चाहिए। और तदनुसार उस मूर्च्छनाविशेष में उनका स्थान निर्धारित करना उचित है। 'न्यास' को तो ग्राम को मूल स्वरों में से एक मानना ही होगा क्योंकि वैसा माने विना उसे 'जाति' के स्वर-रूप के नियामक का स्थान नहीं दिया जा सकता। यही नियम 'ग्रह-अंश' के लिए भी लागू करना उचित है। इसे एक उदाहरण से समझ लें। शुद्धा जातियों की शुद्धावस्था में उनका नाम-स्वर ही ग्रह, अंश, न्यास होता है। आर्षभी के शुद्ध रूप में ऋषभ ही ग्रह-अंश, न्यास होगा। ऋषभ के न्यासत्व के कारण हमने षड्जग्राम के ऋषभ की मूर्च्छना से प्राप्त स्वरावलि को आर्षभी जाति के स्वर-रूप का आधार मान लिया। अब नियमानुसार ऋषभ को ही 'ग्रह-अंश' भी बनाना है। तन्निमित्त षड्जग्राम के मूल ऋषभ का ही यहां भी ग्रहण करना होगा; तभी एक ही स्वर (नाम स्वर) में न्यासत्व तथा ग्रह-अंशत्व की प्रतिष्ठा हो सकेगी। किन्तु यदि ग्रह-अंश ऋषभ को ग्राम की मूल स्वरावलि में से ग्रहण न कर के मूर्च्छना के ऋषभ को ग्रह-अंश का स्थान देंगे तो एक ही 'नामस्वर' को 'न्यास' 'ग्रह' 'अंश' बनाने का नियम नहीं रह पाएगा। क्योंकि 'न्यास' (ग्राम का मूल ऋषभ) तो मूर्च्छना का षड्ज बन चुका है। इसीलिए 'न्यास' तथा 'ग्रह अंश' को ग्राम के मूल स्वरों में से ही अन्यतम मान कर प्रस्तुत मूर्च्छना में उनका स्थान निर्धारित करना उचित है। इसी नियमानुसार अपन्यास तथा अल्पत्व-बहुत्व का भी प्रस्तुत मूर्च्छना में स्थान-निर्धारण किया गया है। और इसी प्रकार अन्य जातियों में किया जाएगा।

आर्षभी का शुद्ध रूप

षड्जग्राम के ऋषभ को ही ग्रह, अंश, न्यास मानने से जो रूप बनेगा, वही इस जाति का शुद्ध रूप है। (ऋषभ ही इस में षड्ज का स्थान पाता है।)

सारि्सा, सारिग् ऽ सारि्सा, साग्रि्ग् ऽ सारि्सा, सानि् धृसा, सारि्ग्म मग्रि्सा, सारि्ग्मग् ऽ सारि्सा, सारि्ग्म रि्ग्मप ग्मपधप, मग्ऽ सारि्सा, सापमधपऽ मग्ऽ सारि्सा, सारि् साग्ऽ साम ग्पऽ साध् पमग्ऽ सारि्सा, सारिग्मपधपऽ पमपध्पऽ, पध्निसांऽ सांनिध्पऽ ध्पमग्ऽ पमग्रि् ऽ मग्रि्सा। सारि्ग्मपधनि्सां ऽ सांनि्ध्पमग्रिसा सा सांऽ नि्ध्प मग्रि्सा। सानि् रि्सा ग्रि् मग् पम ध्प नि्ध् सांनि् रि्सांऽनि्ध्प मग्रि्सा।

ग्रह-अंश-परिवर्तन से निष्पन्न विकृत रूप

(क) षड्जग्राम का धैवत यानी आर्षभी का पञ्चम ग्रह-अंश

साऽपध्ऽप, पधमध्ऽप, पधनि्धऽप, पधनि्साऽ पधऽप, पमध्ऽ पध्सा। पध्नि्सा ऽ सानि्ध्प, पध्नि सारि्साऽ नि्ध्ऽप, पग्ऽमग्रि्सा ऽ नि्ध्प, पमध्पऽऽ पमधप ऽ मग्रि्सा, साप, ध्पध्मध्प, पधनि्ध्प, पमपध्प, पध्नि्सां ऽ पध्प, ध्पमग्ऽ पमग्रि्ऽ मग्रि्सा।

(ख) षड्जग्राम का निषाद यानी आर्षभी का धैवत ग्रह-अंश

नि् धऽ ध नि्ध्, धसा ऽ धऽ धरि् ऽ नि्ध्, धसारि्मऽ मग्रि्नि्धऽऽध सारि्मपध् ऽ धमग्रि्नि्धऽसा। ध साधसारि्मपध्ऽ ध नि्सारि्मपध्, धनि् सारि्ग्मपध्, धसाऽ नि्रि्ऽ साग्ऽरि्मऽग्पऽमधऽऽधपमध्, धपनि्ध्ऽध्मपनि्ध्ऽ धमपसां नि् ध्ऽ धसांरि्ध्, धप नि्धऽ धम धप नि्धऽ ध्ऽऽमग्रि् नि्धरि्ऽसा।

षाडव-औडव-भेद—आर्षभी में षाडव-औडव भेद बनाने के लिए क्रमशः षड्ज और षड्ज-पंचम का त्याग करने को दत्तिल, मतंग और नान्यदेव ने कहा है, और भरत के वर्तमान उपलब्ध पाठ में 'नि-ग' के त्याग का विधान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिलता है। संभवतः यह पाठ भ्रष्ट होगा और मतंग,दत्तिल तथा नान्यदेव को भरत का शुद्ध पाठ मिला होगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि औडव रूप बनाने के लिए विभिन्न जातियों में जिन-जिन स्वर-जोडियों का त्याग करने को कहा है, वे संवादी जोड़ियाँ ही होती हैं। 'प-नि' कोई संवादी जोड़ी नहीं है। इसलिए दत्तिल, मतंग और नान्यदेव ने जो 'सा-प' कहा है उसी को ग्राह्य मान कर हम इस जाति के षाडव-औडव रूप दे रहे हैं। षड्जग्राम के 'सा-प' ही आर्षभी जाति में 'नि-म' बन जाते हैं। तदनुसार 'नि' वर्ज्य षाडव और 'नि-म' वर्ज्य औडव रूप निम्नोक्त होंगे।

षड्जग्राम के 'सा' यानी आर्षभी के 'नि' लोप से षाडव रूप

सा-ध़सा, ध़सारि़सा, सारि़ग़ऽ रि़ग़रि़ऽसा, प़ध़सारि़ग़ऽ रिग़रि़ऽसा, सारि़ग़ऽ मग़रि़ग़रि़ ऽ सा, सारि़ग़प ऽ मग रि़ग़ऽरि़ऽसा साध़ऽप ध़प़ऽप, पध़पध़ऽप, ध़ऽ मग़रि़ग़ऽ रि़ऽसा। सारि़ग़प ध़सां, धसांरिं़ ग़ रिं़ सां पध़प मगरि़ग़ऽ रि़ऽसा।

षड्जग्राम के षड्ज को यानी आर्षभी जाति के निषाद को, जैसा ऊपर दिखाया है, वर्ज्य करने से वर्तमान बिलासखानी तोड़ी सदृश रूप स्पष्टतया आविर्भूत होगा। 'सदृश' कहने का तात्पर्य यही है कि बिलासखानी में निषाद का प्रयोग होता है और यहाँ निषाद वर्ज्य है। तद्वत् षड्जग्राम के षड्ज-पञ्चम यानी आर्षभी जाति के निषाद-मध्यम के त्याग से भूपाल तोड़ी का पूर्ण रूप हमारे सामने खड़ा होगा। यथा :—

सारि़ग़पध़सां, सांध़प पग़रि़सा, सारि़ग़ ऽ पग़ ऽ रि़ग़रि़सा, सारि़ग़रि़ग़ ऽ रि़ग़पग़प ऽ ग़पध़प ऽ रि़ग़रि़ ऽ सा, सारि़ग़पध़ ऽ, ग़रि़ग़पध़ ऽ पध़प, पध़सां ऽ ध़सांरिं़गं़रिं़ ऽ सां, ध़सांरिं़गं़ ऽ रिं़गं़रिं़ ऽ सां, ध़सांध़ ऽ प ऽ रि़ग़रि़ ऽ सा।

३. धैवती

धैवती में धैवत न्यास, ऋषभ-धैवत ग्रह-अंश और ऋषभ-धैवत-मध्यम अपन्यास हैं। न्यास-स्वर धैवत के अनुसार निम्नलिखित मूर्च्छना बनेगी—

धैवत से आरंभ मूर्च्छना—	ध	नि	सा	रि	ग	म	प	ध
धैवत को षड्ज मानने से	सा	रि़	ग़	म	म़	ध़	नि़	सां
प्राप्त स्वरावलि		२	४	३	२	४	४	३

ग्रह-अंश—धैवत-ऋषभ। षड्जग्राम का धैवत इस जाति की मूर्च्छना में षड्ज बनता है और ष० ग्राम का ऋषभ इसमें शुद्ध मध्यम बनता है। इस प्रकार षड्ज और मध्यम इसमें ग्रह-अंश हैं।

धैवती का शुद्ध रूप

षड्जग्राम के धैवत को ही ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास बनाने से धैवती का शुद्ध रूप बनेगा। यथा—

सा ऽऽ रि़सा, सारि़ग़ ऽऽ रि़ग़रि़सा। सानि़ध़ ऽ सारि़ग़, मग़रिग़ ऽ रि़ ऽ सा। सारि़ग़म ऽ म़म ऽ ग़ ऽ रि़ ऽ सा, सारि़ग़म ध़म़ ऽ म ऽ ग़रि़ ऽ सा, सारिग़म ध़म़ ऽ मग़ ऽ रि़सा, सारि़ग़म ध़नि़सां ऽऽ नि़ध़म़ ऽ म, मग़रि़ ऽ सा।

अथवा

सारि़ग़म़ ऽ रि़ग़ ऽ मग़रि़सा, सारि़ग़म़ ऽ म़ग़रिग़ ऽ मग़रि़सा। सारि़ग़म़ध़ ऽऽ म़ग़रि़ग़म़ ऽऽ ग़म़ध़, म़ग़रि़ग़म़ध़ ऽ, म़ग़ म़रि़ म़ग़ ध़म़ ध़ ऽऽ म़ध़ ऽ म़ग़रि़ग़ ऽ सारि़ग़मम़म ऽऽ मग़रि़सा। सारि़ग़म़ध़सां, सांनि़रिं़ ऽ सां, सांनि़सांरिं़सां ऽ ध़नि़सांरिं़सां, ध़नि़सां ध़नि़रिं़सां सांध़ ऽ नि़ध़, म़ध़ ऽ म़ध़सांध़ ऽ सांनि़रिं़सांध़ ऽ म़ध़ ऽऽ म़ध़सांऽरिं़गं़रिं़ ऽ सां, सांनि़रिं़ ऽ सां, ध़म़ध़ ऽ म म़ग़रि़ग़ ऽऽ सारि़ग़ ऽऽ मग़रि़ ऽ सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा

सारि॒ग॒ ऽऽ सारि॒सा, ध॒नि॒सारि॒ग॒ ऽऽ सारिसा, सारि॒ग॒ ऽऽ मग॒ ऽऽ सारि॒सा, रि॒सा ग॒रि॒ मग॒ ऽऽ सारि॒सा, सारि॒ग॒ सारि॒मग॒ ऽ सारि॒सा, ग॒मध॒ ऽऽ मग॒ रि॒ग॒मध॒ ऽ मग॒, म॒म॒ग॒रि॒ग॒मध॒ ऽऽ मग॒, ग॒रि॒म॒ ग॒ धम॒म॒ऽऽ मग॒, ग॒रि॒सारि॒ ग॒म ऽऽ ग॒ ऽऽ सारि॒सा, सारि॒ग॒मध॒ ऽऽ मध॒ ऽऽ मध॒सां^नि॒ ध॒, सां ^सां नि॒ ^नि॒ ध॒, ध॒नि॒ रिं॒सां ऽऽ नि॒ध॒ ऽऽ ध॒नि॒सांरि॒सांनि॒रिं॒सांऽऽनि॒ध॒ ऽऽ नि॒ध॒सां नि॒रिं॒ सांगं॒ ऽऽ सारिं॒सां ऽऽ नि॒ध॒ ऽऽ ध॒मध॒ ऽऽ मग॒, रि॒ग॒मध॒ ऽऽ मग॒, रि॒ग॒ ऽऽ सारि॒ग॒ ऽऽ मग॒ ऽऽ सारि॒सा ॥

जैसे हम जानते हैं कि वसन्तमुखारो नाम के राग के पूर्वांग में भैरव और उत्तरांग में भैरवी के स्वर प्रयुक्त होते हैं, तद्वत् यहां धैवती जाति के जो दो 'शुद्ध' रूप दिये गये (द्वितीय और तृतीय) उनमें निम्नोक्त रागांग स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक में पूर्वांग में तोड़ी और उत्तरांग में भैरवी और अन्य में पूर्वांग में भैरवी और उत्तरांग में तोड़ी दिखाई देती है। साथ ही, दो मध्यम जहां-जहां 'मम॒' के रूप में एक साथ प्रयुक्त होंगे, वहां उतने समय के लिए ललित का आभास भी हो सकता है। यद्यपि आज के हमारे प्रचार में ऐसे कोई मिश्र रागरूप नहीं है, फिर भी धैवती के स्वरों में ये रूप ऐसे निखर रहे हैं कि गुणिजन इस प्रकार के मिश्रण की मधुरता और प्रियता को देखते हुए उसे प्रचारित करें तो कोई आश्चर्य नहीं। आजकल नवीन रागों के निर्माण अथवा प्रचार के मोह में अनेक संवादहीन राग अस्तित्व में आ रहे हैं, उनकी अपेक्षा तो मिश्रण की उपर्युक्त रीति अधिक समुचित और ग्राह्य है। अस्तु।

धैवती के विकृत रूप

षड्जग्राम का 'ऋषभ' यानी धैवती का 'मध्यम' ग्रह-अंश

सा, सारि॒मऽ, ध॒नि॒रि॒ऽसारिम॒, म ^ग॒ रि॒ऽ म, म ^ध॒ म॒म, रि॒मऽ ^ध॒ म॒म, रि॒मऽरि॒म॒ऽ ^ध॒ म॒ऽम, मम॒म ^ध॒ म॒ ^ध॒ म, मम॒ ^म म॒ध॒ ^नि॒ ध॒ऽ ^ध॒ म॒ ^म॒ म, रि॒ म ऽ रि॒ म॒ ऽ रि॒ ध॒ ऽ ^नि॒ ध॒ ऽ ^ध॒ म॒ ऽ ^म॒ म ऽ, मम॒ म॒ध॒ ऽ नि॒ध॒ ऽ ध॒म॒ ऽ ध॒म, म ^ग॒ रि॒ऽम, ^ग॒ रि॒ सा। सारि॒म ऽ म॒म ऽ म॒ध॒ सां, नि॒ ^गं॒ रिं॒ सां, ध॒नि॒ ^गं॒ रिं॒ सां, सांनि॒रिं॒ ऽ नि॒ध॒, म॒ध॒ ऽ नि॒ध॒ ऽ म॒ ऽ म, ^ग॒ रि॒म ऽ ^ग॒ रि॒म॒ ऽ ^ग॒ रि॒ध॒ ऽ म॒ ऽ म, म॒ ऽ म ऽ मग॒ ऽ ग॒रि॒ ऽ रि॒सा, सा ध॒ ध॒ नि॒ ^ग॒ रि॒सा।

ध्यान रहे कि जहां २ कण स्वरों का प्रयोग दिखाया गया है, वहां-वहां तदनुसार ही प्रयोग किया जाए; तभी वांछित रूप प्राप्त होगा।

षाडव-औडव-भेद—यह उल्लेखनीय है कि इस जाति की मूर्च्छना में मध्यम के दो रूप और पञ्चम का अभाव होने से यह स्वर-रूप वास्तव में षाडव ही है और संभवतः इसीलिए भरत ने इसका षाडव रूप बनाने का विधान नहीं दिया है। केवल ष० ग्राम के 'सा—प' (मूर्च्छना के 'ग॒—नि॒') वर्ज्य करके औडव रूप बनाने को कहा है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि षाडवित-औडवित इन जाति-लक्षणों का स्पष्टीकरण करते हुए भरत ने जातियों में "चतुःस्वरप्रयोगोऽपि देशापेक्षः प्रयुज्यते" यह कहकर चार स्वरों का प्रयोग भी विहित माना है। इस प्रकार प्रस्तुत रूप का औडव नामकरण होते हुए भी यह चार स्वरों की ही विशेष (विशिष्ट) रचना है।

औडव (चतुःस्वर) रूप

सा ऽ ध॒सा, ध॒सारि॒ ऽ सा, म॒ ध॒ सां, ध॒सारि॒ ऽ सा, सारि॒म ऽ मरि॒ ऽ सा, ध॒सा सारि॒ रि॒म ऽ मरि॒ ऽ सा, ध॒सारि॒सा सारि॒मरि॒ म, मम॒म ऽ रि॒ ऽ म ऽ मम॒म, मम॒ध॒म॒ ऽऽ ध॒म ऽऽ, रि॒ ऽ म ऽ म॒ ऽ म ऽ मम॒ म॒ध॒ ऽऽ ध॒म॒ ऽऽ ध॒म ऽऽ, मम॒ म॒ध॒ ऽ ध॒सांध॒ ऽ म॒ध॒सांरिं॒ ऽ रिं॒सां ऽ सांध॒ ऽ ध॒म॒ ऽ म॒म ऽ, रि॒मम॒ ऽ म, रि॒ ऽऽ सा।

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस स्वर-रूप को वृन्दवादन में प्रयुक्त करने से नाट्योपयोगी पार्श्वसंगीत द्वारा भावाभिव्यञ्जना में इसका विशेष उपयोग हो सकेगा। इस प्रकार के प्रयोग के एक नमूने के रूप में इस स्वरावलि का निम्नलिखित लयबद्ध रूप प्रस्तुत है।

सा	—	—	—	ध्	—	—	—	सा	—	—	—	ध्	—	सा	—
रि्	-	सा	—	म्	—	ध्	—	सा	—	—	—	ध्	—	सा	—
रि्	—	सा	—	सा	रि्	—	—	म	—	—	—	म	—	रि्	—
—	—	सा	—	ध्	—	सा	—	सा	—	रि्	—	रि्	—	म	—
—	—	—	—	म	—	रि्	—	—	—	सा	—	ध्	सा	रि्	सा
सा	रि्	म	रि्	म	—	—	—	म	म्	म	—	रि्	—	म	—
म्	—	म	—	म	म्	ध्	म्	—	ध्	म	—	रि्	—	म	—
म्	—	म	—	सा	—	रि्	—	म	—	रि्	—	रि्	—	म	—
म्	—	म	—	म	म्	म्	ध्	—	ध्	म्	—	ध्	म	—	म्
म	—	—	—	रि्	—	म	—	म्	—	म	—	म्	—	ध्	—
सां	—	—	—	सां	ध्	—	—	म्	म	—	—	म्	ध्	सां	ध्
ध्	सां	रिं	सां	रिं	सां	—	—	सां	ध्	—	—	ध्	—	म्	—
म्	म	—	—	रि्	—	म	—	म्	—	म	—	म	—	रि्	—
—	—	सा	—	ध्	सा	रि्	सा	रि्	—	म	—	रि्	—	सा	—

४. नैषादी

इस का न्यास स्वर ष० ग्राम का निषाद है। तदनुसार निम्नलिखित मूर्च्छनारूप बनेगा :—

नि़ – सा – रि – ग – म – प – ध – नि

सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सां

– ४ – ३ – २ – ४ – ४ – ३ – २ –

अर्थात् सरल आरोहावरोह रूप यह होगा :—सारिगमपधनिसां सांनिधपमगरिसा।

ग्रह-अंश—षड्जग्राम के 'निरिग' ये तीन स्वर इस के ग्रह अंश हैं। यही स्वर प्रस्तुत जाति की मूर्च्छना में क्रमशः 'सागम' का स्थान पाते हैं। अतः क्रमशः 'सागम' को ग्रह-अंश बनाना होगा। यही तीन स्वर अपन्यास भी हैं।

अल्पत्व—षड्जग्राम के 'सा–प' अर्थात् नैषादी के 'रि-ध' का अल्पत्व है।

षाडव-औडव रूप—षड्जग्राम का 'सा' अर्थात् नैषादी का 'रि' वर्ज्य कर के षाडव रूप बनेगा और षड्जग्राम का 'सा-प' अर्थात नैषादी का 'रिध' वर्ज्य कर के औडव रूप बनेगा।

नैषादी का शुद्ध रूप

षड्जग्राम के निषाद को ही ग्रह अंश न्यास मानने से नैषादी का शुद्ध रूप बनेगा। (निषाद ही इस जाति में षड्ज का स्थान पाता है)

सा ऽ रिगरिसा, रिगमग ऽ रिगरिसा, सारिगम प ऽ मग ऽ रिगरिसा, सागमप ऽ धपमग रिसा, गमप गमधप मगरिसा, सा ऽ गमपधनिसां, सांनिधप मगरिसा, मगरिगमपनिसां, सां ऽ निधसां, धमपनिसां, धगम पनिसां, गमप ऽ निधसां, सां ऽ निधपमगरिसा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा

सा ऽ सानिसाग ऽऽ रिसा, सारिसानिसा ग ऽऽ रिसा, सानिरिसा ग ऽऽ रिसा, सानिसागमग ऽ रिसा, सानिसा गमग गमप ऽऽ मग, सागमग ऽऽ मग, साग गम मपग ऽऽ रिसा, सागमप ऽ मं, गमपनि ऽऽ धप ऽ म, पगमपनि ऽ धपम, सागमपनिसां ऽ पधपम ऽ, रिंसां ऽ निधपम ऽ, गमपम ऽ गमधपम ऽ, गमनिधप ऽ म, सागमग ऽ प ऽऽ मग, पम ऽ पग ऽ मग ऽ रिसा ।

अथवा

हेमकल्याण सदृश रूप

साप ऽ सारिसा प ऽ ध ऽ प, सा ऽऽ निसा, साग ऽ मरि ऽ सा ऽ प ऽ धप सा, सा ऽऽ गम गप ऽ पग ऽऽ मरि ऽऽ सा प ध ऽ पसा, सागमप ऽ धप ऽ सां ऽ प ऽ धप, ग ऽ मरि सा प ऽ धप ऽ सा ऽ निसा ।

अथवा

सावनीकल्याण सदृश रूप—

सा ऽ रिग सा रिग ऽ सा, ग सा रिग ऽ सा, साग सा रिग ऽ सा, ममग रि ग ऽ सा, गगरिसारि ग ऽ सा, सासनिपनि ऽ रिरिसानिसा ऽ ग सा रि ग ऽ सा, नि प ध नि ऽऽ प, पनिरिग ऽ सा रि ग ऽऽ सा, पधपप ऽ गमरिग ऽ सा सारिनिसा ऽ पधपप ऽ सांरिंनिसां ऽ पधपप ऽ गमरिग ऽ सा रि ग ऽ सा, पनि प नि सा साग सा रिग ऽऽ सा, सागमपनिसां ऽ नि प ध नि ऽऽ प, धपप ऽ गम रि ग ऽ सा रि ग ऽ सा ।

ग्रह-अंश-परिवर्तन से प्राप्त विकृत रूप

षड्जग्राम का ऋषभ यानी नैषादी का गान्धार ग्रह-अंश

सा, गमपनिऽसा, गमपनिसा गऽऽरिनिसा, गऽनिसाग, गरिसानिसाग, गसा गनि गऽऽरिनिसा, ग प मगऽ रिनिसा, गमपगमग, गमगसागमप ऽऽ गमग, पुनिसागमपऽ गमग, गमपनि ऽऽ धपप ऽ गमग, गमप सां ऽ नि धपप ऽ गमग, गम गप गनि ऽ धपप ऽ गमग, गमपनिसांगं ऽऽ रिंनिसां ऽ धपप ऽ गमग ऽ मग ऽ रिनिसा ।

षड्जग्राम का गान्धार यानी नैषादी का मध्यम ग्रह अंश

सा, मपनि ऽ सा धनि ऽ सा ऽऽ धप ऽ म, मप म पनि ऽऽ धनि ऽऽ सा ऽऽ धप ऽ म, म प सानि रिसा ऽ धप ऽ म, मध प धप ऽ म, मप म पसा ऽ सारि निसा ऽ धप ऽ म, मप म पनि ऽ सा धनि ऽ सा, मपनिसा धनि ऽ सा, साम, सानिरिसा म, मप सानि रिसा म, म ऽऽ म रि ऽ सा ऽ धप ऽ म, मपनिसा म, मगप ऽ म, सामगप ऽ म, मध प धप-ऽ म, ममम धधप ऽ म, मपधनिसां ऽ धप ऽ म, मप पनि निसां ऽ धप ऽ म, मग पम धप ऽ म, सारिनिसा म ऽ मरि सा ऽऽ धप ऽ म, पनि ऽ सा ऽ धनि ऽ सा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन स्वरावलियों में 'मलुहा केदार' का आविर्भाव दिखाई देता है।

मध्यम का 'अपन्यासत्व' स्पष्ट करने से प्राप्त रूप

सा ऽऽ रिगम ऽऽ मग रि ग ऽ रिसा, सा ऽ रिगमप ऽ म, ममगरिगमप ऽ म, ममगसागमप ऽ म, गमग सागमप ऽऽ म, धप ऽ धग ऽऽ म, मपधनिसां ऽऽ धप ऽ म, मग रि ग ऽ रिसा।

ऐसा 'गौड़' का (गौड़मल्हार का कुछ आभास देने वाले गौड़ का) इस स्वरावली में दर्शन होगा।

अथवा

ग सा ऽऽ गमप ऽ ध ग ऽऽ म, धप ऽ धग ऽ म, सागमध प धप ऽ धग ऽ म, गमपनिसां ऽऽ धप ऽ धग ऽ म, साग सा गमगमप ऽ धग ऽ म, रि ग ऽऽ रिसा।

कोमल निषाद-रहित लच्छासाख की इन स्वरावलियों में झाँकी दिखाई देगी।

षाडव रूप

षड्जग्राम का षड्ज अर्थात् नैषादी का ऋषभ वर्ज्य करने से

सा ऽऽ सानि़सा, सानि़धनि़ ऽ सा, सानि़धप़ ऽ धनि़ ऽ सा, सानि़धनि़साग ऽ म, मग ऽऽ सा, नि़ध़ सानि़ गसा मग ऽ म, मग ऽऽ सा, नि़ध़ सानि़ गसा मग पम धप धम पग ऽ म, पमगसा ऽऽ नि़धनि़साग ऽऽ म, पमधपनि ऽऽ सांनिधप-ऽऽ म, सांनिधप ऽऽ मग, गमपनिसांनिधप ऽ मग, धनिसां ऽऽ निधपमग सागमग ऽ मग ऽ सा।

षड्जग्राम का षड्ज-पञ्चम अर्थात् नैषादी का ऋषभ-धैवत वर्ज्य करने से औडव रूप

सा, सानि़सा गऽऽसा, सानि़पनि़सा ग ऽऽ सा, गसा मग ऽऽ सा, साग मग ऽऽ सा, पम पग ऽऽ सा, गमग ऽऽ सा, सागमपनिप ऽ पम ऽ पग ऽ सा, गसा मग पम निप सांनि पम ऽ पग ऽऽ सा, सानि़सा ग ऽऽ निपनिसां ऽ सांनिसां-गंऽमं ऽ मंगं ऽ सां, सांनि ऽऽ प मग ऽऽ सा, पनिसां गमपनिसां गंमंगं ऽऽ गंमंगं ऽऽ सां निसांनि ऽऽ प गमग ऽऽ सा।

षड्जग्राम की चार शुद्धा जातियों के बाद अब मध्यमग्राम की तीन शुद्धा जातियों का विवरण क्रमशः दिया जा रहा है।

मध्यमग्राम की शुद्धा जातियाँ

५. गान्धारी

न्यास—गान्धार—

मध्यमग्राम के गान्धार की मूर्च्छना से निम्नलिखित स्वर-रूप प्राप्त होता है जो आधुनिक 'कल्याण-सदृश' है।

ग – म – प – ध – नि – सा – रि – ग
– ४ – ३ – ४ – २ – ४ – ३ – २ –
सा – रि – ग – म् – प – ध – नि – सां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग्रह अंश—मध्यमग्राम के 'सा – ग – म – प – नि' यही स्वर प्रस्तुत मूर्च्छना में क्रमशः 'ध – सा – रि – ग – प' का स्थान पाते हैं। अतः मूर्च्छना के 'ध' 'सा' 'रि' 'ग' 'प' को क्रमशः ग्रह-अंशत्व देना होगा।

अल्पत्व—मध्यमग्राम के 'रि – ध' यानी गान्धारी के 'नि – म्' का अल्पत्व है।

षाडव-औडव—'रि' यानी 'नि' लोप से षाडव और 'रि – ध' यानी 'नि – म्' लोप से औडव रूप बनेंगे।

गान्धारी का शुद्ध रूप

मध्यमग्राम के गान्धार को ग्रह, अंश, न्यास मानने से गान्धारी का शुद्ध रूप प्राप्त होगा। गान्धार ही यहां षड्ज का स्थान पाता है।

सा ऽ निधसा, मधनिधसा, धनिसा निरि ऽ सा, सानिरि ऽ सा, रिगरि ऽ सा, गरिग ऽ मगरिऽसा, सारिगमपऽमगरि ऽ सा, सारिगम् ऽ प धपमगरि ऽ सा, सारिसाग साम्साप साध ऽ पमगरि ऽ सा, सारिगम्पधनिध ऽ प ऽ मगरि ऽ सा, सारिगम् पधनिधनिसां, सांनिधपऽमगरिऽसा।

अथवा

मध्यमग्राम के 'रि-ध' यानी 'नि-म्' को अल्पत्व देने से भूपकल्याण का-सा रूप खड़ा होगा।

यथा :—

सा ऽ निधसा, पधसा, सापु निधु सा, गरि, निधु सा ऽ नि गरि, गरि ऽ सा, सा गरि ऽ ग, सानि गरि ऽ ग, गप ऽ मग ऽ, सा गरि पग प ऽऽ मग ऽ परि ऽ सा; सा गरि पग धप सांध ऽऽ प ऽऽ मग, गप सांध ऽ निधप ऽ मग, सारिगपधसांऽऽनिधपमग, सारिग सारिगपधसां ऽऽ निधपमग, गरि ऽ गप ऽ मगऽ परि ऽ रिग परि ऽ सा।

अथवा

मध्यमग्राम के 'ध' यानी 'म्' का अल्पत्व करने से शंकरा सदृश रूप का निर्माण होगा। सा, गरि गप रिग ऽ रिसा, निधसानि गरि, गप रिग ऽ रिसा, सा ऽ गरि पग ऽ प, गपनिधसांनि ऽ धमप ऽ ग, गपनिधसां, सांनि ऽ धमप ऽ गप रिगऽरिसा।

ग्रह-अंश-परिवर्तन से ग्राम विकृत रूप

मध्यमग्राम का षड्ज यानी गान्धारी का धैवत ग्रह-अंश

धनिसागऽ मगरिऽसा, धनिसा धनिसागऽ मगरिऽसा, धनिध धसानि ऽ धनिग ऽ मगरिऽसा। धनिसागमऽ मगरिऽसा। धनिसा गमपऽऽमगरिऽसा, धनिसा गमधऽऽपऽ धपमगऽ मगरिऽसा, धनिसगम् धनिधप, धनिसागम धनिसांऽऽनिधपमगऽमगरिऽसा। धनिधसांऽ धनिधगऽ धनिधम् धनिधधऽ धपमगऽऽ मगरिऽसा। धसानिधऽ धरिसानिऽ धगरिसाऽ धमगरिऽ धधपमऽ धनिधपऽ धसांनिधऽ धरिंसानिऽ धगंरिंसांऽ सांनिधपऽ धपमगऽ मगरिसा।

मध्यमग्राम का मध्यम यानी गान्धारी का ऋषभ ग्रह-अंश

गरिऽ सा गरि, रिगरिऽ रि पग प रि, रिगरि गप सांधऽप रि, रिग गप प सांधऽऽ पऽ मग परि, रि पग प सांध सांनि गंरिंऽऽ रिंगंरिंऽऽ निधपऽमग परि, रिगपरिऽऽसा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार शुद्धकल्याण-सदृश रूप खड़ा होगा। शुद्धकल्याण में 'नि म' संपूर्ण वर्ज्य करके 'सारिगपधसां' इसी स्वरावली में ऋषभ का प्राबल्य और 'प रि' संगति का अभ्यास रखा जाता है। किन्तु यहाँ 'नि म' का भी अल्प प्रयोग दिखाया गया है। इसीलिए 'शुद्धकल्याण-सदृश' कहा है।

मध्यमग्राम का पञ्चम यानी गान्धारी का गान्धार ग्रह अंश

गऽ ग निऽऽसाग, गमधगमऽऽग, गनिसामऽऽगऽ गरिऽसा। गऽऽ गम ग मऽ गमगऽनिसागमग, गमगऽ सानिधमगऽ गम धनिऽ निसामगऽऽ गमधगमऽऽग गमनिऽऽधममऽ ग, गमनि मधसांनिऽ धममऽग, पऽऽम धममऽग, सांऽऽनि रिंनिनिऽ धमम ऽग, पमधऽ धममऽ गऽ गमधगमऽऽग रिऽऽसा।

इस प्रकार पूरिया-कल्याण* जैसा रूप इस स्वरावली से खड़ा होता है।

मध्यमग्राम का निषाद यानी गान्धारी का पञ्चम ग्रह-अंश

प ऽ पधगप ऽ पधसानिधप ऽ पधगप, पधधनिधप ऽऽ पधगप, पधसारिगरि सानिधप ऽ पधगप, पम धप ऽ पधसारिग ऽ, पमगरिसानिधप ऽ प पधगप ऽ, पधगप ऽ पमधप ऽ मप ऽ प, गगगरिसानिधप पधगप, पध धसा सारि रिग ऽ गरिसानिधप पधगप।

पहाड़ों में गाई जाने वाली 'पहाड़ी' सदृश यह रूप है।

षाडव-रूप

मध्यमग्राम का ऋषभ यानी गान्धारी का निषाद वर्ज्य करने से प्राप्त षाडव रूप

गान्धारी के शुद्ध रूपों में 'निषाद मध्यम' का अल्पत्व रखते हुए कुछ रूप प्रस्तुत किए गए हैं। उसी प्रकार निषाद का संपूर्ण त्याग करके षाडव रूप भी बनाया जा सकता है।

गान्धारी के औडव रूप के लिए विशेषोल्लेख

शुद्धा जातियों के एकाधिक ग्रह-अंशों के अनुसार हम ने ऊपर उन-उन जातियों के विकृत भेदों का निर्माण किया। अब इन एकाधिक ग्रह अंशों पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार कर लें।

हम जानते हैं कि भरत ने अष्टादश जातियों का निर्माण मुख्यत: नाट्य में रस-भावानुकूल अभिव्यञ्जना के लिए किया है। यदि इस दृष्टिकोण से विचार करें तो यह कहना होगा कि भरत को नाट्य की विभिन्न परिस्थियों में त्वरित गति से परिवर्तित होनेवाले भावों की अभिव्यक्ति के लिए जातिगत भिन्न-भिन्न ग्रह-अंशों से उत्थित स्वरावलियों का उपयोग अभिप्रेत रहा होगा। इस दृष्टिकोण के उदाहरणार्थ गान्धारी के पांच ग्रह-अंश पर तथा उसके औडव रूप पर विचार करें।

गान्धारी में मध्यमग्राम के 'स–ग–म–प–नि' ये पांच स्वर ग्रह-अंश बताए हैं। न्यास स्वर गान्धार से उत्थित मूर्च्छना में यही पांच स्वर क्रम-भेद से 'स–रि–ग–प–ध' का स्थान पाते हैं। ऊपर हम गान्धार की मूर्च्छना

---

* कुछ लोग कल्याण को ही पूरियाकल्याण कहते हैं, किन्तु वास्तव में ये दोनों राग भिन्न हैं। पूर्वकल्याण में ऋषभ कोमल और शुद्ध धैवत के साथ तीव्रतर मध्यम के योग से कल्याण का पूर्वरूप दिखाया जाता है, किन्तु 'पूरियाकल्याण' में 'पूरिया' के स्वरों में शुद्ध ऋषभ के प्रयोग से 'पूरिया' में 'कल्याण' का दर्शन कराया जाता है। उपरिलिखित स्वरावली में पंचम का भी अल्प प्रयोग दिखाया गया है, अत: इसे 'पूरिया-कल्याण' सदृश कहा गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से प्राप्त 'कल्याण-सदृश' स्वरावली में इन पाँचों ग्रह-अंशों के अनुसार गान्धारी के अन्तर्गत स्वतन्त्र विकृत भेद बना कर दिखा चुके हैं। अब यदि ऊपर दिये हुए पृथक्-पृथक् विकृत भेदों के स्थान पर गान्धारी की मूल स्वरावली (जो कल्याण-सदृश है) को आधार मान कर 'सरिगपध' इन पाँच ग्रह-अंश स्वरों से क्रमशः भिन्न-भिन्न मूर्च्छनाएं बनाई जाएं तो उनके निम्नोक्त रूप सामने आएंगे—

'सा'—ग्रह-अंश— सा – रि – ग – प – ध – सां – रिं – गं – पं – धं –
४ - ३ – ६ – ३ – ६ – ४ – ३ – ६ – ३ -

'रि'— ,, ,, — सा – रि – म – प – नि् – सा
३ – ६ – ३ – ६ – ४

'ग'— ,, ,, — सा – ग् – म – ध् – नि् – सां
६ – ३ – ६ – ४ – ३

'प'— ,, ,, — सा – रि – म – प – ध – सां
३ – ६ – ४ - ३ – ६

'ध'— ,, ,, — सा – ग् – म – प – नि् – सां
६ – ४ – ३ – ६ – ३

(स्मरण रहे कि गान्धारी में मध्यमग्राम के ऋषभ–धैवत यानी 'नि–म' का अल्पत्व है और उन्हीं के त्याग से औडव रूप का निर्माण करने को कहा गया है। अतः औडव रूप 'सा–रि–ग–प–ध' बनता है और यही पांच स्वर इसमें ग्रह अंश भी हैं।)

गान्धारी के औडव रूप की ऊपर दी हुई मूर्च्छनाओं का नाट्य में भावानुरूप प्रयोग इस प्रकार हो सकता है कि मूल गान्धारी जाति की कल्याण-सदृश स्वरावलि का गायन या कुतपवादन हो रहा हो, उसके बीच में कभी भूपाली का आविर्भाव करके पुनः कल्याण पर लौटा जाय, कभी सारंग दिखाया जाए, कभी मालकौंस, दुर्गा या भीम का आविर्भाव किया जाए और पुनः मूल स्वरावलि पर लौट आया जाए। इसी भाँति अन्य जातियों में भी बुधजन प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार नाट्य-प्रसंग में क्षण-क्षण बदलते हुए भावों की अभिव्यक्ति और तदनुकूल संगीत-योजना करने के लिए भरत ने एक ही जाति में अनेकों ग्रह-अंशों को स्थान दिया हो ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

उपर्युक्त दृष्टि से विचार करते हुए यह कल्पना हो आना स्वाभाविक है कि संभवतः भरत को सात शुद्धा जातियों में एकाधिक ग्रह अंश कहने के पीछे कुछ ऐसा ही विनियोग अभिप्रेत रहा हो। यह स्मरणीय है कि उन्होंने शुद्धा जातियों के विकृत भेदों की संख्या का कहीं निर्देश नहीं किया है; इससे भी यह कल्पना हो आती है कि शायद ग्रह अंश-अपन्यास के परिवर्त्तन से उन्हें एक ही मूल स्वरावलि के स्थायी पट पर भिन्न-भिन्न भावों के अनुरूप अस्थायीरूप से संचरण करनेवाले भिन्न-भिन्न मूर्च्छना-प्राप्त रूपों का प्रयोग अभीष्ट रहा हो और इसीलिए उन्होंने विकृत भेदों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार न की हो और उनकी संख्या न गिनाई हो।

इस दृष्टि से विचार करने पर भी 'न्यास' का नियामकत्व अक्षुण बना रहता है क्योंकि जाति की स्थायी या आधारभूत स्वरावलि का निर्माण यहाँ भी 'न्यास' से ही होता है।

६. मध्यमा

इसका न्यास स्वर मध्यमग्राम का मध्यम है। तदनुसार निम्नलिखित मूर्च्छना बनेगी :—

म. ग्राम के 'म' की मूर्च्छना म – प – ध – नि – सा – रि – ग – म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'म' को 'सा' मानने से प्राप्त स्वरावली   सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सां
– ३ – ४ – ३ – ४ – ३ – २ – ४ –

यहां यह पुनः उल्लेखनीय है कि षड्जग्राम का षड्ज तथा मध्यमग्राम का मध्यम दोनों का वीणा पर एक ही स्थान है। किन्तु मध्यमग्राम में धैवत चतुःश्रुति होने के कारण उसके मध्यम की मूर्च्छना में खमाज सदृश स्वरावलि प्राप्त होती है, जब कि षड्जग्राम की षाड्जी में वीणा के उसी स्थान से काफ़ी सदृश स्वरावलि उपलब्ध होती है। 'खमाज सदृश' कहने का यहां तात्पर्य यही है कि इसमें ऋषभ त्रिश्रुति है जब कि वीणा के बाज के तार को परम्परानुसार मध्यम मानकर वादन करने से तथा तानपुरे के पहले तार को पंचम में मिलाकर गायन करने से खमाज में ऋषभ चतुःश्रुति ही प्रयुक्त होता है। ध्यान रहे कि भरत ने उभयग्राम की सात शुद्धा जातियों में से मध्यमग्राम की मध्यमा और पञ्चमी इन दो जातियों में स्वर-साधारण का प्रयोग विहित माना है। हम जानते हैं कि भरत ने उभयग्राम की मूर्च्छनाओं के भेद बताते समय पूर्णा, षाडवा, औडवा और साधारणीकृता ऐसे चार भेद कहे हैं। 'साधारणीकृता' में अन्तर काकली के प्रयोग का विधान है। किन्तु, यहां षड्जग्राम की शुद्धा जातियों में स्वर-साधारण न कह कर केवल मध्यमग्राम की ही दो जातियों में उसका विधान दिया है। तदनुसार हम मध्यमग्राम की इन दो जातियों के सीमित क्षेत्र में ही स्वर-साधारण का उपयोग कर रहे हैं। 'मध्यमा' का 'स्वर-साधारण' सहित स्वर रूप निम्नलिखित होगा :—

म – प – ध – नि – का.नि. – सा – रि – ग – अं.गां. – म.
सा – रि – ग – म – म् . – प – ध – नि – नि – सां
– ३ – ४ – २ – २ – २ – ३ – २ – २ – २ –

इस रूप में कल्याण अंग, खमाज अंग और बिलावल अंग के सभी आधुनिक रागों का पूर्ण समावेश हो सकता है। इस जाति के भिन्न २ ग्रह-अंशों से बननेवाले रूपों का विस्तार न देकर यहां इन तीनों अंगों के कुछ रागों के नामों का उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा। यथा :—

बिलावल अंग—(दो मध्यम, दो निषाद वाले, अथवा एक मध्यम, दो निषादवाले राग) यमनी बिलावल, देवगिरि बिलावल, सरपरदा बिलावल, अल्हैया बिलावल, लच्छासाख, शुक्ल बिलावल ककुभ बिलावल, नट बिलावल इत्यादि।

कल्याण अंग—(दो मध्यम दो निषादवाले अथवा एक मध्यम दो निषाद वाले अथवा दो मध्यम एक निषाद वाले राग) केदार, बिहाग, हमीर, कामोद, छायानट, बिहागड़ा, मारूबिहाग, गौड़सारंग, श्यामकल्याण, यमनकल्याण, पटबिहाग, नटकामोद, नंदकल्याण नटकेदार, मलुहाकेदार इत्यादि।

खमाज अंग –(एक मध्यम दो निषाद वाले राग) खमाज, देश, तिलककामोद, झिंझोटी, रागेश्री, खम्भावती तिलंग, गौडमल्हार इत्यादि।

इनके अतिरिक्त, इस मूर्च्छना में दो मध्यम, दो निषाद प्राप्त होने से सारंग अंग के वृन्दावनी सारंग, मधमाद (मध्यमादि) सारंग, सामंत-सारंग, शुद्धसारंग इत्यादि रागों का भी इसीमें समावेश हो सकता है।

मध्यमा में मध्यमग्राम के 'स-रि-म-प-ध' को ग्रह-अंश कहा है। यही स्वर मध्यम की मूर्च्छना में क्रमशः 'प ध सा रि ग' बनते हैं। इन भिन्न-भिन्न ग्रह-अंशों के अनुसार विभिन्न रूपों का निर्माण बुध जन स्वयं कर सकते हैं।

७. पञ्चमी

मध्यमा के सदृश पञ्चमी में भी अन्तर-काकली का प्रयोग विहित माना है। तदनुसार इसकी स्वरावली निम्नोक्त होगी :—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

म० ग्राम के पंचम की स्वर-साधारण युक्त मूर्च्छना—	प – ध – नि – का० नि० – सा – रि – ग – अं० ग० – म – प
पंचम को षड्ज मानने से प्राप्त स्वरावली —	सा – रि – ग्‌ – ग – म – प – ध्‌ – ध – नि्‌ – सां
	४ – २ – २ – २ – ३ – २ – २ – २ – ३ –

इस प्रकार दो गान्धार, दो धैवत तथा कोमल निषाद युक्त स्वरावलि प्राप्त होती है। इस स्वरावलि में आरोहावरोह, ग्रह अंश, अपन्यासादि के परिवर्तन से निम्नलिखित आधुनिक रागों का समावेश हो सकेगा :—

कान्हड़ा-अंग—(शुद्ध धैवत तथा कोमल गान्धार वाले अथवा कोमल धैवत, कोमल गान्धार वाले राग) सूहा, सुघराई, नायकी (शुद्ध 'ध' युक्त), काफ़ी कान्हड़ा, गारा कान्हड़ा, कौशिक कान्हड़ा, मुद्रकी कान्हड़ा, दरबारी, अडाणा खट (कान्हड़ा अंग) इत्यादि।

आसावरी अंग—दो गान्धार, दो धैवत वाले अथवा एक गान्धार, दो धैवत वाले अथवा एक गान्धार, एक धैवत वाले राग, देवगान्धार, देसी, आसावरी इत्यादि।

पञ्चमी में मध्यमग्राम के ऋषभ-पंचम को ग्रह-अंश कहा है जो पंचम की मूर्च्छना में क्रमशः 'प-सा' बन जाते हैं। मध्यमा की भाँति यहाँ भी विभिन्न रूप बनाकर देना हमने आवश्यक नहीं समझा है।

उपसंहार

शुद्धा जातियों के ग्रन्थस्थ लक्षणों के अनुसार उनके स्वर-रूप किस प्रकार समझे जा सकते हैं, उन रूपों में आज के प्रचलित रागों के साथ कैसा अक्षुण्ण संबंध दिखाई देता है, उसका ऊपर दर्शन हमें हुआ। इस प्रकरण के उपसंहार में हम पाठकों, विचारकों, अनुसन्धानकर्ताओं तथा विद्यार्थियों के सौकर्य के लिए, ऊपर प्रस्तुत सिद्धान्त-पक्ष को संक्षेप में दोहरा देना उचित समझते हैं। जिस प्रकार भरत ने विभिन्न स्वर-समूहों का शास्त्रीय वर्गीकरण, सूक्ष्म श्रुत्यन्तरों का प्रत्यक्षीकरण, उनका प्रमाण-निर्धारण, स्वरों के अन्तर्गत 'सा-प' और 'सा-म' संवाद के आधार पर श्रुतियों को परस्पर संवाद-स्थापना— इन सब प्रयोजनों की सिद्धि के लिए प्राकृतिक स्वरावलि के आधार पर द्वैग्रामिकी शास्त्रीय व्यवस्था की रचना की है,❀ उसी प्रकार उस काल में प्रचलित गीत-प्रकारों के शास्त्रीय वर्गीकरण के लिए तथा किसी स्वर-समूह को विशिष्ट आकार प्रदान करने के निमित्त जो-जो तत्त्व आवश्यक होते हैं, उनके शास्त्रीय निरूपण के हेतु भरत ने जाति' का प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार हमने अधुना प्रचलित शुद्ध (प्राकृतिक) स्वरावलि का भरतोक्त ग्राम-व्यवस्था के साथ अटूट और अविच्छेद्य संबंध अकाट्य रूप से स्थापित किया है, उसी प्रकार हम इस सत्य की भी स्थापना करना चाहते हैं कि आज की हमारी राग-परंपरा के मूल तत्त्व 'जाति' में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। रागों के नाम-रूप में परिवर्त्तन-परिवर्द्धन अवश्य हुआ है, फिर भी हमें नहीं भूलना चाहिये कि 'राग-पद्धति' के मौलिक तत्त्व 'जाति' की परम्परा से ही संबद्ध हैं। पाठकों को ऊपर के स्वर-विस्तारों से इस सत्य का दर्शन हुआ होगा, ऐसा विश्वास है। साथ ही उन्हें यह भी स्पष्ट हुआ होगा कि 'जाति' को रागों की जननी क्यों कहा गया है। इस सत्य-दर्शन से इस भ्रान्ति का समूल निरसन हो जाएगा कि प्राचीन शास्त्र से हमारे क्रिया-पक्ष का विच्छेद हो चुका है, व्यवस्था के दुरूह बन जाने के कारण ग्रन्थों में 'स्वर-श्रुति' के विषय में भयंकर अव्यवस्था छा गई थी, उसी प्रकार 'जाति' को भी मानो 'पुरातत्त्व संग्रहालय' के उपयोगी वस्तु मात्र समझ कर ही उसका संपूर्ण गतानुगतिक भाव से यत्किञ्चित् निरूपण किया जाता रहा। उसी भ्रान्त परम्परानुसार आधुनिक युग तक 'जाति' को अधुना प्रचलित राग-परम्परा से विविक्त (isolated) विषय समझा जाता रहा है। 'जाति' के साथ आज की राग-परम्परा के अटूट सम्बन्ध को प्रत्यक्षगोचर तथा बुद्धिग्राह्य बनाने का यह प्रथम प्रयास है। आशा और विश्वास है कि इससे भरत-सिद्धान्त की पूर्ण शास्त्रीयता, अविच्छिन्नता और सर्वकाल के लिए उपयोगिता निर्विवाद रूप से सिद्ध हो सकेगी।

❀ "नाद-रूप" (श्री कला संगीत भारती, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रकाशित अनुसन्धान पत्रिका) के प्रथम अंक में प्रकाशित लेखक का "भरत का स्वर-सिद्धान्त" शीर्षक लेख द्रष्टव्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसर्गजा विकृता जातियाँ—भरतोक्त व्यवस्था

शुद्धा जातियों के स्वररूप तो हमने न्यास स्वर को नियामक स्वीकार कर के निष्पन्न कर लिये और यह सिद्धान्त भी समझ लिया कि शुद्धा जातियों के विकृत भेदों के स्वर-रूप भी उनके अपरिवर्त्तनीय न्यास-स्वर के अनुसार ही बनेंगे। इसी सिद्धान्त के अनुसार हमने प्रत्येक शुद्धा जाति के कुछ-एक विकृत भेदों को ग्रह अंश परिवर्त्तन से तथा षाड़व-औड़व भेद-निर्माण द्वारा निष्पन्न कर लिया। किन्तु शुद्धा जातियों और उनके विकृत भेदों से भिन्न एकादश संसर्गजा विकृता जातियों के समूहगत स्वरूप कैसे निर्धारित किये जाएँ? इस प्रश्न के निम्नलिखित मुख्य पहलू हैं:—

(१) प्रत्येक संसर्गजा जाति उभयग्राम में से किसी एक के साथ संबद्ध है तथा प्रायः प्रत्येक में उभयग्राम की जातियों का संसर्ग है। एक अपवाद को छोड़ कर ऐसी कोई भी संसर्गजा जाति नहीं है जिस में केवल एक ग्राम की जातियों का संसर्ग हो। उभयग्राम की जातियों का संसर्ग होने पर भी संसर्गजा जातियों का एक ग्राम-विशेष के साथ संबद्ध होना किस प्रकार सार्थक हो सकता है?

(२) एकाधिक जातियों का संसर्ग विहित होने पर भी प्रायः प्रत्येक संसर्गजा जाति में एक-एक ही न्यास-स्वर कहा गया है। यह न्यास-स्वर अनेक संसर्गप्राप्त जातियों का नियामक किस प्रकार हो सकता है?

(३) एक अपवाद को छोड़कर प्रत्येक संसर्गजा जाति में एकाधिक ग्रह अंश कहे गये हैं। एकाधिक जातियों का संसर्ग निष्पन्न करने में इन ग्रह-अंशों का क्या विनियोग होगा?

(४) इन संसर्गजा जातियों का प्रत्यक्ष गायन-वादन में, विशेषतः नाट्यान्तर्गत संगीत में कैसा उपयोग भरत को अभिप्रेत रहा होगा? नाट्य की भावाभिव्यक्ति में, रस-सिद्धि में इनका कैसा विनियोग होता होगा?

स्पष्ट है कि इन सब पहलुओं वाले इस विशाल प्रश्न का हल उतना सरल नहीं है जितना कि संसर्गजा जातियों के लक्षणों को बाह्य दृष्टि से देखने पर प्रतीत होता है। इसे सुलझाने के लिये, विभिन्न दृष्टिकोण से हमने जो प्रयत्न किये हैं वे सभी इस प्रकरण में प्रस्तुत हैं।

आरम्भ में ही यह उल्लेखनीय है कि संसर्गजा जातियों के प्राचीन ग्रन्थोक्त लक्षणों का यदि केवल गतानुगतिक भाव से उल्लेख मात्र करना प्रयोजन होता तब तो बड़ी ही सरलता से और बहुत संक्षेप में इस प्रकरण को पूर्ण किया जा सकता था। कुछ मध्ययुगीन ग्रन्थकारों ने (उदाहरणार्थ रघुनाथ भूप, तुलजाधिप आदि ने) यही मार्ग अपनाया था। किन्तु हमने इन संसर्गजा विकृता जातियों के स्वररूप निष्पन्न करने और उनके प्रत्यक्ष प्रयोग को निरूपित करने का यत्न किया है और इसीलिये यह प्रकरण काफ़ी विस्तृत हो गया है।

संसर्गजा जातियों का जो लक्षण-निरूपण ग्रंथों में उपलब्ध होता है उसे देखते हुए यह कहना पड़ता है कि इनके स्वर-रूप-निर्माण के लिए 'इदमित्थं' कह कर कोई एक निश्चित विधान देना अनुसन्धान या अन्वेषण की मर्यादा के अनुरूप नहीं हो सकता। अतएव इस समय जो ग्रन्थस्थ सामग्री हमें उपलब्ध है, उसके आधार पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस विषय पर विचार कर के पांच विकल्पों के रूप में हमने अपने प्रयत्नों को प्रस्तुत किया है। इन पांच में से प्रथम दो विकल्प तो जातियों के मिश्रण द्वारा संसर्गज रूपों के निर्माण से संबन्ध रखते हैं। वे केवल आपाततः ही ग्राह्य जान पड़ते हैं; वास्तव में उनसे कोई फलसिद्धि नहीं होती। फिर भी पाठकों के विचारार्थ उनका उल्लेख कर दिया गया है। शेष तीन विकल्पों में इन संसर्गजा जातियों के अन्तर्गत समवाय, संयोग अथवा संसर्ग के प्रत्यक्ष प्रयोग को विभिन्न प्रकार से निष्पन्न करने का यत्न किया गया है। ये पाँचों विकल्प नीचे क्रमशः प्रस्तुत हैं।* अन्त में जातियों के रसों के सम्बन्ध में भरत के विधान का उद्धरण देकर कुछ उदाहरणों सहित इस विषय की विवेचना की गई है।

---

* प्रस्तुत प्रकरण में भरत के ही आधार पर विचार किया गया है। मतंग और शार्ङ्गदेव के इस विषय-प्रतिपादन पर पृथक् प्रकरणों में विचार किया जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसर्गजा विकृता जातियों के प्रसंग में सर्वप्रथम मिश्रण का विचार हो आना स्वाभाविक है; अर्थात् एकादश संसर्गजा जातियों में जिन-जिन जातियों का संसर्ग कहा गया है उनके मिश्र रूप बनाने की ओर सर्वप्रथम दृष्टि जाती है, कारण हमारे प्रचलित संगीत में रागों के विभिन्न प्रकार के सम्मिश्र रूप पाए जाते हैं। यथा आरोह-अवरोह में (जैसे भूपकल्याण—आरोह में भूप, अवरोह में कल्याण) पूर्वांग-उत्तरांग में (जैसे अहीर भैरव—पूर्वांग में भैरव, उत्तरांग में खमाज) अथवा आरोह-अवरोह, पूर्वांग-उत्तरांग दोनों में (जैसे वसन्त बहार) मिश्रण किये जाते हैं। इनके अतिरिक्त खट जैसे सम्मिश्र रूपों में छः रागों तक का सम्मिश्रण पाया जाता है, यद्यपि उसमें छहों रागों के अपने-अपने व्यक्तिगत रागत्व का अल्पांश ही प्रयुक्त होता है। थोड़े-थोड़े स्वरों के हेरफेर से इन रागों की छाया यत्र-तत्र निर्दशित की जाती है। इन संसर्गजा विकृता जातियों में भरत को क्या कुछ उसी प्रकार का मिश्रण अभिप्रेत रहा होगा ? आरंभ में ऐसा अनुमान हो आता है। यह अनुमान आपाततः ग्राह्य प्रतीत होने पर भी इस प्रकार के मिश्रण में अनेक कठिनाइयाँ सामने आती हैं जिन पर इस प्रकरण में विस्तार से विचार किया जा रहा है।

प्रथम विकल्प—मिश्रण की सरल प्रक्रिया

मिश्रण की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जिस संसर्गजा जाति में जिन-जिन शुद्धा जातियों का संसर्ग बताया गया है, उन सबके अपने अपने न्यास स्वर से जो-जो रूप बनते हैं, उन सबका एक सम्मिश्र रूप मध्य सप्तक में तैय्यार किया जाय। उदाहरणार्थ षड्जकैशिकी जाति में षाड्जी और गान्धारी का संसर्ग कहा गया है। तदनुसार षाड्जी के न्यास स्वर (षड्जग्राम के) षड्ज से प्राप्त काफ़ी-सदृश रूप और गांधारी के न्यास स्वर (मध्यमग्राम के) गांधार से प्राप्त कल्याण-सदृश रूप—इन दोनों का मध्य सप्तक में मिश्रण करके, आधुनिक रागों की दृष्टि से इस स्वरावली में काफ़ी-कल्याण अथवा कल्याण-काफ़ी के सम्मिश्र रूप का निर्माण हो सकता है अथवा दो गांधार, दो मध्यम और दो निषाद वाली स्वरावली का सामान्य सम्मिश्र रूप बनाया जा सकता है। तद्वत् षड्जोदीच्यवा में षाड्जी, गांधारी और धैवती का संसर्ग कहा है। षाड्जी और गांधारी के अपने-अपने न्यास स्वर से प्राप्त उपरिकथित स्वर-रूप के अतिरिक्त इसमें धैवती के न्यास स्वर से यानी षड्जग्राम के धैवत से पञ्चम-रहित, दो मध्यमयुक्त तोड़ी-भैरवी-सदृश रूप प्राप्त होता है। इस स्वरावली का यदि षाड्जी और गांधारी के साथ मिश्रण किया जाय तो काफ़ी, कल्याण और तोड़ी-भैरवी के राग-रूपों के मिश्रण का-सा रूप बनेगा। अथवा दो गांधार, दो निषाद, दो ऋषभ, दो धैवत और दो मध्यम युक्त सामान्य सम्मिश्र रूप प्राप्त होगा। इन तीन जातियों के संसर्ग से जो स्वर प्राप्त हुए उनमें उपरिकथित राग रूपों के अतिरिक्त अन्य अनेक सम्मिश्र रूपों का निर्माण हो सकता है। अतः इस उपलब्धि के बाद अन्य संसर्गजा जातियों में किसी नवीन रूप की प्राप्ति का अवकाश नहीं रह जाता। स्पष्ट है कि इस प्रकार का सम्मिश्रण करने के बाद अन्य सभी संसर्गजा जातियों में मिश्र रूपों की विपुल पुनरुक्ति ही हाथ लगेगी और उनका निर्माण व्यर्थ-सा जान पड़ेगा। पृ० ४० पर दी गई सारिणी से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी।

एक अन्य उदाहरण से उपर्युक्त पुनरुक्ति की स्पष्टता हो जाएगी। गान्धारोदीच्यवा जाति में षाड्जी, गान्धारी, धैवती और मध्यमा—इन चार जातियों का संसर्ग कहा है; तो क्या षड्जोदीच्यवा के अन्तर्गत उपरिलिखित काफ़ी, कल्याण, तोड़ी-भैरवी के अतिरिक्त मध्यमा के खमाज सदृश रूप का एक अधिक सम्मिश्रण ही उसमें अभिप्रेत है ? साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि मध्यमा के मिश्रण की वृद्धि से कोई नूतन प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि षाड्जी (काफ़ी) और गान्धारी (कल्याण) में जो स्वर हैं, उन्हीं में से खमाज की उपलब्धि तो सहज ही हो सकती है। ऐसी अवस्था में षड्जोदीच्यवा में केवल मध्यमा का योग बढ़ाकर गान्धारोदीच्यवा की रचना करने से क्या विशेष लाभ होगा ?

उपर्युक्त पुनरुक्ति दोष के साथ-साथ यह भी स्मरणीय है कि इन संसर्गजा जातियों के अन्तर्गत संसर्गप्राप्त स्वरावलियों में आधुनिक रागों का स्थूल सादृश्य तो अवश्य दिखाई देता है, किन्तु प्रश्न यही है कि इन एक-एक संसर्गज रूपों के अन्तर्गत जिन अनेक रूपों का संसर्ग अभिप्रेत है, उन सब का किस नियम से, किस विधि से समन्वय किया जाए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसर्गजा जातियों में मिश्रण की सरल प्रक्रिया की सारिणी

संसर्गजा जाति-नाम	संसर्गप्राप्त जातियाँ	आधुनिक रागों का स्थूल सादृश्य	मिश्रण-जन्य स्वरावली	विशेषोल्लेख
१. षड्जकैशिकी	षाड्जी, गान्धारी	काफ़ी कल्याण	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध–नि्–नि–सां	
२. षड्जोदीच्यवा	षाड्जी, गान्धारी, धैवती	काफ़ी, कल्याण, तोड़ी-भैरवी	सा–रि्–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	षाड्जी का संयोग निरर्थक
३. षड्जमध्यमा	षाड्जी, मध्यमा	काफ़ी, खमाज	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	द्वैग्रामिक अन्तर-काकली (स्वर-साधारण) का उपयोग इसमें विहित होने से तदनुसार स्वरावली बनाई गई है।
४. गान्धारोदीच्यवा	षाड्जी, गान्धारी, धैवती, मध्यमा	काफ़ी, कल्याण, तोड़ी-भैरवी, खमाज	सा–रि्–रि–ग्–ग–म–म्–प ध्–ध–नि्–नि–सां	षड्जोदीच्यवा की पुनरुक्ति, षाड्जी, मध्यमा का संसर्ग निरर्थक।
५. मध्यमोदीच्यवा	गान्धारी, पञ्चमी, धैवती, मध्यमा	कल्याण, आसावरी, तोड़ी-भैरवी, खमाज	सा–रि्–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	षड्जोदीच्यवा, गान्धारोदीच्यवा की पुनरुक्ति, पञ्चमी, मध्यमा का संयोग व्यर्थ।
६. रक्तगान्धारी	गान्धारी, पञ्चमी, नैषादी, मध्यमा	कल्याण, आसावरी, विलावल, खमाज	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	नैषादी, मध्यमा का संयोग व्यर्थ।
७. आन्ध्री	गान्धारी, षाड्जी	कल्याण, काफ़ी	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध–नि्–नि–सां	षड्जकैशिकी की पुनरुक्ति।
८. नन्दयन्ती	गान्धारी, पंचमी, आर्षभी	कल्याण, आसावरी, भैरवी	सा–रि्–रि–ग्–ग–म–ध्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	पंचमी का संयोग व्यर्थ।
९. गान्धारपञ्चमी	गान्धारी, पञ्चमी	कल्याण, आसावरी	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	षड्जमध्यमा की पुनरुक्ति।
१०. कार्मारवी	नैषादी, आर्षभी, पञ्चमी	विलावल, भैरवी, आसावरी	सा–रि्–रि–ग्–ग–म–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	पंचमी का संयोग व्यर्थ।
११. कैशिकी	षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी, नैषादी	काफ़ी, कल्याण, खमाज, आसावरी, विलावल	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध्–ध–नि्–नि–सां	गान्धारपंचमी और षड्जमध्यमा की पुनरुक्ति। षाड्जी, मध्यमा, नैषादी का संयोग व्यर्थ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिससे एक 'समवायी', रञ्जक और नियमित रूप खड़ा हो सके ? संसर्ग के नियमन की इस समस्या के साथ-साथ यह भी उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त मिश्रण-प्रक्रिया में संसर्गजा जातियों के अपने-अपने न्यास-स्वरों की कोई सार्थकता नहीं रह जाती; अर्थात् वे उन-उन संसर्गज रूपों के नियामक नहीं बन पाते। तद्वत् संसर्गजा विकृता जातियों के एकाधिक ग्रह-अंशों का समुचित विनियोग भी संभव नहीं होता।

अधुना प्रचलित संगीत में 'राग-सागर' के नाम से भी एक मिश्र रूप उपलब्ध होता है जिसमें आठ, बारह अथवा सोलह—यों बंदिश करनेवाले गुणी की जितनी इच्छा हो, उतने रागों की समूहबद्ध रचना की जाती है और एक चमत्कृति के रूप में जनता के सामने रखी जाती है। क्या इन संसर्गजा जातियों में भरत को ऐसे सम्मिश्रण अभिप्रेत होंगे ? उनके अपने वचनों में इसकी अस्पष्ट कल्पना भी उपलब्ध नहीं होती। इसलिये 'इदमित्थं' कहकर इसका निर्णय करना कहां तक उचित होगा ? 'खट' जैसे रागमिश्रण अथवा 'राग-सागर' जैसी मिश्र रचना से नाट्य की भावसिद्धि में क्या सहायता प्राप्त होगी ? स्पष्ट है कि इस प्रकार के मिश्रण केवल गायन-वादन की महफ़िलों के लिये ही उपयोगी हो सकते हैं; नाट्य में भावाभिव्यक्ति के लिये उनका कोई विशेष उपयोग संभव नहीं प्रतीत होता।

हम समझते हैं कि संसर्गजा जातियों में इस प्रकार के सम्मिश्रण से कोई विशेष भाव-सिद्धि, रस-सिद्धि, अथवा फल-सिद्धि नहीं होगी। यह सत्य है कि इन संसर्गजा जातियों को देखते ही अन्तर में प्रथम घोष आधुनिक संगीत में प्रचलित रागों के सम्मिश्रण की ओर ही जाता है। इसलिये हमने सत्य के परीक्षणार्थ इन जातियों का विविध रूप से सम्मिश्रण करने का बहुकाल तक प्रामाणिक यत्न करके देखा। किन्तु इनके सम्मिश्रण में निहित विपुल पुनरुक्ति-दोष ने हमें 'संसर्ग' के 'सम्मिश्रण' अर्थ से विरत किया और 'समवाय'* के विशेष अर्थ की खोज की ओर उन्मुख किया। तथापि हमारे यत्न का यह स्वल्प विवरण जिज्ञासु तथा अनुसन्धित्सु जनों के समक्ष प्रस्तुत है।

उपर्युक्त मिश्रण-विधि के अलावा, मिश्रण करने का एक अन्य मार्ग भी प्रस्तुत है। यह विधि इस प्रकार है।

'मिश्रण' का एक अन्य प्रकार—दूसरा विकल्प

यथा—सर्वप्रथम संसर्गजा जाति के अपने न्यास स्वर को षड्ज का स्थान दे कर ग्रामविशेष के अनुसार, आधारभूत स्वरावली का निर्माण किया जाए। तत्पश्चात् संसर्गप्राप्त जातियों के अपने-अपने न्यास स्वरों से उन-उन ग्रामविशेष में जो मूर्च्छनाएं (स्वरावलियां) बनें उन सबको इस दृष्टि से देखा जाए कि आधारभूत स्वरावली में वे क्या स्थान पाती हैं। पूर्वोक्त मिश्रणविधि में हमने सभी संसर्गप्राप्त जातियों के रूपों को एकत्र करके सम्मिश्रण करने का यत्न किया। यहां संसर्गप्राप्त जातियों की स्वरावलियों को संसर्गजा जाति के न्यास स्वर के नियंत्रण में एकत्र करने का यत्न किया जा रहा है। उदाहरणार्थ 'षड्जोदीच्यवा' में षड्जग्राम का मध्यम न्यास है और षाड्जी, गान्धारी तथा धैवती का संसर्ग है। इसी मध्यम को tonic (स्वरित) मानकर हम यह देखें कि संसर्गप्राप्त जातियों (षाड्जी, गान्धारी, धैवती) की अपनी-अपनी मूर्च्छनाओं का, मध्यम को स्वरित मानने से प्राप्त स्वरावली में वीणा पर क्या स्थान आता है। यथा :—

* संसर्गजा जातियों के 'समवाय' के बारे में तीन वैकल्पिक विधान आगे चलकर दिए जायेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीणा पर सारी-संख्या (चल थाट के अनुसार)	षड्जग्राम के मध्यम से प्राप्त स्वरावली (आधार भूत)		षाड्जी (षड्जग्राम के षड्ज से)	गान्धारी (मध्यमग्राम के गान्धार से)		धैवती (षड्ग्राम के धैवत से)		स्वरित मध्यम से प्राप्त स्वरावली में सभी मूर्च्छनाओं का एकत्र दर्शन
मेरु०				ग्	सा			
१								
२			सा	म	रिं			
३								
४			रि	प	ग			
५			ग्					
६				ध	म्			(नि़)
७	म	सा	म	नि़	प			सा
८	प	रि	प	सां	ध			रि
९								
१०	ध	ग	ध	रिं	नि	ध	सा	ग
११	नि़	म	नि़	गं	सां	नि़	रि़	म
१२								
१३	सां	प	सां			सां	ग्	प
१४	रिं	ध				रिं	म	ध
१५	गं	नि़				गं	म्	नि़
१६	(अं० गां०)							नि
१७	मं	सां				मं	ध्	सां
१८						पं	नि़	
१९						धं	सां	
२०								

ऊपर हमने देखा कि 'षड्जोदीच्यवा' में षाड्जी, गान्धारी, धैवती—इन तीन जातियों के संसर्ग से केवल दो निषादयुक्त स्वरावली प्राप्त हुई। यही स्वरावली षाड्जी जाति में काकली स्वर-साधारण के प्रयोग से भी प्राप्त हो सकती थी। इसके लिए तीन-तीन जातियों के संसर्ग द्वारा 'द्राविड़ प्राणायाम' की क्या आवश्यकता थी ? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है।

एक अन्य उदाहरण देख लें। मध्यमग्राम की गान्धारोदीच्यवा जाति में मध्यमग्राम का मध्यम न्यास स्वर है और उसमें षाड्जी, गान्धारी, धैवती और मध्यमा का संसर्ग है। यथा—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वीणा पर सारी-संख्या (चल थाट के अनुसार)	मध्यमग्राम के मध्यम से प्राप्त स्वरावली (आधार भूत)		षाड्जी (षड्जग्राम के षड्ज से)	गान्धारी (मध्यमग्राम के गान्धार से)		धैवती (षड्जग्राम के धैवत से)		मध्यमा (मध्यमग्राम के मध्यम से) (स्वर-साधारण सहित)		स्वरित मध्यम से प्राप्त स्वरावली में सभी मूर्च्छनाओं का एकत्र दर्शन
मेरु०				ग्	सा					
१										
२	म	सा	सा	म	रि			म	सा	सा
३										
४	प	रि	रि	प	ग			प	रि	रि
५			ग्							ग्
६	ध	ग		ध	म्			ध	ग	ग
७	नि्	म	म	नि्	प			नि्	म	म
८	सा	प	प	सा	ध			का. नि.	म्	म्
९								सा	प	प
१०	रि	ध	ध	रि	नि	ध	सा			
११	ग्	नि्	नि्	ग्	सा	नि्	रि्	रि	ध	ध
१२								ग	नि्	नि्
१३	म	सां	सा			सां	ग्	अं. गां.	नि	नि
१४						रिं	म	म	सां	सां
१५						गं	म्			
१६										
१७						मं	ध्			
१८						पं	नि्			
१९						धं	सां			
२०										

यहां दो गान्धार, दो मध्यम और दो निषाद वाली स्वरावली प्राप्त हुई। किंतु यहां षड्जग्राम की षाड्जी अथवा धैवती—किसी एक के ग्रहण से भी यही फल-प्राप्ति होती, तद्वत् स्वरसाधारणयुक्त मध्यमा के ग्रहण के साथ-साथ गान्धारी का ग्रहण भी निरर्थक जान पड़ता है। दोनों ग्रामों की स्वरावलियों का एकत्र दर्शन तो प्रत्येक ग्राम की एक-एक जाति के संसर्ग से ही हो सकता है। फिर दो से अधिक जातियों के संसर्ग से कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होता है ?

नीचे दी हुई सारिणी से यह स्पष्ट होगा कि इस मिश्रण-विधि में जहां एक ओर पुनरुक्ति का बाहुल्य है, वहां दूसरी ओर अनेक जातियों के संसर्ग की सार्थकता भी सिद्ध नहीं हो पाती। अतः इस विधि में एक न्यास स्वर के अनुसार,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरल मिश्रण से भिन्न मिश्रण-प्रक्रिया की सारिणी

संसर्गप्राप्त जाति नाम	ग्राम	न्यास स्वर	संसर्गप्राप्त जातियाँ	न्यास स्वर के अनुसार, संसर्गप्राप्त जातियों के एकत्र दर्शन से उपलब्ध स्वरावली	विशेषोल्लेख
१. षड्जकैशिकी	षड्ज	गान्धार	षाड्जी, गान्धारी,	सा–रि्–रि–ग–म्–प–ध–नि्-सां	
२. षड्जोदीच्यवा	,,	मध्यम	षाड्जी, गान्धारी, धैवती	सा–रि-ग-म–प–ध–नि्–नि-सां	गान्धारी, धैवती का संयोग व्यर्थ, केवल काकली निषाद के ग्रहण से काम चल सकता था।
३. षड्जमध्यमा	,,	षड्ज, मध्यम	षाड्जी, मध्यमा	सा-रि-ग्-ग-म-म्-प-ध्-ध-नि्–नि–सां	'मध्यमा' में भरत-वचनानुसार स्वर-साधारण का उपयोग।
४. गान्धारोदीच्यवा	मध्यम	मध्यम	षाड्जी, गान्धारी, धैवती, मध्यमा	सा-रि–ग्-ग-म–म्–प–ध–नि्-नि-सां	गान्धारी तथा धैवती अथवा षाड्जी का संयोग व्यर्थ।
५. मध्यमोदीच्यवा	,,	,,	गान्धारी, पञ्चमी, धैवती, मध्यमा	सा–रि–ग्–ग–म–म्–प–ध–नि्–नि-सां	गान्धारी, पञ्चमी का संयोग व्यर्थ, गान्धारोदीच्यवा की पुनरुक्ति।
६. रक्तगान्धारी	,,	गान्धार	गान्धारी, पञ्चमी, नैषादी, मध्यमा	सा–रि्–रि–ग–म–म्–प–ध् ध-नि-सां	'मध्यमा-पञ्चमी' के कारण स्वर साधारण का प्रयोग। गान्धारी का संयोग व्यर्थ; मध्यमा अथवा पंचमी एक ही आवश्यक।
७. आन्ध्री	,,	,,	गान्धारी, षाड्जी	सा–रि-ग-म-म्–प-ध–नि-सां	
८. नन्दयन्ती	,,	,,	गान्धारी, पंचमी, आर्षभी	सा–रि–ग–म–म्–प–ध–नि-सां	आन्ध्री की पुनरुक्ति।
९. गान्धारपञ्चमी	,,	,,	गान्धारी, पञ्चमी	सा-रि्-रि-ग–म्–प-ध्-ध नि-सां	रक्तगान्धारी की स्वरावली के अन्तर्भूत।
१०. कामरवी	,,	पञ्चम	नैषादी, आर्षभी, पञ्चमी	सा–रि्–रि-ग्–ग–म–प–ध्-ध–नि्-सां	नैषादी अथवा आर्षभी व्यर्थ।
११. कैशिकी	,,	गान्धार, निषाद, क्वचित् पंचम	षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी, नैषादी,	सा रि्-रि-ग्–ग–म–म्–प-ध्–ध–नि्–नि-सां	गान्धारी, षाड्जी अथवा नैषादी, मध्यमा अथवा पंचमी का संयोग व्यर्थ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसर्गप्राप्त जातियों का एकत्र समावेश करने से जो रूप बनते हैं, उन्हें देख कर यह अनुमान या कल्पना भी नहीं की जा सकती कि भरत को कुछ ऐसा मिश्रण अभिप्रेत रहा होगा।

प्रथम विकल्प की मिश्रण-विधि में भिन्न २ जातियों से प्राप्त राग-रूपों के सादृश्य का मिश्रण और तदंगभूत स्वरावलियों में पुनरुक्ति दोष का बाहुल्य हमने देखा। प्रस्तुत विकल्प में न्यास स्वर के नियंत्रण के बावजूद स्वरों की पुनरुक्ति और संसर्ग की निरर्थकता भी हमने देखी। अतः इन दोनों ही विकल्पों के अंतर्गत द्विविध सम्मिश्रण अग्राह्य जान पड़ता है।

इन उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण संसर्गजा जातियों में क्षीर-नीर अथवा दुग्ध-शर्करा जैसा मिश्रण त्याज्य ही मानना पड़ता है। ध्यान रहे कि भरत ने भी इस प्रसंग में 'मिश्रण' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं किया है। उन्होंने 'संसर्ग', 'समवाय' और 'संयोग'—इन शब्दों का ही प्रयोग किया है। ये तीनों शब्द सम्बन्ध-विशेष के द्योतक हैं।* इन शब्दों के अर्थ को देखते हुए ऐसी प्रतीति होती है कि मिश्रण की इस प्रकार की प्रक्रिया ग्राह्य नहीं हो सकती जिसमें कि संसर्गप्राप्त जातियों का 'येन-केन प्रकारेण' केवल एकत्रीकरण ही प्रयोजन हो। 'सम्बन्ध-विशेष' की स्थापना के लिये तो संसर्गप्राप्त जातियों में परस्पर अंगांगिभाव से संयोग आवश्यक है। अर्थात् संसर्गजा जातियों में जिन-जिन जातियों का संयोग या समवाय या संसर्ग अभिप्रेत हो वे सब किसी केन्द्र-स्थानीय स्वररूप (अंगी) के अंगों के रूप में संबद्ध रहें और अंगांगिभाव-युक्त समग्र रूप 'संसर्गजा जाति' अभिधान प्राप्त करे; ऐसा अर्थ भरत के 'संयोग', 'समवाय' और 'संसर्ग' शब्दों में निहित जान पड़ता है। इस अर्थ के अनुसार हम निम्नलिखित तीन विकल्प प्रस्तुत करते हैं।

संसर्गजा जातियों में पारस्परिक संसर्ग (मिश्रण) के दो रूप हम इसके पूर्व बता चुके हैं। उनके समवाय का कोई विशेष विधान ग्रंथों में उपलब्ध नहीं होने से क्रिया-रूप में जो जो संभव संयोग हो सकता है, उसका एक अन्य रूप यहां दिया जा रहा है। अर्थात् मिश्रण की प्रक्रिया का त्याज्यत्व और 'समवाय' के अर्थानुसार अंगांगिभाव की स्थापना का ग्राह्यत्व—इन दोनों का ऊपर जो प्रतिपादन किया गया है तदनुसार इस विकल्प में एक विशिष्ट समवाय-विधि का निरूपण प्रस्तुत है। इस विधि के प्रमुख पहलु ये हैं:—

संसर्गजा जातियों में 'समवाय' दृष्टि से संयोग—तीसरा विकल्प

(१) संसर्गजा जाति का जो ग्राम है, उसी ग्राम की मूल स्वरावली को केन्द्रस्थ रखा जाएगा।

(२) उस केन्द्रस्थ स्वरावली में संसर्गजा जाति का जो भी न्यास स्वर होगा वह मुकाम का या ठहराव का स्थान लेगा, षड्ज का नहीं।

(३) संसर्गजा जाति के अंतर्गत जिन-जिन जातियों का संसर्ग अभिप्रेत हो, उनके पृथक्-पृथक् रूपों के निर्माण के लिए क्रमशः भिन्न २ ग्रह-अंशों को षड्ज का स्थान देना होगा।

(४) इन विभिन्न स्वर रूपों को केन्द्रस्थ स्वरावली के साथ समवाय सम्बन्ध द्वारा आबद्ध करने के लिए उपर्युक्त न्यास स्वर सन्धि-स्थल का कार्य करेगा और इस प्रकार न्यास का नियामकत्व अक्षत रहेगा।

षड्जोदीच्यवा का उदाहरण

उदाहरण के लिये षड्जोदीच्यवा नाम की जाति में षाड्जी, गान्धारी और धैवती—इन तीनों जातियों का परस्पर संयोग कहा गया है। षड्जोदीच्यवा जाति षड्जग्राम की है और उसमें, जैसा कि हम

* न्यायदर्शन में 'समवाय-सम्बन्ध' उस सम्बन्ध-विशेष को कहते हैं जो अवयव-अवयवी, गुण-गुणी, जाति-व्यक्ति, क्रिया-क्रियावान् में रहता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले कह आये हैं षड्जग्राम की षाड्जी और धैवती तथा मध्यग्राम की गान्धारी जाति का संयोग है। कैसे ? किस रूप से ? यह जाति षड्जग्राम की होने से षाड्जी इसका स्थायी रूप होगा, गान्धारी और धैवती का उसमें यथा-नाट्य-भाव यथा-संचारि-भाव विनियोग होगा। षाड्जी को स्थायिभाव मानकर उसके अन्तर्गत अन्य संचारिभाव जहां जिस प्रकार नाट्यानुकूल प्रयुक्त करने की आवश्यकता हो तदनुसार गान्धारी और धैवती का संसर्ग करना चाहिए।

यहां यह ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है कि इन तीनों जातियों के संसर्ग के लिये मध्यम, जो कि इस संसर्गजा जाति का न्यास कहा गया है, वह इन तीनों जातियों का समन्वय स्थापित करने का माध्यम रहेगा। यानी 'न्यास' यहां विश्राम या मुकाम का स्थान पाता है। जहां मुकाम है वहीं से अन्य स्वरावलि का योग जोड़ा जाएगा; और वहीं से मूल स्वरावली पर लौटने की सुविधा होगी। षड्जग्राम का मध्यम और मध्यमग्राम का मध्यम दोनों षड्ज-मध्यम-भाव से पारस्परिक संवाद से आबद्ध हैं। षड्जग्राम का षड्ज ही मध्यमग्राम का मध्यम है यह हम जानते हैं। मध्यमग्राम के मध्यम पर न्यास करना यानी षड्जग्राम के षड्ज पर मुकाम करना। तद्वत् षड्जग्राम के मध्यम पर न्यास करना यानी मध्यमग्राम के निषाद पर न्यास करना। मध्यमग्राम की गांधारी जाति का आरंभस्थान गान्धार और षड्जग्राम का निषाद ये दोनों एक ही स्थान पर स्थित हैं। मध्यमग्राम के गांधार को यानी षड्जग्राम के निषाद को षड्जस्थानीय मान कर चलने से षड्जग्राम का मध्यम गान्धारी का पंचम हो जाएगा। अब हम पहले षाड्जी और गांधारी, इन दोनों का समन्वय कर के देखें :—

षाड्जी—षड्ज ग्रह-अंश—न्यास मध्यम

सा रि ग् रि म, सा म, म ग् रि ग् ऽ म, सा रि ग् सा रि म, प म, प ध ऽ म, म प ध ऽ म, म ग् रि म, म ग् रि सा। सा ग् रि ग् म।

मध्यम को न्यास रखते हुए षाड्जी का यह रूप बना। अब इसी मध्यम को न्यास रखते हुए गान्धारी की स्वरावली ली जाए तो यही षड्जग्राम का मध्यम उस गान्धारी में पञ्चम का स्थान पाएगा और इस प्रकार षाड्जी के ही स्वरों में गान्धारी का कल्याण-सदृश रूप बनेगा। यह ध्यान रहे कि गान्धारी मध्यमग्राम की जाति है। मध्यमग्राम में षड्जग्राम का अन्तर गान्धार ही धैवत का स्थान पाता है। इसलिए गान्धारी का रूप-निर्माण करते समय षड्जग्राम का अन्तर गान्धार प्रयुक्त करना होगा। और वह गान्धारी जाति में तीव्र मध्यम का स्थान पाएगा। मध्यमग्राम के गान्धार को यानी षड्जग्राम के निषाद को ग्रह-अंश बनाने से अन्तर-गान्धार-युक्त षाड्जी जाति की स्वरावली में ही निम्नोक्त प्रकार से गान्धारी का आविर्भाव होगा। यथा :—

षाड्जी— मगरिग्रिसानि्, नि्सारिगम, मगरिग्रिसा, नि्सारिगमऽगरिग्रिसा, ध्सारिग्रिसा,
गान्धारी—पम्गमगरिसा, सारिगम्प, पम्गमगरि, सारिगम्पऽम्गमगरि, नि्रिगमगरि,

षाड्जी— रिगमगरिग्रिसाऽनि्, नि्सारिगम।
गान्धारी—गम्पम्गमगरिऽसा, सा रिगम्प।

अथवा

षाड्जी— मगरिग्रिसाऽनि्, ध्सारिगम, मगमपगम, रिग्रिसारिगम, रिगमपगम, रिग्रिसा,
गान्धारी—पम्गम गरिऽसा, नि्रिगम्प, पम्पधम्प, ग म ग रि ग म्पं, गम्पधम्प, ग म ग रि,

षाड्जी— नि्सारिगम, सारि रिग गम मप प ध ध नि ध पऽम, मगपम ऽ गरिग्रिसा ऽ रिगऽम।
गान्धारी—सारिगम्प, रिग गम् म्प पध धनि निसां निधऽप, पम्धप ऽ म् गम गरि ऽ ग म्ऽप।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार हमने देखा कि ग्रह अंश बदलने से आज के जैमिनि-कल्याण के रूप का भास होता है और मूल षड्जग्रामिक स्वरावलि को देखते हुए दो गान्धारवाले काफ़ी अथवा कहीं-कहीं जयजयवन्ती सदृश रूप का दर्शन होता है। इसी में धैवती का संसर्ग करते समय भरत के कथनानुसार धैवती को ग्रह-अंश बनाना होगा। यथा :—

पाड्जी— ध नि् ध, म ध नि् सा ऽ ध नि् ध, म धनि् ध ऽ, म नि् ध, मनि् धसा ऽ ध नि् ध,
धैवती— सा रि् सा, ध् सारि् ग् ऽ सारि् सा, ध् सा रि् सा ऽ, ध् रि् सा, ध् रि् साग् ऽ सारि् सा,

पाड्जी— ध नि् साग्ऽसाऽधनि् ध धनि् साग्ऽम, ग्मग्सा ऽ नि् ऽ धनि् ध, मऽग्मऽग्साऽनि साऽधनि् ध,
धैवती— सारि् ग्म्ऽग्ऽसारि् सा, सारिगम्ऽध्, म्ध्म् ग ऽ रि् ऽ सारि् सा, ध्ऽम् ध्ऽम्ग्ऽरि् ग्ऽसारि् सा,

पाड्जी— धनि् साग्म ऽ, म ग् ऽ साग् ऽ म ऽ, म ग् म सा, ग्साग्नि्, सानि्साध ऽ नि् ध,
धैवती— सारि् ग् म् ध् ऽ, ध् म् ऽ ग म् ऽ ध् ऽ, ध म् ध् ग्, म् ग् म् रि्, ग्रि् ग्सा ऽ रि् सा,

पाड्जी— मप धनि् धप नि् ध, म प ध ऽ प ध नि् ऽ, धनि् साऽ ध नि् ध।
धैवती— ध् नि् सारि् सानि् रि् सा, ध् नि् सा ऽ नि् सा रि् ऽ, सारि् ग् ऽ सारि् सा।

पाड्जी— धनि् रिसा ऽधनि् ध, धनि् सारिनि् साऽध नि् ध, धनि् सारिग्रिऽसाऽधनि् ध,
धैवती - सारि् म ग् ऽसारि् सा, सारि् ग् मरि् ग ऽसारि् सा, सारि् ग् मम् मऽ ग् ऽसारि् सा,

अथवा

पाड्जी— धनि् सागम्ऽमग्सानि् साग्म, मग्सानि् ग्सानि् ध, धनि् साग्मऽमधनि् साऽ धनि् ध, म ऽमऽग्म ध,
धैवती— सारि् ग् म्ध्ऽध्म्ग्रि् ग् म्ध्, ध्म् ग्रि् म् ग्रि् सा, सारि् ग्म्ध्ऽध् सारि् ग्ऽसारि् सा, ध ऽध्ऽम्ध्सं,

पाड्जी— ध प धनि् ध प मऽ मद नि् ध पम ऽ ग्मग्साऽ धनि् ध, धनि् साग्म, ग्मग्साधनि् ध,
धैवती — सांनि्सारिं सानि्ध्ऽ ध्नि्रिं सांनि्ध्ऽ म्ध्म् ग्ऽ सारि् सा, सारिग्म्ध्, म्ध्म्ग्सारि् सा,

पाड्जी— धनि् सारिसा ऽ ध नि् धऽ।
धैवती— सारि् ग् म ग् ऽ सारि् साऽ।

धैवत को ग्रह अंश बनाने से ऊपर लिखी स्वरावली प्राप्त हुई जिससे 'धैवती' जाति में सन्निहित तोड़ी-भैरवी का-सा रूप उपलब्ध हुआ। यह ध्यान रहे कि पुनः उस धैवत को छोड़ कर षड्ज को ही ग्रह अंश बनाने से षाड्जी की पुनः स्थापना होगी और इस प्रकार स्थायी स्वराली पर लौट कर पुनः स्थायिभाव का परिपोष किया जायगा। षड्जोदीच्यवा का न्यास मध्यम इस पुनरावर्तन की क्रिया के लिए सन्धिस्थल बनेगा।

इस जाति के ग्रह अंशों में मध्यम को भी स्थान दिया गया है। तदनुसार मध्यम को अंशत्व देने से खमाज-सदृश स्वरावली प्राप्त होगी। किन्तु 'मध्यम' यहाँ किसी संसर्गप्राप्त जाति के न्यास स्वर का प्रतिनिधि नहीं है। संसर्गजा जातियों में कहीं २ इस प्रकार ग्रह अंशों का जो आधिक्य पाया जाता है, उस पर कुछ आगे चलकर विचार किया जागया।

रक्तगान्धारी का उदाहरण

रक्तगान्धारी मध्यमग्राम की जाति है। इसमें गान्धारी, मध्यमा, पंचमी और नैषादी—इन चार जातियों का समवाय है। मध्यमग्राम का गान्धार न्यास है अर्थात् इन चारों के सम्मिलन का स्थान है। ग्रह अंश '(सा) रे ग म (प) नि' हैं। यह जाति मध्यमग्राम की होने से मध्यमग्राम के गांधार को न्यास अर्थात् ठहराव का स्थान बनाते हुए, मूल मध्यमग्रामिक स्वरों से इस जाति के आधारभूत (केन्द्रीय) रूप का निर्माण करना होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रक्तगान्धारी में ऋषभ-धैवत वर्ज्य कर के औडव रूप बनाने को कहा गया है। तदनुसार ऋषभ-धैवत का इस में अल्पत्व भी समझा जा सकता है। इस दृष्टि से इसका स्वरूप कुछ निम्नोक्त सा बनेगा।

गान्धार-न्यासयुक्त गान्धारी* (मूल मध्यमग्रामिक स्वरावली अर्थात् यहाँ गान्धार को षड्ज का स्थान नहीं दिया गया है।) ग् रि सा ग् ऽऽ म ग् ऽऽ, म प ग् ऽऽ, ग् म प ग् ऽऽ, ग् म नि् प ग्, ग् सा ग् म नि् प ग्, ग् म प ग् म ध ग्, ग् म ग् ऽऽ सा रि ऽ सा ग्।

मध्यमा का संसर्ग—(मध्यमग्राम का मध्यम ग्रह अंश) मध्यमा में स्वर-साधारण का प्रयोग विहित है। अतः अन्तर काकली का यथास्थान प्रयोग किया जाएगा।

मूल मध्यमग्रामिक स्वरावली १—म ग् ऽ म, म ग म पऽ म, म ग् ऽसागम पऽ म, सागऽम, म पनि् पऽ म
मध्यमा २—सानि्ऽसा, सानि् सारिऽसा, सानि् ऽपुनि्सारिऽसा, पुनि्ऽसा, सारिमरिऽसा

१—म नि्प ऽम, म पनिसांनि्पऽमऽ, ग म पनिसांऽनि्पऽम ऽ
२ – सा मरि ऽस, सारिमप मरिऽसाऽ, नि्सारिम् पऽ म रिऽसाऽ
१—सागम प नि् प म ग्, सागऽम, मपनि्सांग्ऽ, सांगंमं ग्ंसांरिंऽसां,
२—पुनि्सारिम रिसानि्, पुनि्ऽसा, सारिमपनि् ऽ, प निसांनि्प ध ऽ प,

१—नि्ऽपनि्ऽसां नि् प म ग् ऽ, सागऽम } मपगऽसाग्पग्ऽसाग्मपनि्सांनि्पग्—ये स्वरा-
२—मऽरिमऽप ऽ म रिसानि् ऽ, पुनि्ऽसा }
वलियाँ सन्धिस्थल-स्वरूप हैं। इनसे पुनः गांधारी में लौट सकेंगे।

पंचमी का संसर्ग—मध्यमग्राम का पंचम ग्रह अंश –

मध्यमग्राम की मूल स्वरावली १—पऽम प ग् ऽ, प म ग् म ध प ग्ऽ म प, प म ग् म प धनि् (सां / म), प ध प म ध प ग्,
पंचमी २ सऽनि् साध् ऽ, सानि् ध् नि् रिसाध् ऽनि् सा, सानि् ध् नि् सारि ग्, सारिसानि् रिसाध्,

१—प ऽम ध प नि् (सां / म), सांधऽग, पम पऽ ध पधऽऽनि् धनि्, ध प धऽ,
२—साऽनि् रिसाग्, सांरेऽस, सनि् सऽरिसरिऽऽग्रि ग्, रिसारेऽ,

१ – प म प ऽ, प ऽ म प धसां नि्ऽ धपम ग्, ग् म प धग् } साग् ऽमपग,
२ सानि् साऽ, साऽनि् सारिग् मऽरिसनि् ध्, ध् नि् सरिध् }

साग्मपनि्सांऽऽनि्पग् ऽऽ यह सन्धिस्थल है, जिस से पुनः गान्धारी का आविर्भाव हो सकता है। स्वर-साधारण का प्रयोग पंचमी में भी ग्राह्य है। मध्यमा की भाँति यहाँ भी उसे यथास्थान प्रयुक्त किया जा सकता है।

नैषादी का संसर्ग—षड्जग्राम का निषाद और मध्यमग्राम का गान्धार वीणा पर एक ही स्थान पर हैं। अतः यहाँ हम नैषादी के निदर्शन के लिये षड्जग्राम की मूल स्वरावली में ही निषाद को ग्रह-अंश का स्थान दे रहे हैं। साथ ही पाठकों के सौकर्य के लिए मध्यमग्रामिक स्वरावली भी दिखा दी है:—

ष० ग्रा० स्वरावली १—नि् ऽनि् धनि्, नि् धऽपऽ मपनि्, नि्ऽनि् धसानि्, नि् धसा नि् रिसगरि,
नैषादी २—सा ऽसा निसा, सनि्ऽधऽ पधसा, स ऽस निरि स, स निरि साऽगरिमग,
म० ग्रा० स्वरावली ३—ग ऽ ग् रि ध्, ग्रिऽसऽनि् सग्, ग् ऽग् रिम ग्, ग् रि म ग्ऽप मधप,

---

* 'रक्तगान्धारी' इस नाम में 'गान्धारी' का स्थान, गान्धार का न्यासत्व तथा गान्धारी का संसर्ग—इन तीनों दृष्टियों से यहाँ आधारभूत (केन्द्रीय) स्वरावली को 'गान्धारी' नाम देना उचित समझा गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१—रिससनि॒, नि॒सारिग॒ऽऽपमग॒मरिगसरिनि॒, नि॒सासारिरिग॒रि,
२—गरिरिस, स रि ग मऽऽध पमप ग मरि गस; स रि रि ग ग म ग,
३—पममग॒, ग॒ म प ध॒ऽऽसांनि॒ध॒नि॒ ध म पग॒, ग॒ म म प प ध॒ प,

१—नि॒सारिग॒रि, सरिग॒मग॒, रिग॒मपम, पमऽपग॒, मरिऽग॒स, रिनिऽऽ
२—स रि ग म ग, रिगमपम, ग म पधप, धपऽधम, पगऽमरि, गसऽऽ
३—ग॒ म प ध॒ प, मपध॒नि॒ध॒, पध॒नि॒सांनि॒, सांनि॒ऽसांध॒, नि॒प॒ऽध॒म, पग॒ऽऽ

सग॒मपग॒मपनि॒पग॒, ग॒मपनि॒ग॒, सग॒ऽऽ—यह स्वरावली संधिस्थल है जहां से पुनः गान्धारी पर लौट सकते हैं।

ध्यान रहे कि रक्तगान्धारी के ग्रह-अंशों में भरत ने 'गमपनि' के अतिरिक्त ऋषभ को भी स्थान दिया है। ऋषभ से षड्जग्राम की आर्षभी जाति बनती है। यहां आर्षभी जाति का संसर्ग नहीं कहा गया है। षड्जग्राम का पंचम ही मध्यमग्राम का ऋषभ है। मध्यमग्राम के पंचम को ग्रह-अंश का स्थान देकर हमने अभी ऊपर पंचमी का संसर्ग निदर्शित किया। मध्यमग्राम के पंचम को यदि षडज्ग्राम का ऋषभ मानकर चलेंगे तो द्विश्रुतिक (कोमल) 'रे' प्राप्त होगा और ऊपर लिखी पंचमी की आसावरी-सदृश स्वरावली के स्थान पर भैरवी-सदृश स्वरावली प्राप्त होगी यथा :—

ष० ग्रा० ऋ० ग्रहअंश १—रिग॒मप, पमग॒ऽरि, सानि॒ऽसारि, रिग॒मप, म प धनि॒ ध,
(ऋषभ को 'सा' मानकर प्राप्त स्वरावली) २—सरि॒ग॒म, मग॒रि॒ऽस, नि॒ध॒ऽनि॒स, सरि॒ग॒म, ग॒ म प ध॒ प,
म० ग्रा० स्वरावली ३—पध॒नि॒सां, सांनि॒ध॒ऽप, म ग॒ ऽ मप, पध॒नि॒सां, नि॒सांरिंगं॒रिं,
१—पमग॒ऽरि, सा नि॒ऽसा ऽरि, रिग॒मपधनि॒सांरिं,
२—मग॒रि॒ऽस, नि॒ ध॒ ऽनि॒ऽसा, सरि॒ग॒मपध॒नि॒सां,
३—सांनि॒ध॒ऽप, म ग॒ ऽ म ऽप, पध॒नि॒सांरिंगं॒मंपं,

मध्यमग्राम का पञ्चम और षड्जग्राम का ऋषभ—दोनों एक ही स्थान पर स्थित होने पर भी ग्रामभेद के कारण दोनों से उत्थित स्वरावलियों में जो भिन्नता है, उसी के निदर्शन के लिए संभवतः भरत ने ऋषभ को भी ग्रह अंशों में स्थान दिया होगा।

समवाय का एक विशिष्ट-दर्शन—चौथा विकल्प

संसर्गजा जातियों में जिन जातियों का संसर्ग कहा गया है, उनमें परस्पर 'समवाय-संबन्ध' की स्थापना के लिये हमने एक विधि, विकल्प के रूप में प्रस्तुत की। 'संसर्ग', संयोग', 'समवाय' इन शब्दों के अर्थ पर अधिक विचार करते हुए दो बातें मुख्यतः विचारणीय जान पड़ती हैं जो निम्नलिखित हैं। इन पर विचार करते हुए हम एक अन्य समवाय—विधि को विकल्प के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

(१) अपवादरूप षड्जमध्या और कैशिकी को छोड़कर प्रत्येक संसर्गजा जाति में न्यास स्वर एक-एक ही कहा गया है। शुद्धा जातियों के अवान्तर विकृत भेद बनाने के निमित्त जिस प्रकार उनमें अनेक ग्रह अंशों का निर्देश किया गया है उसी प्रकार शुद्धाओं के संसर्ग से उत्पन्न इन एकादश जातियों में भी दो एक अपवादों को छोड़ कर प्रायः सभी में एकाधिक ग्रह अंश कहे गए हैं, किन्तु न्यास स्वर इनमें भी प्रायः एक-एक ही कहा है।

(२) एक ओर हम देखते हैं कि संसर्गजा जातियों में न्यास-स्वर प्रायः एक-एक ही कहे गए हैं और दूसरी ओर उनमें एकाधिक जातियों का संसर्ग भी बताया गया है। ऐसी अवस्था में किसी एक न्यास-स्वर को संसर्गजा जाति के स्वरूप का नियामक कैसे समझा जाय ? तथा इन संसर्गजा जातियों में न्यासस्वर से भिन्न जो ग्रह अंश कहे गए हैं, उनका संसर्गज रूप की निष्पत्ति में क्या और कैसा योगदान समझना चाहिये ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(३) भरतोक्त 'समवाय' 'संयोग' संसर्ग' आदि शब्दों के भावार्थ पर विचार करने से ऐसा निष्कर्ष निकलता है कि जिन जातियों का संसर्ग बताया गया है, उनके व्यक्तिगत रूप को बनाये रखते हुए उनका एकत्र समावेश करना अभिप्रेत है। इस प्रकार एकत्र समावेश से समवायी रूपों के निर्माण के लिये किसी न किसी नियमरूप आधार की आवश्यकता है। वह आधार हमें भिन्न-भिन्न संसर्गजा जादियों में भरत के वताए हुए न्यास स्वरों में उपलब्ध होता है। ध्यान रहे कि यहाँ एकादश में से उन नौ संसर्गजा जातियों का ही प्रसंग है जिनमें कि एक ही एक न्यास स्वर कहा गया है। शेष जिन दो जातियों में एकाधिक न्यासस्वर कहे हैं उन पर अन्यत्र पृथक् रूप से विचार किया जाएगा। यह हमें कभी नहीं भूलना चाहिये कि इन सभी जातियों का विनियोग प्रसंगानुकूल भावाभिव्यक्ति के लिये नाट्य में किया गया है। इसका विशद स्पष्टीकरण कुछ आगे चल कर दिया जाएगा। अस्तु।

'समवाय' सम्बन्ध से संसर्गजा जातियों के निर्माण के लिये उनके अपने-अपने एक-एक न्यास-स्वर तो नियामक आधार हैं ही, साथ ही जिन जातियों का संसर्ग या संयोग अभीप्सित है उनके अपने-अपने व्यक्तित्व के निदर्शन के लिए संसर्गज-रूपों में एकाधिक ग्रह अंश कहे गये हैं। संसर्गजा जातियों में जो ग्रह अंश कहे हैं वे प्रायः* उन शुद्धा जातियों के नियामक-स्वरूप न्यास स्वरों के प्रतिनिधि हैं जिनका कि वहाँ संसर्ग अभिप्रेत है। पृष्ठ ५१-२ पर दी हुई सारिणी से यह बात स्पष्ट होगी। जिन स्वरों को रेखांकित किया गया है वे संसर्गप्राप्त जातियों के ऐसे न्यास स्वर हैं जिन्हें संसर्गजा जाति के 'ग्रह अंशों' में अथवा 'न्यास' में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।

प्रस्तुत सारिणी से यह स्पष्ट होगा कि केवल कुछ एक संसर्गजा जातियाँ ऐसी हैं जिनमें संसर्गप्राप्त जातियों के न्यास स्वरों में से एकाध स्वर को ग्रह, अंश या न्यास में कहीं भी स्थान नहीं मिल पाया है। इन अपवादों के पीछे ग्रन्थकारों का क्या विशेष हेतु होगा यह ग्रन्थों से स्पष्ट नहीं होता, यह कठिनाई बुधजनों के समक्ष यथायथ निवेदित है। साथ ही कुछ संसर्गजा जातियाँ ऐसी भी हैं जिनके ग्रह अंशों में कुछेक स्वरों का आधिक्य है जो सारिणी में दिखाया गया है। उस पर कुछ आगे चल कर विचार किया जाएगा।

प्रस्तुत विकल्प में संसर्गजा जातियों के ग्रह-अंशों के आधार पर उनके अन्तर्गत संसर्गप्राप्त जातियों की अपनी-अपनी स्वरावलियों का क्रमशः आविर्भाव करना होगा। इस विकल्प में न्यास स्वर को षड्ज का स्थान देना होगा और उससे उत्थित स्वरावली केन्द्रस्थ बनेगी। ग्रह-अंश, संसर्गप्राप्त जातियों की स्वरावलियों के निर्माण के आधार बनेंगे। इन स्वरावलियों को समवाय-संबन्ध-युक्त बनाने के हेतु न्यास स्वर से उत्थित स्वरावली केन्द्रस्थ बनकर इनके संयोग का नियमन करेगी और इस प्रकार 'न्यास' का नियामकत्व यहाँ भी अक्षुण्ण रहेगा।

प्रत्येक संसर्गज रूप के व्यक्तित्व को बनाये रखते हुए जब एक से अधिक रूपों का संसर्ग करना अभिप्रेत हो, तब आविर्भाव के साथ-साथ तिरोभाव की क्रिया भी आवश्यक होगी, क्योंकि एक रूप के तिरोभाव के बाद ही अन्य रूप का आविर्भाव हो सकेगा। इस आविर्भाव-तिरोभाव की क्रिया के नियमन के लिये किसी निश्चित आधार की आवश्यकता है ही। वही अपेक्षित आधार भरत-कथित न्यास स्वर में उपलब्ध होता है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

मध्यमग्राम की रक्तगान्धारी जाति में गान्धारी, पञ्चमी, मध्यमा ये तीन मध्यमग्राम की और 'नैषादी' षड्जग्राम की, यों चार जातियों का संसर्ग कहा गया है। इस संसर्गज रूप का एक ही न्यास स्वर कहा गया है और वह है मध्यमग्राम का गान्धार। अब न्यास स्वर के अनुसार, मध्यमग्राम के गान्धार से उत्थित स्वरावली को पंचमी, मध्यमा और नैषादी के संसर्ग के लिए आधार बनाया जाए एवं उसी आधार से उन-उन जातियों के आविर्भाव और तिरोभाव की क्रिया की जाए। इस प्रकार रक्तगान्धारी का न्यासस्वर गान्धार उसके संसर्गज रूप का नियामक

* 'प्रायः' का उल्लेख उन अपवादों के कारण किया गया है जिनकी संख्या नगण्य नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसर्गजा जाति का नाम	संसर्गप्राप्त जातियाँ	ग्राम	न्यासस्वर	संसर्गप्राप्त जातियों के अपने-अपने स्वर-रूप के नियामक न्यास स्वर	संसर्गजा जाति के ग्रह-अंश	विशेषोल्लेख
षड्जकैशिकी	षाड्जी, गान्धारी	षड्ज	गान्धार	सा ग	सा, ग, प	ग्रह-अंशों में पंचम का आधिक्य है।
षड्जोदीच्यवा	षाड्जी, गान्धारी धैवती	,,	मध्यम	सा, ग, ध	सा, म, ध, नि	संसर्गप्राप्त गान्धारी जाति के न्यास-स्वर गान्धार को ग्रह-अंशों में स्थान नहीं है, किन्तु, ष ग्राम का निषाद ही म. ग्राम का गान्धार है, इसलिए निषाद को यहाँ म. ग्राम की गान्धारी जाति के न्यास का प्रतिनिधि मान सकते हैं। ग्रह-अंशों के अन्तर्गत मध्यम, षड्जकैशिकी के अपने न्यास स्वर का प्रतिनिधि है।
रक्तगान्धारी	गान्धारी, पञ्चमी, नैषादी, मध्यमा	मध्यम	गान्धार	ग, प, नि, म	(सा)रि,ग,म,(प),नि	पञ्चमी के न्यास स्वर पञ्चम के स्थान पर ग्रह-अंशों में ऋषम क स्थान दिया गया है। षड्जग्राम का 'रि' ही मध्यमग्राम का 'प' है। ग्रह, अंशों में अन्तर्गत 'सा' का आधिक्य है। इसके ग्रह-अंशों के लिए भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न उल्लेख प्राप्त होते हैं। भरत ने 'रिगमपनि', शार्ङ्गदेव और मतंग ने 'सागमपनि' और नान्यदेव ने 'सारिगमनि' कहे हैं। इसीलिए 'सा' और 'प' को कोष्ठक में रखा गया है।
गान्धारोदीच्यवा	षाड्जी, गान्धारी धैवती, मध्यमा	,,	मध्यम	सा, ग, ध, म	सा, म	गान्धारी और धैवती के न्यास स्वर 'ग,ध' को ग्रह-अंशों में कोई स्थान नहीं। षड्जग्राम की षाड्जी का 'सा' और मध्यम ग्राम की मध्यमा का 'म', इन दोनों को ग्रह अंशों में स्थान दे कर संसर्गप्राप्त जातियों के दोनों ग्रामों को ग्रहण कर लिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसर्गजा जाति का नाम	संसर्गप्राप्त जातियाँ	ग्राम	न्यासस्वर	संसर्गप्राप्त जातियों के अपने-अपने स्वर-रूप के नियामक न्यास स्वर	संसर्गजा जाति के ग्रह-अंश	विशेषोल्लेख
मध्यमोदीच्यवा	गान्धारी, पञ्चमी, धैवती, मध्यमा	मध्यम	मध्यम	ग, प, ध, म	प	मध्यमा जाति के न्यास स्वर का प्रतिनिधि 'मध्यमोदीच्यवा' के अपने न्यास स्वर में है, किन्तु गान्धारी और धैवती के न्यास-स्वरों को ग्रह अंशों में कहीं प्रतिनिधित्व नहीं है।
गान्धारपञ्चमी	गान्धारी, पञ्चमी	,,	गान्धार	ग, प	प	गान्धारी के न्यास स्वर गान्धार को गान्धारपञ्चमी के न्यास के रूप में ही स्थान प्राप्त है।
आन्ध्री	गान्धारी, षाड्जी	,,	गान्धार	ग सा	प, रि, ग, नि	षाड्जी के न्यास स्वर षड्ज को ग्रह अंशों में स्थान नहीं है और 'रिप' तथा 'नि' इन तीन ग्रह-अंशों का आधिक्य है।
नन्दयन्ती	गान्धारी, पञ्चमी, आर्षभी	,,	गान्धार	ग, प, रि	ग्रह 'ग,' अंश 'प'	आर्षभी के न्यास स्वर 'रि' को मध्यम-ग्राम के 'प' में प्रतिनिधित्व प्राप्त है।
कार्मारवी	नैषादी, आर्षभी, पञ्चमी	,,	पञ्चम	नि, रि, प	प, रि, नि, ध	ग्रह-अंशों में 'ध' का इस जाति में आधिक्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनता है। इस संसर्गजा जाति में '(सा) रि ग म (प) नि' ये ग्रह अंश कहे गये हैं। इन ग्रह अंश स्वरों से कभी गान्धारी, कभी मध्यमा, कभी पंचमी, और कभी नैषादी जातियों की स्वरावलियों का रक्तगान्धारी के न्यासस्वर से उत्थित केन्द्रीय स्वरावलि के साथ सम्बन्ध जोड़ते हुए आविर्भाव-तिरोभाव की क्रिया की जाए।

यहां पुनरुक्ति की आवश्यकता नहीं है कि इन जातियों के जो शुद्ध रूप हैं उन्हीं का यहां अल्पकालिक आविर्भाव-तिरोभाव होता रहेगा। संसर्गजा जाति के अपने न्यास-स्वर से प्राप्त मूल स्वरावलि इन आविर्भाव-तिरोभाव के बीच-बीच में विराम और संधिस्थल बनकर संसर्गज रूप का नियमन करेगी और केन्द्रीय स्थान ग्रहण करेगी।

ग्रह अंशों के आधिक्य पर विचार

यहां स्मरण रहे कि कुछ संसर्गजा जातियों के ग्रह अंशों में कुछेक स्वरों का आधिक्य है। अर्थात् उन उन संसर्गजा जातियों के अन्तर्गत जिन-जिन शुद्धा जातियों का संसर्ग अभिप्रेत है उनके अपने-अपने न्यास स्वर तो उन-उन संसर्गजा जातियों के ग्रह अंशों में स्थान पाए ही हैं किन्तु उनके अतिरिक्त भी कुछ अधिक ग्रह अंश बताए गये हैं। उदाहरणार्थ रक्तगान्धारी जाति के ग्रह अश '(सा) रे ग म (प) नि' में से षड्ज किसी भी संसर्गप्राप्त जाति का प्रतिनिधि नहीं है। संभव है कि ऐसे अतिरिक्त ग्रह-अंश-स्वर संसर्गजा जाति के केन्द्रस्थ रूप में कुछ वैविध्य लाने के लिये उपयोगी होते होंगे।

संसर्गप्राप्त जातियों के आविर्भाव-तिरोभाव की क्रिया के बीच-बीच में केन्द्रस्थ स्वरावलि का पुनरावर्त्तन होना क्रमप्राप्त है। इस पुनरावर्त्तन में एकरसता (monotony) न आ जाए इस दृष्टि से संभवतः उसमें कुछ वैविध्य लाने के लिये भरत ने कहीं-कहीं ग्रह अंशों का आधिक्य रखा हो। जैसे आज गुणिजन किसी राग का विस्तार करते समय राग में नियमित रूप से प्रयुक्त स्वरों के अतिरिक्त अन्य स्वरों के प्रयोग से या अन्य राग की छाया या आभास दिखाकर नावीन्यपूर्ण चमत्कार की सृष्टि करते हैं, कुछ उसी ढंग की क्रिया संसर्गजा जातियों की केन्द्रीय स्वरावलि में भरत को अभिप्रेत रही होगी और संभवतः इसी लिये उन्होंने कहीं-कहीं एक-आध ग्रह अंश का आधिक्य रखा होगा।

जातियों के समवाय की वीणावादन में प्रत्यक्ष सिद्धि

संसर्गजा जातियों के बारे में 'समवाय' का जो चौथा विकल्प हमने अभी देखा उसे प्रत्यक्ष वीणा-वादन में कैसे प्रयुक्त किया जाए या कैसे किया जा सकता है, इसका स्वल्प स्पष्टीकरण यहां स्थानीय होगा, क्योंकि स्वर-सन्निवेश तथा स्वरान्तरालों की प्रत्यक्ष सिद्धि के लिए वीणा ही प्रामाणिक साधन है।

'सा' 'म' और 'प' ये तीन स्वर tonic (स्वरित) के रूप में परापूर्व से ग्राह्य माने गए हैं।* वीणा पर इन तीन स्वरों की स्थिति कहां है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह उल्लेखनीय है कि वीणा पर बाज के तार को मन्द्र मध्यम अथवा मन्द्र षड्ज अथवा मध्य षड्ज में मिलाने की परम्परा और ग्रन्थस्थ उल्लेख मिलते हैं। बाज के तार को पञ्चम में मिलाने का उल्लेख या परम्परा कहीं नहीं है। बाज के मुक्त तार (मेरु) को मध्यम मानने से सातवां पर्दा षड्ज का स्थान पाता है और यही स्थान भारत के पूर्व, पश्चिम, उत्तर के व्यवहार में मध्य सप्तक का आरंभक है। वीणा पर मतंगोक्त मध्य सप्तक भी यहीं से आरंभ होता है। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि मेरु पर मध्यम मानने से मेरु से दूसरा पर्दा पंचम का स्थान पाता है। मेरु को षड्ज मानने से सातवां पर्दा पंचम बन जाता है। इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम की स्वरावलियां विशिष्ट अन्तरालयुक्त होने से उनका स्थान वीणा पर नियत है, जो अपरिवर्त्तनीय है। वह स्थान है, मेरु से दूसरा पर्दा जिस पर षड्जग्राम का षड्ज तथा मध्यमग्राम का मध्यम स्थित हैं। मेरु से सातवां पर्दा षड्जग्राम का मध्यम बनता है। इस प्रकार मेरु पर 'सा' अथवा 'म', दूसरे पर्दे पर 'सा' (षड्जग्राम) 'म' (मध्यमग्राम) अथवा 'प' (मध्य सप्तक का मन्द्र पञ्चम) तथा सातवें पर्दे पर भी 'स' 'म' 'प' की स्थिति है जो निम्न सारिणी से स्पष्ट होगी।

---

* यहां 'स्वरित' से वेद के 'उदात्त, अनुदात्त, स्वरित' इन तीन स्वरों में जो 'स्वरित' है उससे अभिप्राय नहीं है, अपितु अंग्रेजी के tonic शब्द को ही 'स्वरित' कहा गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरु	मेरु से दूसरा पर्दा	मेरु से सातवाँ पर्दा
	——	पञ्चम
षड्ज	पञ्चम ('मध्यम' सप्तक का मन्द्र पं०)	षड्ज
मध्यम	षड्ज (ष. ग्राम)	मध्यम
——	मध्यम (म. ग्राम)	——
——		

वादन-क्रिया की सुविधा, संवादयुक्त स्वर-सन्निवेश की सुविधा तथा नवीन मूर्च्छना-निर्माण की सुविधा—इन सब दृष्टियों से वीणा पर यही तीन स्थान स्वरित के रूप में ग्राह्य माने गए हैं और वही समुचित भी है। इसीलिये गुणिजनों की क्रिया में अन्य स्वरित का व्यवहार नहीं होता। अन्य स्थानों को स्वरित मानने से क्या असुविधाएँ होती हैं? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि परंपरागत रूप से मिली हुई वीणा पर 'स' 'म' 'प' के अरिरिक्त 'रि' 'ग' 'ध' 'नि' में से किसी स्वर को यदि स्वरित के रूप में स्थापित करना हो तो आवश्यकतानुसार बाज के तार को चढ़ाना या उतारना होगा। किन्तु उससे दो कठिनाइयाँ सामने आएंगी—(१) तरफ़ों वाले वाद्यों में बदले हुए स्वरित के अनुसार तरफ़ों को मिलाना होगा। इससे महफ़िल में रंग-भंग होगा जिस से कोई भी कलाकार सदैव बचना चाहेगा। (२) स्वरित बदलने से जो अनिष्ट अन्तराल आएंगे उन्हें इष्ट बनाने के लिए पर्दे खिसकाने होंगे और यह सारी प्रक्रिया कष्टप्रद, क्लेशकर और रक्तिघ्न होगी। इसी से उपरिकथित 'सा-म-प' को ही स्वरित मानना हर दृष्टि से इष्ट है।

इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि दोनों ग्रामों की मूल स्वरावलियाँ कभी वीणा के मध्य सप्तक में नहीं लाई जा सकती क्योंकि षड्जग्राम का त्रिश्रुति 'रि' तथा त्रिश्रुति 'प' वीणा के संवादसिद्ध स्वर-स्थानों पर मध्य सप्तक में कभी भी प्राप्त नहीं हो सकते। यदि कोई मध्य सप्तक में (यानी मेरु से सातवें पर्दे को षड्ज मान कर) दोनों ग्रामों की मूल स्वरावलियों को स्थापित करने का यत्न करे तो वीणा का बेसुरा हो जाना अवश्यंभावी है जो किसी स्वरज्ञ को, किसी क्रियाकुशल गुणी को स्वीकार नहीं होगा। दोनों ग्रामों की मूल स्वरावलियाँ तो मेरु से दूसरे पर्दे को षड्ज अथवा मध्यम मानने से ही अबाध रूप से प्राप्त हो सकती हैं।

वीणा पर 'सा, म, प' की विभिन्न स्थानों पर स्थिति तथा इन्हीं तीन स्थानों को स्वरित (tonic) मानने की सुविधा और साथ ही उभयग्राम की वीणा पर नियत अथवा अपरिवर्तनीय स्थिति—इन तीनों विषयों पर ऊपर के उल्लेख से जो सिद्धान्त स्थिर हुए तदनुसार जातियों की वादन-विधि निम्नलिखित निरूपण में प्रस्तुत है।

इस प्रसंग में संसर्गजा विकृता जातियों की वादन-विधि के निरूपण के पूर्व शुद्धा जातियों के लिए स्वल्प उल्लेख आवश्यक है।

शुद्धा जातियों की वादन-विधि

शुद्धा जातियों में जहाँ न्यास स्वर ग्रामविशेष की मूल स्वरावली का आरंभस्थान हो वहाँ तो ग्राम की मूल स्वरावली को अक्षत रखने के लिए उस जाति का वादन उसी स्थान को स्वरित मानकर किया जाए जो उस ग्रामविशेष का आरंभक हो। यथा षाड्जी में षड्जग्राम का षड्ज और मध्यमा में मध्यमग्राम का मध्यम न्यास स्वर है। अतः इन दोनों जातियों में वीणा के मन्द्र पञ्चम (मेरु से दूसरे पर्दे) को ही स्वरित मानना समीचीन होगा। यह स्थान मध्य षड्ज की अपेक्षा से मन्द्र पञ्चम है, अतः इससे वादनक्रिया सुविधापूर्वक हो सकेगी और उभयग्राम की मूल स्वरावलियाँ भी अक्षुण्ण रह सकेंगी। दोनों ग्रामों के श्रुत्यन्तरों का अपना विशिष्ट महत्त्व है जिसके कारण उन्हें अविकल बनाए रखना अनिवार्य है। किन्तु आर्षभी, गान्धारी, पञ्चमी, धैवती, और नैषादी—इन जातियों में ग्राम की मौलिक स्वरावली को स्थान नहीं है, अतः उसे अक्षत रखने का कोई प्रश्न नहीं उठता। हम जानते हैं कि प्रत्येक ग्राम की सात मूर्च्छनाओं में से एक ही मूर्च्छना में ग्राम के मौलिक श्रुत्यन्तर प्राप्त होते हैं और अन्य मूर्च्छनाओं में स्वरों के संज्ञाभेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के कारण अन्तराल बदलते रहते हैं। इसीलिये यह कहा है कि षाड्जी और मध्यमा को छोड़कर अन्य शुद्धा जातियों में ग्रामों के मौलिक श्रुत्यन्तर बनाए रखने का प्रश्न नहीं है। अतः इन शेष पांच जातियों के अपने-अपने स्वर से जो मूर्च्छना बने, उससे जो स्वरान्तराल प्राप्त हों उनका वीणा पर प्रत्यक्ष प्रयोग सुविधानुसार 'सा, म, प' में से किसी भी स्थान से किया जा सकता है। यह सत्य है कि क्रियागत सुविधा मध्य सप्तक में ही अधिक होगी, किन्तु फिर भी इच्छानुसार मेरु को अथवा दूसरे पर्दे को स्वरित मानकर वादन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए षड्जग्राम की आर्षभी जाति में ऋषभ की मूर्च्छना से निम्नलिखित स्वरावली प्राप्त होगी :—

रि—ग॒—म—प—ध—नि॒—सा—रि

सा—रि॒—ग॒—म—प—ध॒—नि॒—सां

—२—४—४—३—२—४—३—

इस प्राप्त स्वरावली को मध्य सप्तक में ले आने से अथवा मेरु को अथवा षड्जग्रामिक षड्ज को स्वरित मानकर प्रयुक्त करने से स्वर-संवाद का कहीं भंग नहीं होगा। इस मूर्च्छना में 'सा म' का जो दस श्रुति अन्तराल है, उसके स्थान पर नव श्रुति का संवादी अन्तराल इन तीनों स्थानों से प्राप्त होगा। अतः इस स्वरावली को मेरु से अथवा दूसरे पर्दे से अथवा मध्य षड्ज (सातवें पर्दे) से प्रयुक्त कर सकते हैं। वादन-सुविधा अवश्य ही 'मध्य सप्तक' (सातवें पर्दे से) में अधिक होगी।

संसर्गजा जातियों की वादन-विधि

यह तो हुई शुद्धा जातियों की बात। संसर्गजा जातियों में 'समवाय' का वादन-क्रिया में कैसे उपयोग किया जा सकता है? इस का विवेचन इस प्रकार है। जहां न्यास स्वर ग्राम के आरंभक स्वरसे भिन्न है, अर्थात् षड्जग्राम का षड्ज अथवा मध्यमग्राम का मध्यम नहीं है, वहां न्यास स्वर की मूर्च्छना से प्राप्त स्वरावली को मध्य सप्तक में ला कर केन्द्रीय स्थान देना होगा। जिन जातियों का संसर्ग बताया गया हो, उन जातियों के अपने न्यास स्वर को बारी-बारी से आरंभस्थान मानना होगा अर्थात् उन-उन न्यास स्वरों से उत्थित मूर्च्छनाओं को प्रयोग करना होगा। जब जिस मूर्च्छना का प्रयोग होगा, तब उसी का आरंभस्थान थोड़ी देर के लिए षड्ज का स्थान पा जाएगा और मध्य सप्तक के षड्ज के स्वरित-रूप का तिरोभाव हो जाएगा। उस मूर्च्छना-विशेष का प्रयोग पूरा होते ही पुनः मध्य सप्तक की स्वरावलि में लौट कर मध्य षड्ज को स्वरित का रूप देना होगा। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। षडजकैशिकी में षाड्जी और गान्धारी का संसर्ग कहा गया है। और इसका अपना न्यास स्वर गान्धार कहा गया है। यह जाति षड्जग्राम की है; अतः षड्जग्राम के गान्धार से उत्थित स्वरावली को सर्वप्रथम देख लें।

षड्जग्राम के गान्धार की मूर्च्छना—ग॒-म-प-ध-नि॒-सा-रि-ग॒

गान्धार को षड्ज मानने से प्राप्त स्वरावली— सा–रि–ग–म॒–प–ध–नि–सां

–४–४–३–२–४–३–२–

इसी कल्याण-सदृश स्वरावली को मध्य सप्तक में ला कर उसे उक्त जाति में केन्द्रीय स्थान दे दें। अब षाड्जी जाति के न्यास स्वर षड्जग्राम के षड्ज और गान्धारी जाति के न्यास स्वर मध्यमग्राम के गान्धार को कुछ अवधि तक क्रमशः आरंभस्थान मानते हुए उन-उन स्वरों की मूर्च्छनाओं में कुछ विस्तार कर के पुनः मध्य सप्तक में केन्द्रीय रूप पर लौट आना होगा। हां, जहां संसर्गजा जाति का न्यास स्वर ग्राम का आरंभस्थान हो, जैसे गान्धारोदीच्यवा और मध्यमोदीच्यवा में मध्यम-ग्राम का मध्यम न्यास है, वहां ग्राम की मूल स्वरावली को अक्षत रखने के लिए उसे मध्य सप्तक में लाए बिना ही उसी मूल आरंभस्थान से उत्थित स्वरावली को केन्द्रीय स्थान देना होगा। साथ ही जिन-जिन जातियों का संसर्ग कहा गया हो उन के न्यास स्वर के अनुसार उन का क्रमशः प्रयोग करना होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षड्जमध्यमा तथा कैशिकी ये दो ऐसी संसर्गजा जातियाँ हैं जिनमें एक से अधिक न्यास स्वर बताए गए हैं।

एकाधिक न्यास वाली दो संसर्गजा जातियाँ

षड्जमध्यमा में 'सा म' ये दो न्यास हैं और कैशिकी में 'ग नि' और क्वचित् 'प' भी, ये तीन न्यास हैं। इसीलिए इन पर पृथक् रूप से विचार करना आवश्यक समझा गया है। इन दोनों का अन्य संसर्गजा जातियों की अपेक्षा वैशिष्ट्य है, क्योंकि एक षड्जमध्यमा) सर्वरसाश्रया है और दूसरी (कैशिकी) में पाँच जातियों का संसर्ग है। ये दोनों विशेषताएँ अन्य किसी संसर्गजा जाति में नहीं हैं।

षड्जमध्यमा में षड्जग्राम की षाड्जी और मध्यमग्राम की मध्यमा—इन दो ही जातियों का संसर्ग है। ये दोनों जातियाँ क्रमशः षड्जग्राम और मध्यमग्राम की मूल स्वरावलियों की प्रतिनिधि हैं। यह जाति सर्वरसाश्रया होने से इसमें उभयग्रामिक मूल स्वरावली का एकत्र समावेश रससिद्धि के लिए आवश्यक है। इसीलिए षड्जग्राम के षड्ज और मध्यमग्राम के मध्यम—इन दोनों का इसमें न्यासत्व रखा गया है। ये दोनों स्वर वीणा के एक ही स्थान अर्थात् मेरु से दूसरे पर्दे पर स्थित हैं। ध्यान रहे कि इस जाति में उभय स्वर-साधारण का प्रयोग विहित है और सातों स्वरों को इसमें ग्रहअंश का स्थान दिया गया है। ये सातों स्वर उभयग्रामिक समझने चाहिए, क्योंकि यद्यपि संभवतः नामाभिधान में 'षड्ज' का प्रथम स्थान होने से, षड्जमध्यमा को षड्जग्राम की संसर्गजा जातियों में समाविष्ट किया गया है, तथापि यह पूर्णरूप से उभयग्राम का संश्लिष्ट रूप है। यह संश्लेष उभयग्राम के मूल स्वर षड्ज और मध्यम के न्यासत्व से स्पष्ट है।

कैशिकी में षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, पञ्चमी, और नैषादी—इन पाँच जातियों का संसर्ग है। तथा ग्रह-अंश 'सा' 'ग' 'म' 'प' 'ध' 'नि' कहे हैं; और धैवत के अंशत्व के कारण इसका रस बीभत्स-भयानक बताया गया है। इसके न्यास गान्धार-निषाद बताकर भरत ने यह कहा है कि क्वचित् पञ्चम भी इसमें न्यास बनता है। हम जानते हैं कि षड्जग्राम का निषाद और मध्यमग्राम का गान्धार वीणा के एक ही स्थान पर अर्थात् मेरु पर स्थित हैं। अतः गान्धार-निषाद को न्यासत्व देने से उभयग्रामिक प्रतिघोष के अतिरिक्त वास्तव में 'न्यास' का द्वित्व नहीं है। पंचम को 'क्वचित् न्यास' कहने के पीछे कदाचित् भरत की रस-दृष्टि रही हो।

संसर्गजा जातियों के 'समवाय' या संयोग या 'संसर्ग' का स्वर-दृष्टि से क्या तात्पर्य है, यह हमने ऊपर विभिन्न विकल्पों में देखा। अब भाव-दृष्टि से इस विषय का कुछ विवेचन आवश्यक है। इस संबन्ध में सर्वप्रथम यह स्मरण रखना चाहिए कि 'जाति' का निरूपण नाट्य के प्रसंग में ही हुआ है अर्थात् नाट्योपयोगी संगीत-प्रयोग की दृष्टि से ही 'जाति' के निरूपण में रखी गई है। भरत ने जातियों के रसों का जो उल्लेख किया है, उसे हम कुछ आगे चलकर देखेंगे। यहाँ इतना ही उल्लेखनीय है कि नाट्यगत संगीत-प्रयोग के संदर्भ में 'जाति' पर विचार करने से ससर्गजा जातियों की 'समवाय-विधि' अधिक स्पष्ट हो जाएगी।*

भाव-दृष्टि से संसर्गजा जातियों का दर्शन

हम जानते हैं कि किसी भी नाट्य-प्रयोग में केवल एक ही रस या भाव का निरन्तर अस्तित्व नहीं रहता। यहाँ तक कि एक दृश्य या 'प्रेक्षणक' में भी बहुत त्वरित गति से भावों का परिवर्तन होता रहता है। विभिन्न स्थायि भावों की पुष्टि के लिए संचारि-भावों का आवागमन भी बना रहता है। इस प्रतिक्षण बदलती हुई भाव-भूमिका के अनुरूप जब गीत या वाद्य या कुतप-प्रयोग करना अभीप्सित हो तब एक ही स्वरावलि के सतत प्रयोग से अभीष्ट-सिद्धि नहीं हो सकती, यह स्पष्ट ही है। बदलती हुई भाव-परिस्थिति के साथ संगति बिठाने के लिए, संगीत प्रयोग में भी तदनुकूल परिवर्तन आवश्यक होते हैं। इन परिवर्तनों को एक नियमित स्वरूप देने के लिए भरत ने विभिन्न शुद्धा जातियों के समवाय से संसर्गजा जातियों का निर्माण किया होगा ऐसा कहने में कोई प्रत्यवाय नहीं है।

---

* आजकल शास्त्रीय संगीत की महफ़िलें, कान्फ्रेंस और जलसे जिस प्रकार होते हैं उनका नाट्य से स्वतन्त्र या पृथक् रूप है। इस प्रकार के आयाजनों में आज शास्त्रीय संगीत जिस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है, उस से नाट्यगत 'जाति'-संगीत भिन्न है। इसलिए भरतोक्त 'जाति' को हमें नाट्य की भाव-दृष्टि के अन्तर्गत समझना समीचीन होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक जाति के अपने रूप के अतिरिक्त अन्य जिस या जिन जातियों का उस एक ही जाति-विशेष में समवाय-रूप दर्शन अभिप्रेत हो, उन-उन जातियों के न्यास-स्वर से उद्भूत स्वरावलियां नाट्य के रसभाव-परिवर्तन के अनुकूल प्रयोग में लाई जाएं, अर्थात् उनका यथाभाव, यथानाट्यप्रसंग, यथारस उपयोग किया जाए और पुनः संसर्गजा जातिके अपने न्यास स्वर से प्राप्त स्वरावलि पर आकर उस प्रयोग-विशेष को पूर्ण किया जाए। उदाहरण के लिए षाड्जी जाति का रूप उसके न्यास-स्वर से दिखाते हुए जहां अन्य भाव के परिवर्तन की नाट्य में आवश्यकता प्रतीत हो, तदनुसार गान्धारी या धैवती, मध्यमा, पञ्चमी जो कुछ अन्य जातियां उस संसर्गज रूप में बताई गई हों, उनका यथास्थान, यथा-भाव विनियोग करना यही भरतमुनि का संसर्गजा जातियां बताने का आशय हो सकता है।

जैसे काव्य-क्षेत्र में स्थायिभाव की स्थिर रखते हुए, (क्योंकि वह 'स्थायी' है) संचारि-भावों में संचरण किया जाता है और एक से अधिक संचारि-भावों में सञ्चरण करते हुए पुनः मूल स्थायि-भाव पर लौट आते हैं, तद्वत् एक संसर्गजा जातिके अपने न्यास स्वर से उत्थित स्थायी स्वरावली में अन्य संसर्गप्राप्त जातियों की स्वरावली द्वारा संचरण करते हुए भिन्न २ भावाभिव्यक्ति के साथ पुनः स्थायी स्वरावली द्वारा स्थायिभाव की पुष्टि करना भरत को अभिप्रेत रहा होगा।

ऊपर तीसरे और चौथे विकल्प में हमने 'समवाय' विधि पर जो विचार किया उसके साथ इस रस-दृष्टि का सामंजस्य इस प्रकार स्थापित किया जा सकता है कि संसर्गजा जाति के केन्द्रीय-रूप को प्रस्तुत स्थायिभाव का अभिव्यञ्जक समझा जाए और अन्य संसर्गप्राप्त रूपों को सञ्चारिभावों के अभिव्यञ्जक माना जाए। अर्थात् इन संसर्गजा जातियां द्वारा एक केन्द्रीय स्थायिभाव की परिधि में अनेक सञ्चारिभावों की अभिव्यक्ति संभव है। जब स्थायी (केन्द्रीय) स्वरावली का तिरोभाव कर के किसी अंगभूत स्वरावली द्वारा किसी सञ्चारिभाव की अभिव्यक्ति की जाएगी तब केन्द्र से परिधि की ओर गति समझी जाए और जब पुनः केन्द्रीय स्वरावली में लौटेंगे तब परिधि से केन्द्र की ओर गति समझनी चाहिए। इस प्रकार संसर्गजा जातियों द्वारा नाट्य के क्षण क्षण बदलते हुए भावों का स्वर-चित्रण भी संभव होता है और पुनः-पुनः केन्द्रीय रूप पर लौट कर स्थायिभाव का समुचित परिपोष भी सिद्ध होता है। साथ ही रसों के युग्मों की अभिव्यक्ति भी संभव समझी जा सकती है, यथा—एक ओर रौद्र तो दूसरी ओर करुण, एक ओर वीर तो दूसरी ओर अद्भुत, एक ओर बीभत्स तो दूसरी ओर भयानक, एक ओर शृंगार तो दूसरी ओर हास्य।* अस्तु।

जातियों के संसर्गज रूपों की इयत्ता

संसर्गजा जातियों में नाट्य—अन्तर्गत रस भाव की दृष्टि से विभिन्न शुद्धा जातियों का 'संसर्ग' या समवाय कहा गया है, यह विचार-सरणी ग्राह्य होने पर भी कुछ प्रश्न अवश्य उद्भूत होते हैं। यथा—इन संसर्गज रूपों के निर्माण में क्या नियम रहा होगा? किस नियम के आधार पर इतने ही संसर्गज रूप बनाए गए? कम या अधिक क्यों नहीं बनाए? अमुक-अमुक जातियों का ही संयोग क्यों किया गया? अन्यों का क्यों नहीं किया गया?—इत्यादि। उदाहरण के लिए षाड्जी के साथ गन्धारी या धैवती का ही संयोग क्यों, अन्य किसी का क्यों नहीं? इत्यादि। ग्रन्थकारों ने तो केवल इतना ही उल्लेख किया है कि अमुक-अमुक जातियों के संयोग या संसर्ग से अमुक-अमुक संसर्गज रूप निष्पन्न होते हैं। ऐसे संसर्गज रूप एकादश ही माने हैं और इतने में ही संसर्ग की मर्यादा बांध दी है। इस मर्यादा के कारण का कहीं कोई स्पष्टीकरण नहीं है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि इतने ही समवायी रूपों का निर्माण क्यों किया गया? कम या अधिक का क्यों नहीं? इसका कहीं कोई उत्तर प्राप्त नहीं है। किन्तु उपर्युक्त विचार-सरणी के अनुसार 'जाति' के संगीत को नाट्य प्रयोग में रस-भाव का पोषक तत्त्व मानने पर यह कहा जा सकता है कि नाट्यानुकूल रस-भाव की अभिव्यक्ति के लिए इतने ही समवायी रूपों का विनियोग आवश्यक और पर्याप्त समझा गया होगा।

---

*भरत ने रसों के इन युग्मों का प्रतिपादन नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संसर्गजा जातियों के समवायी रूपों की रचना के बारे में जो योजनाएं हो सकती हैं, उनमें से दो योजना हम ऊपर तीसरे-चौथे विकल्प में कह आए हैं, तीसरी योजना निम्नोक्त है—

'कुतप'-योजना में जातियों के समवायी रूप— पांचवां विकल्प

रंगभूमि के रङ्ग को उज्ज्वल बनाने के लिए भरतमुनि ने कुतप की योजना का निदर्शन किया है। कुतप 'कुः' नाम रङ्गो-नाट्यभूमिर्वा; तपो नाम (तं) तपति उज्ज्वलयतीति कुतपः, अर्थात् "रङ्गं तपति उज्ज्वलयति इति कुतपः"। वैणिक, वंशवादक, मार्दङ्गिक, पाणविक, वैपञ्चिक आदिक तत, अवनद्ध, घन और सुषिर वाद्य-वादकों के समूह का कुतप-विन्यास नाट्य में प्रयुक्त होता था, जिसे आज हम स्थूलमान से वृन्द-वादन का रूप समझ सकते हैं; तद्वत् स्त्री-पुरुषों का वृन्द-गान भी होता था जिसके साथ वाद्यों की संगत होती थी। उसी प्रकार कण्ठ के भिन्न-भिन्न प्रकार के गुण धर्म (Tonal quality) वाले, भिन्न-भिन्न व्याप्ति (Range) वाले तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की भावाभिव्यक्ति की सामर्थ्यवाले स्त्री-पुरुष चाहे वे मयूर कंठी हों, कोकिल कंठी हों, चातक कंठी हों, क्रौञ्च कंठी हों, या दादुर कंठी हों—इन सब विभिन्न कण्ठों का वाद्य-समूह की संगत के साथ नाट्य की भावाभिव्यक्ति के लिए यथास्थान, यथारस विनियोग करते समय इन संसर्गजा जातियों का उपयोग होता होगा। आज विश्व की नाट्यभूमि को देखते हुए यह कहने में कोई बाधा नहीं है कि नाट्य के अन्तर्गत भावानुकूल संगीत प्रयोग में वाद्य-वृन्द तथा भिन्न गुण-धर्म के कण्ठ आदि का समूहगत उपयोग जाति-गान में होता ही होगा।

भरत की कही हुई संसर्गजा जातियों के समवायी या संयोगी रूप अथवा ग्रुपिङ्ग (Grouping) को देखते हुए उपर्युक्त अनुमान पुष्ट होता है।

मान लें कि किसी नाट्यप्रेक्षण में किसी रस-विशेष के प्रकाशनार्थ किसी विशेष संसर्गजा जाति का गान करना है। ऐसे अवसर पर उस जाति के न्यास स्वर से उत्थित स्वरावलि को स्थायिभाव के निदर्शन के लिए प्रतिष्ठित किया जाए। उसके लिए विशेष प्रकार के कण्ठों का और वाद्य-समूहों का कुतप-प्रयोग किया जाए और उसी प्रेक्षण में विभिन्न संचारि-भावों के सञ्चार की अभिव्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न ग्रह-अंशादि स्वरों से उत्थित उन-उन संसर्गप्राप्त जातियों की उन-उन स्वरों से कुतप-सहित गान-क्रिया की जाए। स्थायि-भाव के गायक-समूह का गान समाप्त होते ही कुछ समय मौन सेवन किया जाए अथवा उस संसर्गजा जातिविशेष के अन्तर्गत जिन-जिन जातियों का संसर्ग कहा गया है, उनमें से जिस भी जाति का ग्रहण क्रमप्राप्त हो, उसको स्वरावलि का वाद्यों में भूमिका के रूप में गुञ्जन किया जाए। उसके पश्चात् भिन्न कण्ठवाले गायक-समूह उसकी स्वरावलि में कुतप सहित गान करें और इस क्रम से भिन्न-भिन्न स्वरावलियों में भिन्न-भिन्न सञ्चारिभावों का निदर्शन करते हुए बीच-बीच में जहां-जहां रसानुकूल प्रतीत हो, वहां-वहां स्थायी स्वरावलि पुनः प्रयुक्त की जाए।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हुआ होगा कि भरत-प्रतिपादित संसर्गजा जातियां नाट्य-प्रसंग में रस-भावाभिव्यक्ति के लिए कैसे व्यवहृत होती होंगी। आज के नाट्य-संगीत, सिने-संगीत, कुतप-विन्यास, वृन्द-वादन, नृत्य-नाट्य (बैले), गीति-नाट्य (ऑपरा) आदि को देखते हैं और साथ ही भरतोक्त नाट्यशास्त्रान्तर्गत जिन-जिन विषयों का उल्लेख हुआ है, उनका अध्ययन करते हैं तो कम से कम दो हजार वर्ष पूर्व लिखे गये, खेले गये और प्रयुक्त किये गये शास्त्र, नाट्य और संगीत कितने विकसित और उच्च भूमिका पर स्थित थे, इसका अनुमान लगा सकते हैं।

जातिगत रसप्रकरण

भरत नाट्यशास्त्र में उल्लिखित जातियों को हमने विभिन्न दृष्टियों से देखा और उन को किस प्रकार प्रत्यक्ष प्रयोग में लाया जा सकता है, इसका भी सोदाहरण विशद स्पष्टीकरण किया। अब इस प्रकरण में एक ही विषय अवशिष्ट है और वह है जातियों के सम्बन्ध में भरत की रस-दृष्टि। इस सम्बन्ध में भरत के वचन निम्नोद्धृत हैं। चौखम्बा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी तथा निर्णयसागर, बम्बई से प्रकाशित नाट्यशास्त्र के संस्करणों के पाठ हम एक साथ दे रहे हैं, जिससे पाठकों को पाठभेद स्पष्ट गोचर हो सके। भरत के वचनों के उद्धरण के पश्चात् एक तालिका में सभी जातियों का भरतोक्त रस-दर्शन प्रस्तुत कर दिया गया है।

चौखम्भा (बनारस) संस्करण

षड्जोदीच्यवती चैव षड्जमध्या तथैव (च)।
षड्जमध्यमबाहुल्यात् कार्यं शृंगारहास्ययोः ॥१॥

आर्षभी चैव षाड्जी च षड्जर्षभग्रहस्वरात् ।
वीराद्भुते च रौद्रे च निषादाङ्ग (दांश) परिग्रहात् ॥२॥

गान्धार्यंशोपपत्त्या च करुणे षड्जकैशिकी ।
धैवती धैवतांशा च बीभत्से सभयानके ॥३॥

ध्रुवाविधाने कर्त्तव्या जातिगाने प्रयत्नतः ।
रसं कार्यमवस्थां च ज्ञात्वा योज्याः प्रयोक्तृभिः ॥४॥

षड्जग्रामाश्रिता ह्येता विज्ञेया जातयो बुधैः ।
अतःपरं प्रवक्ष्यामि मध्यग्रामसमाश्रयाः ॥५॥

गान्धारीरक्तगान्धार्योर्गान्धारांशोपपत्तितः ।
करुणे तु रसे कार्यो जातिगाने प्रयोक्तृभिः ॥६॥

मध्यमा पञ्चमी चैव नन्दयन्ती तथैव च ।
मध्यपञ्चमबाहुल्यात् कार्यं शृंगारहास्ययोः ॥७॥

मध्यमोदीच्यवा चैव गान्धारोदीच्यवा तथा ।
षड्जर्षभांशनिष्पत्त्या कर्त्तव्या वीररौद्रयोः ॥८॥

कार्मारवी तथा चान्ध्री निषादांशोपपत्तितः ।
अद्भुते तु रसे कार्ये जातिगाने प्रयोक्तृभिः ॥९॥

कैशिकी धैवतांशा स्यात् तथा गान्धारपंचमी ।
प्रयोक्तव्या बुधैः सम्यक् बीभत्से सभयानके ॥१०॥

एकैव षड्जमध्या ज्ञेया सर्वरससंश्रया जातिः ।
तस्या ह्यंशाः सर्वे स्वरास्तु विहिता प्रयोगविधौ ॥११॥

(ना० शा० २९।१-११)

निर्णयसागर (बम्बई) संस्करण

षड्जोदीच्यकरं चैव बहु (षड्ज) मध्यं तथैव च ।
मध्यपञ्चमबाहुल्यात्कार्यं शृंगारहास्ययोः ॥१॥

षाड्जी त्वथार्षभी चैव स्वरांशपरितस्वृहात् ।
वीररौद्राद्भुतेष्वेते प्रयोज्यो (ज्या) गानयोक्तृभिः ॥२॥

निषादं (दां) शे च (च) नैषादी गान्धारो (री) षड्जकैशिकी ।
करुणे च रसे कार्या जातिर्गानविशारदैः ॥३॥

धैवती धैवतांशे तु बीभत्से सभयानके ।
धैवती करुणे योज्या चोन्मादे (?) षड्जमध्यमा ॥४॥

ध्रुवाविधाने कर्त्तव्या जातिगाने प्रयत्नतः ।
षड्जग्रामाश्रिता ह्येताः प्रयोज्या जातयो बुधैः ॥५॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि मध्यमग्रामसंश्रयाः ।
गान्धारीरक्तगान्धार्यौ गान्धारांशोपपत्तितः ॥६॥

करुणे तु रसे कार्ये निषादेंऽशे तथैव च ।
मध्यमा पंचमी चैव नन्दयन्ती तथैव च ॥७॥

गान्धारपंचमी चैव मध्योदीच्यवती तथा ।
मध्यपंचमबाहुल्यात्कार्यो (र्याः) शृंगारहास्ययोः ॥८॥

कार्मारवी तथा चान्ध्री गान्धारोदीच्यवा तथा ।
वीररौद्रेऽद्भुते कार्या षड्जर्षभांशयोजिता ॥९॥

कैशिकी धैवतांशा स्याद्बीभत्से सभयानके ।
एकैव षड्जमध्या ज्ञेया सर्वरससंश्रया जातिः ।
तस्यास्त्वंशाः सर्वे स्वरा (:) सुविज्ञेया (स्तु विहिता)
प्रयोगविधौ ॥१०॥ (ना० शा० २९।१-१०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाति-नाम	ग्रह-अंश	रस	रस-निर्धारण का आधार	विशेषोल्लेख
१. षाड्जी	सा, म, ग, ध	वीर, अद्भुत, रौद्र	षड्ज, ग्रह-अंश	
२. आर्षभी	रि, नि, ध	,,	ऋषभ ,,	
३. गान्धारी	सा, ग, म, प, नि	करुण	गान्धार अंश	
४. मध्यमा	सा, रि, म, प, ध	शृङ्गार, हास्य	मध्यम का वाहुल्य	
५. पञ्चमी	रि, प (ध)	,,	पञ्चम ,,	
६. धैवती	रि, ध	बीभत्स, भयानक	धैवत अंश	
७. नैषादी	नि, रि, ग	करुण	निषाद अंश	
८. षड्जोदीच्यवती	सा, म, नि, ध	शृङ्गार, हास्य	षड्ज, मध्यम अथवा मध्यम, पंचम वाहुल्य	
९. षड्जकैशिकी	सा, ग, प	करुण	गान्धार-निषाद अंश	ग्रह अंशों में निषाद नहीं है।
१०. षड्जमध्यमा	सप्त स्वर	शृङ्गार, हास्य, सर्वरस	षड्जमध्यम-वाहुल्यअथवाम-ध्यम-पंचमवाहुल्य, सप्तस्वरअंश	
११. रक्तगान्धारी	(सा), रि ग म (प), नि	करुण	गान्धार अंश	
१२. नन्दयन्ती	ग, प	शृङ्गार, हास्य	मध्यम-पञ्चम वाहुल्य	ग्रह अंशों में मध्यम नहीं है।
१३. मध्यमोदीच्यवा	प (सा, म)	,,	,,	
१४. गान्धारोदीच्यवा	सा, म (प ?)	वीर, रौद्र अद्भुत	षड्ज-ऋषभ अंश	ग्रह अंशों में ऋषभ नहीं है।
१५. कार्मारवी	(म) प, रि, नि ध	अद्भुत	निषादांश (?)	निषाद का करुण रस से संबंध स्थापित है, उससे अद्भुत रस कैसे ?
१६. आन्ध्री	प, रि, ग, नि	,,	,,	,,
१७. गान्धारपञ्चमी	प	बीभत्स, भयानक	धैवतांश	ग्रह-अंशों में धैवत नहीं है।
१८. कैशिकी	सा, ग, म, प, ध, नि,	,,	,,	

भरत ने जातियों के रस निर्धारित करने के लिए जो आधारभूत सिद्धान्त स्वीकार किया है, वह उनके निम्नोद्धृत वचन में प्रतिपादित है :—

यो यदा वलवान् यस्मिन् स्वरो जातिसमाश्रयात् ।
तत्प्रयुक्ते रसे गानं कार्यं गेये प्रयोक्तृभिः ॥

(ना. शा. २९।१२)

अर्थात् जव जिस जाति में जो स्वर वलवान् हो, तव प्रयोक्ताओं को उसी स्वर के अनुरूप रस में गायन करना चाहिए ।

भरत ने भिन्न-भिन्न स्वरों के वाहुल्य को भिन्न-भिन्न रसों की अभिव्यक्ति का कारण माना है । यथा :—

मध्यमपञ्चमभूयिष्ठं हास्यशृङ्गारयोर्भवेत् ।
षड्जर्षभप्रायकृतं वीररौद्राद्भुतेषु च ॥
गान्धारसप्तमप्रायं करुणे गानमिष्यते ।
तथा धैवतभूयिष्ठं बीभत्से सभयानके ॥ (ना. शा. २९।१३-१४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् मध्यम-पञ्चम का बाहुल्य हास्य-शृङ्गार में, षड्ज-ऋषभ का बाहुल्य वीर-रौद्र-अद्भुत में, गान्धार-निषाद का बाहुल्य करुण में और धैवत का बाहुल्य वीभत्स-भयानक में उपयोगी होता है।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि गायन में रसाविर्भाव या भावाभिव्यक्ति मुख्यतः निम्नोक्त बातों पर अवलम्बित रहती है—पारस्परिक स्वरान्तर, (frequency) संवादान्तर, अनुवादान्तर, विवादान्तर, सप्तकान्तर, स्वर-संगति, काक्वादि उच्चार-भेद, स्वरों पर अल्प-अधिक ठहराव, विलम्बित-मध्य-द्रुत गति, गमकभेद इत्यादि। भरत ने काकुस्वर-व्यञ्जन शीर्षक उन्नीसवें अध्याय में पाठ्यविधि के प्रकरण में इसी विषय की विशद चर्चा की है।✲ 'पाठ्य' के लिए जो भी विधान हैं, वे सभी 'गीत' को भी लागू होते हैं, क्योंकि पाठ्य और गीत में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। यद्यपि जातियों के प्रसंग में केवल एक या दो स्वरों के बाहुल्य के आधार पर ही रस-निर्धारण किया गया है, तथापि 'पाठ्य-विधि' के अन्तर्गत जिन सब तत्त्वों पर विचार किया गया है, उन सबकी दृष्टि से भी जातियों का भाव-पक्ष अथवा उनसे होनेवाली रस-निष्पत्ति सूक्ष्म रूप से विचारणीय है। यह विषय अत्यन्त गहन तथा मार्मिक चिन्तन की अपेक्षा रखता है। स्थूल दृष्टि से यह जितना सुगम जान पड़ता है, वास्तव में उससे कहीं अधिक दुर्गम, गूढ़, सूक्ष्म तथा समस्या-संकुल है।

उदाहरणार्थ सात शुद्धा जातियों में से प्रथम षाड्जी और आर्षभी के भरत-कथित रसों पर विचार करें। इन दोनों जातियों में वीर, अद्भुत, रौद्र—ये तीन रस कहे गए हैं। षड्ज और ऋषभ इन दो स्वरों को भरत ने इन तीन रसों के वाहक माना है और इन्हीं दोनों के बाहुल्य के आधार पर क्रमशः षाड्जी और आर्षभी में इन तीनों रसों की अभिव्यक्ति बताई है। इन जातियों के स्वर-रूप के साथ इनके रसों का समन्वय स्थापित करने के उद्देश्य से जब विचार करते हैं, तब कुछ प्रश्न उद्भूत होते हैं जो निम्नोक्त हैं :—

(१) षाड्जी में षड्ज ही ग्रह, अंश और न्यास है यानी हर पहलू से षड्ज इस जाति का बलवान् स्वर है। किन्तु क्या षाड्जी के इस षड्ज को ग्रहत्व, अंशत्व और न्यासत्व देने मात्र से अथवा इसके अधिक बार प्रयोग मात्र से वीराद्भुतरौद्र रसों की निष्पत्ति हो सकेगी ?

(२) षाड्जी की स्वरावली इस प्रकार है— सा – रि – ग् – म – प – ध – नि् – सां। इसमें त्रिश्रुति
३ २ ४ ४ ३ २ ४

ऋषभ और पंचश्रुति गान्धार, तद्वत् त्रिश्रुति धैवत और पंचश्रुति निषाद प्रयुक्त होते हैं। षाड्जी के इन स्वरान्तरालों से क्या वीर, अद्भुत, रौद्र, रसों का आविर्भाव हो सकेगा ?

(३) षाड्जी की मूर्च्छना उसके ग्रह से, अंश से अथवा न्यास से —कहीं से भी उत्थित हो—इन तीनों अवस्थाओं में षड्जग्राम के षड्ज ही से आरम्भ करना होगा और वही स्वरावली निष्पन्न होगी जो ऊपर दिखाई गई है। जिस स्वरावली में ऐसे अन्तराल समाविष्ट हैं जिन्हें हम ऊपर देख चुके हैं, उससे वांछित रस-सिद्धि हो सकेगी क्या ?

षाड्जी जैसी ही स्थिति आर्षभी की भी है। आर्षभी की मूर्च्छना ग्रह, अंश और न्यास की दृष्टि से ऋषभ से ही उठाई जाए तो निम्नलिखित भैरवी-सदृश रूप निष्पन्न होता है :—

ऋषभ की मूर्च्छना—रि—ग्—म—प—ध—नि्—सां—रिं
सा--रि्--ग्--म--प—ध्--नि्--सां
—२—४—४—३—२—४—३—

क्या आर्षभी की इस भैरवी-सदृश स्वरावली से उपर्युक्त रस निष्पन्न हो सकेंगे ? यहां स्वानुभव का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। इंग्लैण्ड से लेकर रशिया तक जहां-जहां भैरवी को प्रस्तुत करने का अवसर आया, वहां-वहां गीत

✲ द्रष्टव्य संगीताञ्जलि तृतीय भाग—भूमिका पृ० ६—९.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की भाषा से अनभिज्ञ, उसके शब्दार्थ से अनजान जनता केवल उस विशिष्ट स्वर-संयोग के श्रवण द्वारा करुणरस की अनुभूति पाती थी और तदनुसार जनसमूह और समालोचक (Critics) पूछते थे--"क्या यह स्वरावली विरह, शोक या करुणा की द्योतक है ?"

आर्षभी की इस भैरवी-सदृश स्वरावली में काक्वादि और गमकादि भेद प्रयुक्त करने पर भी वीराद्भुत-रौद्र रसों की निष्पत्ति संभव है क्या ? ऐसी अवस्था में आर्षभी तथा षाड्जी के स्वरों के साथ उनके रसों का संबन्ध कैसे स्थापित किया जाए ? जिन दो स्वरों का बाहुल्य बताया गया है, इन स्वरों को ग्राम के मूल स्वर समझें अथवा मूर्च्छना में प्राप्त स्वर समझें, दोनों प्रकार से उपर्युक्त समस्या बनी ही रहती है। षाड्जी का षड्ज तो षड्जग्राम का मूल स्वर है ही। आर्षभी में ऋषभ को यदि षड्जग्रामिक मूल स्वरावली में से ग्रहण किया जाए तो वही ऋषभ यहां षड्ज का स्थान पा जाएगा। यदि षड्ज-ग्रामिक मूल ऋषभ की मूर्च्छना में प्राप्त ऋषभ का ग्रहण करें तो वह भी द्विश्रुति-अन्तरालयुक्त कोमल ऋषभ होने से वांछित रस-निष्पत्ति में सहायक कैसे होगा ?

जो प्रश्न षाड्जी और आर्षभी के सम्बन्ध में ऊपर उल्लिखित हैं, वैसे ही प्रश्न प्रायः सभी शुद्धा जातियों के साथ जुड़े हुए हैं। उदाहरणार्थ गान्धारी के ग्रह, अंश, न्यास स्वर गान्धार से उत्थित स्वरावली कल्याण-सदृश है। उससे करुण रस की उत्पत्ति कैसे होगी ?

उपर्युक्त प्रश्नों के अतिरिक्त एक अन्य समस्या भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। शुद्धा जातियों के रस उनके नामस्वरों पर से निर्धारित किए गए हैं। यह सत्य है कि नामस्वर ही शुद्धा जातियों में ग्रह-अंश न्यास होता है। किन्तु प्रत्येक शुद्धा जाति में जो एकाधिक ग्रह-अंश स्वर कहे हैं, उनके विनियोग से जब शुद्धाओं के विकृत भेद उपजाए जाएँगे तब रस की स्थिति किस प्रकार समझी जाएगी ? तब क्या नाम-स्वर के स्थान पर जिस-जिस स्वर का जब-जब ग्रह-अंश के रूप में ग्रहण हो, उस-उस स्वर के अनुसार रस-निर्धारण करना होगा ? जहाँ जिस जाति में जो ग्रह-अंश हों, क्या केवल उनके बाहुल्य-मात्र से रस-निष्पत्ति हो सकेगी ?

शुद्धा जातियों के रसों के सम्बन्ध में जो उलझनें हमने ऊपर कहीं, उन से कहीं अधिक उलझनें संसर्गजा विकृता जातियों में हैं। ऊपर पृ० ६० पर दी गई सारिणी से यह स्पष्ट हुआ होगा कि कुछ संसर्गजा जातियों के ग्रह-अंश स्वरों से भिन्न स्वरों का बाहुल्य बताकर उनका रस-निर्धारण किया गया है। यथा--गान्धारोदीच्यवा के ग्रह-अंश तो 'सा-म' हैं, किन्तु, उसका रस बताते समय 'सा-रि' का अंशत्व कह कर वीर, रौद्र अद्भुत रसों के लिए उसे उपयोगी ठहराया गया है। साथ ही संसर्गजा विकृता जातियों के एकाधिक ग्रह-अंशों का उनकी रस-निष्पत्ति में कैसा और कितना योगदान समझा जाए ? यह प्रश्न भी विचारणीय है।

उदाहरण के लिए कैशिकी जाति में 'सा, ग, म, प, ध, नि'--ये छः स्वर अंश कहे गए हैं; किन्तु, उसके रस-निर्धारण के प्रसंग में केवल 'धैवतांश' कह कर बीभत्स-भयानक रस कह दिए गए हैं। ऐसी अवस्था में शेष पाँच अंश स्वरों का उक्त जाति की रस-निष्पत्ति में क्या स्थान होगा ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए हमने जो प्रामाणिक यत्न किए, उनके उदाहरण-स्वरूप षड्जकैशिकी और गान्धारोदीच्यवा—इन दो जातियों का रस-दृष्टि से विस्तृत विवेचन नीचे प्रस्तुत है।

१. षड्जकैशिकी :—षड्जकैशिकी में षड्जग्राम की षाड्जी और मध्यमग्राम की गान्धारी—इन दो जातियों का संसर्ग कहा गया है और उसका न्यास स्वर गान्धार स्थिर किया गया है। यह संसर्गजा जाति षड्जग्राम की है। अतः षड्जग्राम के ही गान्धार को इसमें न्यास स्वर मानना होगा।

षड्जकैशिकी को करुणरसाश्रया कहा है और संभवतः इसीलिए करुणरसवाही गान्धार को न्यासत्व दिया गया है। इसके ग्रह अंश के रूप में सा, ग, प बताए गए हैं। इस संसर्गजा जाति में षाड्जी और गान्धारी इन दो जातियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का संसर्ग किए जाने पर भी ग्रह-अंशों के रूप में तीन स्वरों (सा, ग, प) को स्थान दिया गया है। प्रतीत होता है कि इसके पीछे ग्रन्थकारों का विशेष हेतु सन्निहित है। षड्जग्राम का 'पधनि्' और मध्यमग्राम का 'सारिग्' एक ही है। 'सारिग्' और 'पधनि्' ये दोनों ग्रामों के पारस्परिक प्रतिघोष हैं और इस प्रकार दोनों के मिलने से रसाविभवि का एक पूर्ण रूप खड़ा होता है। हम यह भी जानते हैं कि षड्जग्राम का निषाद ही मध्यमग्राम का गान्धार है। षड्जग्राम के निषाद को और मध्यमग्राम के गान्धार को जोड़ने के लिए ही, रसभाव की दृष्टि से इन्हें आबद्ध करने के लिए ही पंचम को विशेष रूप से ग्रह-अंशों में स्थान दिया गया है ऐसा निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। बुधजन से यह अज्ञात नहीं है कि षड्जग्राम का पंचम ही मध्यमग्राम का षड्ज है। और इस प्रकार षड्जग्राम के पंचम को ग्रह अंश बनाने से जो स्वरावली उद्भूत होगी उसमें मध्यमग्राम की दृष्टि से षड्जग्रामिक 'पधनि्' ही 'सारिग्' हो जाएंगे। षड्जकैशिकी जाति के करुणरस को देखते हुए यह कहने में कोई प्रत्यवाय नहीं है कि उभयग्राम के गान्धार को न्यास बनाने के हेतु से ही भरत ने पंचम को ग्रह-अंशों में 'सा, ग' के अलावा स्थान दिया है। पूर्वांग में पंचश्रुति गान्धार और उत्तरांग में पंचश्रुति निषाद करुण रस के वाहक माने गए हैं। षड्जग्राम का पंचश्रुति निषाद ही मध्यमग्राम का पंचश्रुति गान्धार बनता है। इन उभय गान्धारों का प्रयोग तभी संभव हो सकता है जब पंचम को ग्रह-अंशों में स्थान दिया जाए जिससे 'सारिग्' के प्रतिघोष के रूप में 'पधनि्' (मध्यमगामिक 'सारिग्') का प्रयोग हो सके। इस प्रकार उभयग्रामिक पंचश्रुति गान्धार जो कि करुणरसवाहक हैं, प्रयुक्त हो सकते हैं और षड्जकैशिकी की करुणरसप्रधानता की सिद्धि हो सकती है। संभवतः इसी अभिप्राय से भरत ने पंचम को ग्रह-अंशों में स्थान दिया है।

इस जाति के करुण रस की ओर ध्यान रख कर, जब भी हम स्वर-सन्निवेश बनाएं अथवा कुतपयोजना करें तब मध्य या द्रुत गति से सदैव दूर रहें। साथ ही कांकु-प्रयोग सहित स्वरों में मन्द कम्प भी प्रयुक्त करें।

प्रथम षड्ज को ग्रह-अंश मान कर इसकी स्वरावली को देखें।

सारिग्~सारिऽसा, सारिमग~सारिऽसा, सारिपमग्रिग~सारिऽसा, सापमपऽमग्रिग्~ग्रिसारिऽसा, साग्ऽमधपग्~मग्~रि ऽ सा। साग्मप ऽ ग्मपध ऽ मपधनि् ऽ पधपग् ऽ मग्रिग्~सारिऽसा। सारिमपधग्~ सारिमपनि्धग्~ग्रिसारिमपधनि्~संनि्~धपधग्~मग्~सारि ऽ सा।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, षड्जकैशिकी के ग्रह-अंशों में पंचम को उभयग्रामिक स्वरावलियों के सन्धिस्थल के रूप में स्थान दिया गया है, क्योंकि षड्जग्राम का 'पधनि्' ही मध्यमग्राम का 'सारिग्' होता है। तदनुसार पंचम को ग्रह अंशत्व देने से षड्जग्राम की स्वरावली में निम्नलिखित रूप से मध्यमग्राम की स्वरावली का दर्शन होगा। यहाँ यह स्मरणीय है कि षड्जग्राम में अन्तर गान्धार का ग्रहण करने से ही मध्यमग्राम का चतुःश्रुति धैवत प्राप्त होता है। किन्तु यह षड्जकैशिकी जाति षड्जग्राम की होने से और इसमें करुण रस का विधान होने से इसमें षड्जग्रामिक मूल गान्धार को त्याग करके अन्तर गान्धार को स्थान नहीं दे सकते, क्योंकि :- (१) मूल षड्जग्रामिक गान्धार का त्याग षड्जग्राम की जाति में वांछनीय नहीं और (२) मूल षड्जग्रामिक गान्धार ही षड्जग्राम के पञ्चम को ग्रह-अंशत्व देने से कोमल धैवत का स्थान पाएगा जो रसदृष्टि से आवश्यक है। अतः हम यहाँ षड्जग्राम के मूल गान्धार को बनाए रखते हुए बीच २ में अन्तर गान्धार का प्रयोग करेंगे ताकि मध्यमग्रामिक स्वरावली का भी साथ-साथ दर्शन हो सके। यथा :--

रि ध
पंचम को ग्रह-अंशत्व देने से प्राप्त स्वरावली—१—प ऽ पमग्रिग्~, म ग म प ऽ ग्~, रिग्~, पधधनि्~,

प रि
पंचम को षड्ज का स्थान देने से प्राप्त स्वरावली —२—सा ऽ सानि्ध्प्ध्~, नि्ध्नि्साऽ ध्~, प्ध्~, सारिरिग्~,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

म रि ग म प
१—धं प ग्ऽ, सागऽमधपग्ऽ, सागऽ, ग मऽ, म पऽ, पधऽ, धनि्ऽ,

नि् प् ध् नि् सा
२—रिसाध्ऽ, मधऽनि्रिसाध्ऽ, मधऽ, धनि्ऽ नि्साऽ, सारिऽ, रिग्ऽ,

१—ध प ग्ऽ, ग्रिग्ऽ प,

२—रिसाध्ऽ, धपध्ऽसा,

यदि मध्यमग्राम का दर्शन इस स्वरावली में अभिप्रेत न समझा जाए तो केवल षड्जग्राम की दृष्टि से निम्नलिखित रीति से स्वर-विस्तार किया जा सकता है :—

षड्जग्राम के पंचम का ग्रह-अंशत्व—१—प ऽऽ म प ग्ऽ, प म प ध म प ग्ऽ, रि म प ध म ध प ग्ऽ, सारिग्ऽ,
पंचम को षड्ज मानने से प्राप्त
स्वरावली — २—साऽऽनि्साध्ऽ, सानि्सारिनि्साध्ऽ, पनि्सारिनि्रिसाध्ऽ, मपध्ऽ,

१—रिमपऽ म प धऽ म ध प ग्ऽ, सारिग्ऽ, सारिमपधनि्ऽ, धसांनि्ऽ,

२—पनि्साऽ नि्सारिऽ नि्रिसाध्ऽ, मपध्ऽ, मपनि्सारिग्ऽ, रि म ग्ऽ,

१—ध प धऽऽग्ऽ, रिम ऽग्ऽ, रिऽसारिऽप

२—रिसारिऽऽध्ऽ, पनि्ऽध्ऽ, पऽमपऽसा

षड्ज-पञ्चम का ग्रह-अंशत्व तो हम देख चुके। अब गान्धार का ग्रह-अंशत्व इस जाति में विशेष विचारणीय है। यदि गान्धार को षड्ज का स्थान देते हैं तो कल्याण-सदृश स्वरावली प्राप्त होती है, जो षड्जकैशिकी के करुण रस के अनुकूल नहीं हो सकती। अतः यहां हम गान्धार को गान्धार ही मान कर उसे आरंभ-स्थान (ग्रह) और केन्द्रबिन्दु (अंश) तथा ठहराव (न्यास) का स्थान बना रहे हैं ; उसे षड्ज का स्थान देकर कल्याण-सदृश स्वरावली बनाना यहां रस दृष्टि से अभिप्रेत नहीं प्रतीत होता।

गान्धार का ग्रह-अंशत्व

ग्सारिग्ऽ, ग्मग्ऽ, ग्रिग्मग्ऽ, ग्मधपग्ऽ, ग्रिग्मपऽ, ग्रिग्सारिमग्ऽ, ग्रिग्सारिग्पऽमग्ऽ, ग्रिसानि्ऽसारिग्ऽ, ग्रिसानि्धनि्ग्ऽ, ग्रिग्सारिग्पऽमग्ऽ, ग्रि रिसा सानि् नि्ध् धप् पध् धसा सारि रिग्ऽऽ, इत्यादि।

यह पुनः उल्लेखनीय है कि गान्धारी जाति के न्यास स्वर गान्धार से उत्थित स्वरावली यों तो कल्याण-सदृश है, किन्तु यह होते हुए भी उस गान्धार को षड्ज का स्थान न देकर गान्धार ही मानकर उसका ग्रह-अंशत्व दिखाने से प्राप्त स्वरावली कल्याण की छाया को निकट में फटकने तक नहीं देगी। साथ ही यह भी स्मरणीय है कि षड्ज-पंचम को ग्रह अंशत्व देने से प्राप्त जो स्वरावलियां कोमल-कारुण्य की अभिव्यक्ति कर चुकी हैं, उनकी छाया में, गान्धार के ग्रह-अंश-न्यासत्व से उपजाया हुआ स्वर-विस्तार कोमल-करुण ही बना रहेगा।

२. गान्धारोदीच्यवा—गान्धारोदीच्यवा जाति में निम्नोक्त चार जातियों का संयोग कहा गया है—

गान्धारी, षाड्जी, धैवती, मध्यमा। चार जातियों का समवाय होने पर भी इसके ग्रह अंश के रूप में केवल दो ही स्वर कहे हैं—'सा' तथा 'म'। (गान्धारोदीच्यवांशौ विज्ञेयौ षड्जमध्यमौ) इस प्रकार गान्धारी और धैवती के न्यास स्वर गान्धार-धैवत को ग्रह-अंशों में स्थान नहीं प्राप्त है। इसका न्यास स्वर मध्यम है, जिसे मध्यमग्राम का समझना चाहिए, क्योंकि यह जाति मध्यमग्राम की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरी ओर जातियों के रसप्रकरण में इस जाति के रस के सम्बन्ध में भरत का निम्नोक्त कथन विचारणीय है :—

मध्यमोदीच्यवा चैव गान्धारोदीच्यवा तथा।
षड्जर्षभांशनिष्पस्या कर्त्तव्या वीररौद्रयोः ।। (ना. शा. काशी संस्करण २९।८)

कार्मारवी तथा चान्ध्री गान्धारोदीच्यवा तथा।
वीररौद्रेऽद्भुते कार्या षड्जर्षभांशयोजिता ।। (ना.शा. निर्णयसागर संस्करण २३।९)

स्पष्ट है कि एक ओर गान्धारोदीच्यवा जाति के ग्रह-अंशों में 'सा' 'म' रखे गए हैं और दूसरी ओर उसी जाति का रस बताते हुए 'सा-रि' स्वरों का ग्रह-अंशत्व कहा है। इन दोनों उल्लेखों में सम्पूर्ण विरोधाभास है जिसका सामंजस्य बिठाना कठिन है। वीर, रौद्र और अद्भुत रसों के लिए "सरी वीरेऽद्भुते रौद्रे" यह कह कर इन दो स्वरों के साथ उन तीन रसों का सम्बन्ध भरत ने जोड़ा है। इस अवस्था में रस-प्रकरण में बताए हुए 'सा-रि' स्वरों का ग्रह-अंशत्व माना जाए अथवा जाति के लक्षणों में कहे गए 'सा-म' को ही ग्रह-अंशत्व दिया जाए? इस प्रसंग में तीन प्रश्न उद्भूत होते हैं—(१) भरत का स्वरों के रसों के सम्बन्ध में जो विधान है वह षड्जग्रामिक सप्त स्वरों की दृष्टि से समझा जाए या मध्यमग्रामिक सप्त स्वरों की दृष्टि से समझें? (२) या ऐसा समझें कि षड्जग्रामाश्रित जातियों में षड्जग्राम के स्वर और मध्यमग्रामाश्रित जातियों में मध्यमग्राम के स्वरों से तात्पर्य है? (३) या जिन-जिन न्यास स्वरों से जाति की मूर्च्छना बनती है, उन-उन स्वरों को षड्ज मान कर उन्हीं के अनुपात से बनने वाले स्वरों से रस का सम्बन्ध है? इन प्रश्नों की स्पष्टता ग्रन्थों में कहीं उपलब्ध नहीं होती। इसलिये हमने इन संसर्गजा जातियों के स्वरों का, उनके संसर्गों का, उनके रसों का, उनके ग्रह-अंश-न्यासादि नियमन का विवेचन करते समय भिन्न-भिन्न विकल्पों के रूप में सारी सम्भावनाएँ यथास्थान प्रस्तुत कर देना उचित समझा है। इन संसर्गजा जातियों के कैसे, किस प्रकार से, कितने रूप से संसर्ग किये जा सकते हैं उसके लिए हमें जो विचार उद्भूत हुए, जो संभावनाएं ध्यान में आईं उन्हें विकल्प के रूप में कह आए हैं।

गान्धारोदीच्यवा जाति मध्यमग्राम की कही है, किन्तु उसमें दो षड्जग्राम की (षाड्जी, धैवती) और दो मध्यमग्राम की (गान्धारी, मध्यमा) जातियों का समवाय है। दोनों ग्रामों की जातियों का तुल्य प्रमाण देखते हुए यह प्रश्न उठ सकता है कि गान्धारोदीच्यवा का न्यास स्वर मध्यम, षड्जग्राम का समझा जाए या मध्यमग्राम का? इस प्रश्न का विवेचन इस प्रकार है।

गान्धारोदीच्यवा इस नाम से गान्धारी का प्राधान्य सूचित होता है। साथ ही इसके वीर-रौद्र-अद्भुत रसों को देखते हुए गान्धारी की मूर्च्छना से उत्पन्न कल्याण-सदृश स्वरावली से इस संसर्गजा जाति का सम्बन्ध जुड़ता-सा दिखाई देता है। किन्तु, गान्धार तो इसमें न ग्रह-अंश है और न न्यास ही है। हम जानते हैं कि गान्धार को स्थूल मान से करुण रस का वाहक मान लिया गया है, कहीं इसलिए तो उसका इस जाति के ग्रह-अंशों में से बहिष्कार नहीं किया गया होगा? साथ ही वीर अद्भुतादिक रसों का आविर्भाव भरत ने जिस प्रकार 'सा' और 'रि' से माना है उसे देखते हुए हम ऐसा अनुभव कर रहे हैं कि यहां पर गान्धारी के गान्धार को ही षड्ज का स्थान दिया जाए और उसका ऋषभ जो चतुःश्रुति है, और जो मध्यमग्राम का 'म' है उसे प्राधान्य दिया जाए। उन 'सा-रि' के प्राधान्य से वांछित रस सिद्धि प्राप्त हो सकेगी। (मध्यमग्राम का 'म' इस जाति का न्यास स्वर है और वही मध्यम उपर्युक्त गान्धार की मूर्च्छना में ऋषभ का स्थान पाता है)। भरत ने जातियों के रस-प्रकरण में गान्धारोदीच्यवा में 'सा-रि' का बाहुल्य कहा ही है। गान्धारी जाति की मूर्च्छना में ऋषभ का जो स्थान आता है, उसे प्राधान्य देने से मध्यमग्राम का मध्यम भी मुकाम के रूप में न्यास का स्थान पा जाता है और साथ ही रस दृष्टि से ऋषभ का भी बाहुल्य बन जाता है। इसलिए मध्यमग्रामिक गान्धार से उत्थित कल्याण-सदृश स्वरावली को इस जाति की मूल स्वरावली या स्थायिभाव का प्रतिनिधि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मान कर उसी के संचारिभावों में अन्य संसर्गप्राप्त जातियों का समवाय किया जाए तो संभवतः भरत-कथित रसाविर्भाव सिद्ध हो सकेगा। यथा :--

मध्यमग्रामिक मूल स्वरावली १—ग्मपधनि् सांरिंग्', ग्'रिंसांनि् धपमग्,
म. ग्राम के गान्धार को षड्ज २—सारिगम्प धनिसां, सांनिधप म्गरिसा,
मानने से प्राप्त स्वरावली

१—रि म ऽ ग्, ग् रि म ऽ ग्, रि सा रि म ऽ ग् रि म प म ऽ, रि म प ध नि् ध प म,
२—नि रि ऽ सा, सा नि रि ऽ सा, नि ध नि रि ऽ सा नि रि ग रि ऽ, नि रि ग म् प म् ग रिं,
१—रि म रि प म ध प नि् नि् ध प म, प ध सां ऽ नि् ध प म रि म ऽ ग्
२—नि रि नि ग रि म् ग प प म् ग रि, ग म् ध ऽ प म् ग रि नि रि ऽ सा
१—रि म प ध सां रिं ऽ, ध सां ग्' ऽ ग्' रिं सां नि् ऽ ध प म ग्, रि म प म रि म ऽ ग्—
२–नि रि ग म् ध नि ऽ, म् ध सां ऽ सां नि ध प ऽ म् ग रि सा, नि रि ग रि नि रिऽसा—

गान्धारोदीच्यवा में ऋषभ-रहित षाडव भेद कहा गया है। एक ओर 'सा-रि' का अंशत्व बता कर इस जाति का रस-निर्धारण और दूसरी ओर रस-प्रकरणोक्त अंश स्वर ऋषभ का षाडव-भेद-निर्माण-विधि में लोप-विधान – इन दोनों परस्पर विरोधी बातों की संगति कैसे बैठाई जाए?

इसके औडव भेद का ग्रन्थस्थ विधान नहीं है। किन्तु इसकी रस-सिद्धि के लिए संभवतः औडव रूप अधिक उपादेय होंगे, क्योंकि खड़े-खड़े स्वरों का आघातसहित उच्चार और औडव स्वरावली के दूरस्थ अन्तराल – ये दोनों बातें वीर-रौद्र रसों की अभिव्यक्ति के लिए उपयोगी हैं। इसी रस-दृष्टि के अनुसार, षाडवकारी ऋषभ के संवादी पंचम को भी लोप्य बना कर 'रि-प' रहित कुछेक औड़व रूपों का निर्माण कर के यहाँ दिखाया जा रहा है।

ऊपर दी गई स्वरावली में से यदि मध्यमग्रामिक मूल 'रि-प' वर्ज्य करें तो 'सा--रि—म्--प ध—सां'— ऐसा औडव रूप बनेगा। और यदि गान्धार को षड्ज मानने से प्राप्त स्वरावली के ऋषभ-पंचम का लोप करेंगे तो 'सा ग—म्—ध—नि--सां' यह हिण्डोल की स्वरावली प्राप्त होगी, जो, निश्चित रूप से वीर रस की वाहक है।

षाड्जी का संसर्ग :—षाड्जी में भी मध्यम को न्यासत्व देना होगा। प्रश्न हो सकता है कि यह मध्यम क्या षड्जग्राम का होगा या मध्यमग्राम का? मध्यमग्राम का मध्यम ही षड्जग्राम का षड्ज है। इसलिए षाड्जी के संसर्ग के समय षड्जग्राम के षड्ज को न्यास या ठहराव का स्थान बना सकते हैं। षाड्जी में नियमानुसार षड्ज को ही ग्रह, अंश, न्यास बनाते हुए षड्जग्रामिक मूल स्वरावली का उपयोग करना होगा। यह स्वरावली इस प्रकार है—

सा--रि--ग्--म--प—ध—नि्--सां
—३--२--४—४--३--२—४—

इससे वीर-रौद्र रसों की निष्पत्ति किसी प्रकार संभव नहीं जान पड़ती, क्योंकि इसके स्वरान्तराल करुण कोमल भावों के लिए अधिक उपयुक्त हैं, कठोर या परुष भावों के लिए नहीं। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि वीर-रौद्राद्भुत रसों की निष्पत्ति के लिए निर्मित गान्धारोदीच्यवा में षाडजी के संसर्ग का विधान देने के पीछे भरत की क्या रस-दृष्टि रही होगी? सूक्ष्म और गहन विचार करने पर भरत के उस विधान की ओर ध्यान जाता है, जिसमें उन्होंने आठ रसों को चार युग्मों (जोड़ों) में सन्निविष्ट किया है। यथा :--

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रृङ्गाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्रात्तु करुणो रसः ।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्बीभत्साच्च भयानकः ।।

श्रृङ्गारानुकृतिर्या तु स हास्य इति संज्ञितः।
रौद्रस्यापि च यत्कर्म स ज्ञेयः करुणो रसः ।।

वीरस्यापि च यत्कर्म सोऽद्भुतः परिकीर्तितः ।
बीभत्सदर्शनं यच्च भवेत् स तु भयानकः ।।

(ना. शा. ६।३९-४१)

अर्थात् श्रृङ्गार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत तथा वीभत्स से भयानक रस को 'उत्पत्ति' होती है। यथा--श्रृङ्गार का अनुकरण हास्य का कारण होता है, रौद्र का कर्म (प्रभाव) करुण होता है, वीर का कर्म (प्रभाव) अद्भुत होता है और जो 'वीभत्स—दर्शन' (देखने में जुगुप्साजनक) हो वह भयानक होता है।

इस भरत-प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार रौद्र और करुण का सहभाव समझना चाहिए अर्थात् 'रौद्र' का प्रभाव करुण के रूप में अभिव्यक्त होता है। नाट्य में जहां एक ओर एक या अधिक पात्रों द्वारा रौद्र रस का अभिनय होता हो, वहां दूसरी ओर उस रौद्र का प्रभाव अभिव्यक्त करने के लिए एक या अधिक पात्रों द्वारा करुण रस का अभिनय भी रस-परिपोष के लिए आवश्यक होता है। संभवतः इसी दृष्टि से गान्धारोदीच्यवा में वीर-रौद्र अद्भुत रसों की अभिव्यञ्जक स्वरावलियों के साथ-साथ करुण रस की अभिव्यक्ति के लिए षाड्जी की स्वरावली का भी संसर्ग कहा गया हो। षाड्जी का स्वर-विस्तार कुछ निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :—

सा, सारिसा, सारिग्‿सारिसा, सारिमग्‿सारिसा, सारिग्‿सारिमग्‿सारिसा, सारिपमग्रिग्‿सारिसा, साग्रिग्‿सारिपमग्रिग्‿सारिसा, ग्सारिग्‿रिमपधऽग्‿रिमग्‿सारिसा, नि़धनि़‿ग्रिग्‿सारिसा।

मध्यमा का संसर्ग—हम जानते हैं कि षड्जग्राम का षड्ज ही मध्यमग्राम का मध्यम बन जाता है। उस मध्यमग्राम के मध्यम को षड्ज मान कर चलेंगे तो वही 'म-ध' ही 'सा-ग' हो जाएगा। और अगर भरत के कथनानुसार मध्यमा में स्वर-साधारण (अन्तर-काकली) का प्रयोग किया जाए तो उसका स्वर-रूप इस प्रकार बनेगा :— 'सारिगमम्पधनि़निसां'। इसलिए कहीं 'सागमध, निसांनिधमगऽसा' कहीं 'सागमधऽ, निसांनिधऽ मगऽसा,' अथवा— सागऽमधऽनिसांनि धनि़धऽगमग, नि़सानि़ धनि़धऽ गमगऽसा—यों प्रयोग किये जा सकते हैं।

यह मध्यमा का 'रि-प' रहित औडव रूप हुआ। केवल ऋषभ का त्याग करने से इसका षाडव रूप यों बन जाएगा: —

सागमधऽप, सागऽमधऽ धनि़धऽप, गमगऽसा, सागमप गमधप, मधनिसांनि धनि़धऽप, गमगऽसा।

ऊपर जो औडव षाडव रूप बनाए गए हैं, उनमें मध्यमा की स्वरावली के 'रि-प' तथा 'रि' का क्रमशः लोप किया गया है। यदि वैसा न करके मध्यमग्रामिक मूल 'रि-प' अथवा 'रि' को वर्ज्य किया जाए तो निम्नलिखित औडव-षाडव रूप बनेंगे:—

मूल मध्यमग्रामिक 'रि-प' वर्ज्य करने से प्राप्त औडव रूप—यथा सागऽमग, सागऽमपमगऽसा, सानि़सागऽ पमपऽगमप, सांऽनिऽप, पनिसांगंऽसांऽनिऽपऽमग मगऽसा। इस प्रकार औडव मालश्री का रूप दिखाई देगा।

मूल मध्यमग्रामिक 'रि' वर्ज्य करने से प्राप्त षाडव रूप—सामऽगपऽमरिऽसा, सामऽगप, मपनिसांनिपऽमऽ मगप, मरि ऽ सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये औडव-षाडव रूप निश्चय ही इस जाति के वीर, रौद्र, अद्भुत रसों के संचारिभावों में प्रविष्ट हो जाएंगे। इस प्रकार विभिन्न योजनाओं द्वारा रस-भावानुकूल स्वर-विन्यास उपजा कर संचारिभावों का संचरण आविर्भूत किया जा सकता है।

धैवती का संसर्ग—गान्धारोदीच्यवा में गान्धारी और मध्यमा के अतिरिक्त धैवती का भी संसर्ग कहा गया है। धैवती के स्वरसमूह में भैरवी और तोड़ी का मिला-जुला रूप आता है यह हम जानते हैं। विशेष रूप से तार-व्याप्ति, प्रत्येक स्वर का आघात के साथ उच्चार, इत्यादि काक्वादि भेद प्रयुक्त न किये जाएं तो सामान्यतः इसकी स्वरावली करुणोत्पादक ही माननी पड़ेगी। इस दृष्टि से धैवती का संसर्ग वीर, अद्भुत और रौद्र-रस-वाहिनी गान्धारोदीच्यवा में जो कहा गया है, उसका Contrast (असमानता, विरोध) के रूप में उपयोग समझा जा सकता है। रस-परिपोष में भावों और रसों की मैत्री या साम्य-सम्बन्ध के साथ-साथ उनके Contrast (असमानता, विरोध) का भी विशेष स्थान है। रस-निष्पत्ति में अकेला स्थायिभाव उपयोगी नहीं होता, उसके परिपोष के लिए जिस प्रकार संचारि-भावों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अन्य स्थायिभाव भी संचारी बन कर अल्पकाल के लिए उसका परिपोष कर सकते हैं। तदनुसार रौद्र के परिपोष के लिए करुण का उपयोग उचित ही है। संभवतः इसीलिए भरत ने गान्धारोदीच्यवा में धैवती को स्थान दिया होगा। धैवती का स्वर-विस्तार हम शुद्धा जातियों के प्रकरण में दिखा ही चुके हैं।

जाति-साधारण

भरत के जाति-निरूपण के विस्तृत विवरण के पश्चात् उनके परवर्ती मतंग का मत प्रस्तुत करने के पूर्व एक लघु विषय का उल्लेख प्रासंगिक है और वह है जाति-साधारण। भरत ने कहा है :—

द्वे साधारणे—स्वरसाधारणं जातिसाधारणञ्चेति। जातिसाधारणमेकग्रामांशानां जातीनां जात्योर्वा अन्यस्मिन् ग्रामे प्रत्यङ्गदर्शनं स्वराणामवगमात्। (ना० शा० २८)

अर्थात् 'साधारण' दो प्रकार का होता है—एक स्वरसाधारण, दूसरा जाति-साधारण। एक ग्राम (षड्जग्राम अथवा मध्यमग्राम) के अंश वाली दो अथवा अधिक जातियों का दूसरे ग्राम (मध्यमग्राम अथवा षड्जग्राम) में स्वरों के अवगम से जो प्रत्यङ्गदर्शन होता है, वह 'जातिसाधारण' है।

भरतोक्त जातिसाधारण उभयग्राम के परस्पर सम्बन्ध पर आधृत है। एक ग्राम की जाति या जातियों का अन्य ग्राम की जाति या जातियों में प्रत्यङ्गदर्शन हो जातिसाधारण है। अतः इसे स्पष्टतया समझने के लिए भरतोक्त उभयग्राम का परस्पर सम्बन्ध पुनः समझ लेना यहां आवश्यक है।

षड्जग्राम और मध्यमग्राम के स्वरों में तत्वतः तादात्म्य-सम्बन्ध है; जो कुछ व्यवहारगत अन्तर है, वह केवल संज्ञाभेद में निहित है। इस सिद्धान्त को हम 'संगीताञ्जलि' पञ्चम भाग में पृ० ५६-५८ पर भरत के शब्दों द्वारा स्पष्ट कर चुके हैं। यहां भरत के तत्सम्बन्धी वचन को उद्धृत करना मात्र पर्याप्त होगा। यथा :—

द्विविधैकमूर्च्छनासिद्धिः, द्विश्रुत्युत्कर्षाद्धैवतीकृते गान्धारे मूर्च्छनाग्रामयोरन्यतरत्वं षड्जग्रामे। तद्वशान्मध्यमादयो निषादादिमत्वं (निषादादित्वं) प्रतिपद्यन्ते। मध्यमग्रामेऽपि धैवतमार्दवात् (धैवतामार्दवात्) निषादोत्कर्षात् (च) द्वैविध्यं भवति। तुल्यश्रुत्यन्तरत्वाच्च संज्ञान्यत्वम्। चतुःश्रुतिकमन्तरं पञ्चमधैवतयोः। तद्वद्गान्धारोत्कर्षाच्चतुःश्रुतिकमन्तरं भवति। शेषाश्चापि मध्यम-पञ्चम-धैवत-निषादषड्जर्षभा मध्यमादिमत्वं (षड्जादित्वं) प्राप्नुवन्ति।* (ना. शा. २८)

---

*इस उद्धरण का पाठ नाट्यशास्त्र के काशी और बम्बई से प्रकाशित संस्करणों को मिला कर बनाया गया है तथा विषय के यथार्थ प्रतिपादन की दृष्टि से इसमें हमने कोष्ठक में अपनी ओर से संशोधन प्रस्तुत किये हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत का यह वचन उस प्रकरण में है जहाँ कि मूर्च्छनाओं के पूर्णा, षाडवा, औडवा और साधारणीकृता —ये चार भेद कहे गए हैं। इन चार भेदों के उल्लेख के ठीक बाद ही ऊपर उद्धृत वचन मिलता है। इस वचन में उभयग्राम का परस्पर तादात्म्य-भाव निरूपित किया गया है। एक ग्राम की मूर्च्छना-विशेष में ही दूसरे ग्राम की उपलब्धि हो जाती है, यह इसका तात्पर्य है। षड्जग्राम के गान्धार का द्विश्रुति उत्कर्ष करके उसी गान्धार को धैवत बना देने से मध्यमग्राम की निष्पत्ति हो जाती है और मध्यमग्राम में धैवत का दो श्रुति अपकर्ष करके उसी को गान्धार बना देने से पुनः षड्जग्राम की उपलब्धि हो जाएगी। यथा :—

षड्जग्रामिक स्वरावली —सा--रि—ग्--अं० गां०—म—प--ध- नि् —सां

संज्ञाभेद से मध्यमग्रामिक स्वरावली--म—प—ध्रा० धै० —ध —नि्—सा —रि —ग्—म
—३—२ —— २—२—४ –३ - २ –४—

भरत के इस उद्धरण का पाठ शुद्ध करके हम जिस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं उसी की पुष्टि दत्तिल और कुम्भा राणा के निम्नोद्धृत वचनों से भी होती है :—

गान्धारं धैवतीकुर्यांद् (द्वि) श्रुत्युत्कर्षणाद् यदि।
तद्वशान्मध्यमादींश्च निषादादीन् यथास्थितान्॥

ततोऽभूद् यावतिथ्येषा षड्जग्रामस्य मूर्च्छना।
श्रुतिद्वयापकर्षेण गान्धारीकृत्य धैवतम्।
पूर्ववन्मध्यमाद्याश्च भावयेत् षड्जमूर्च्छनाः॥

(दत्तिलम् २६-२८)

षड्जग्रामभवा एव मूर्च्छना मध्यमाश्रिताः।
चित्रं मध्यमगा एव ताः स्युः षड्जगता यथाः॥

षड्जे श्रुतिद्वयोत्कर्षाद् गान्धारो धैवतीभवेत्।
द्विश्रुत्यपचयाद्ग्रामे मध्यमे धो गतां व्रजेत्॥

तद्वशान्मादिकाः षड्जे भजन्ते न्यादितां स्वराः।
न्याद्याः स्युर्मादिका मध्ये श्रुतिसाम्यात्स्वतः स्वराः॥

एवं यावतिथा षड्जग्रामे या मूर्च्छना भवेत्।
तावतिथ्येव सा मध्ये चित्रमत्राभवत्स्वयम्॥
वैणिकानाममयं पन्थाः सुगमः श्रुतिशालिनाम्।

(संगीतराज, गीतरत्नकोश, स्वरोल्लास, स्थानादि-परीक्षण ३७०-७४)

ऊपर के उद्धरणों में प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार उभयग्राम की मौलिक स्वरावलियों में तात्त्विक ऐक्य है, किन्तु संज्ञाभेद से दोनों का व्यवहारगत पार्थक्य है। अतः उभयग्राम की मौलिक स्वरावलियों में एक दूसरे का प्रत्यङ्गदर्शन निहित है। उभयग्राम के तात्त्विक ऐक्य पर आधृत इस 'प्रत्यङ्गदर्शन' के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार से भी उभयग्राम का प्रत्यङ्गदर्शन सिद्ध किया जा सकता है। संगीतांजलि पञ्चम भाग में मूर्च्छनाप्रकरण में हम स्पष्ट कर चुके हैं कि उभयग्रामिक सप्त स्वरों से जो मूर्च्छनाएं निष्पन्न होती हैं, उनमें सूक्ष्म श्रुत्यन्तर-भेद रहने पर भी सादृश्य पाया जाता है। जैसे षड्जग्रामिक मध्यम और मध्यमग्रामिक मध्यम में स्थानगत ऐक्य नहीं है, किन्तु दोनों की मूर्च्छनाओं से खमाज-सदृश स्वरावली निष्पन्न होती है; इसी प्रकार अन्य सभी स्वरों की मूर्च्छनाओं में सादृश्य-संबंध है। यह भी उभयग्राम का एक प्रकार का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रत्यङ्ग-दर्शन है। प्रथम प्रत्यङ्गदर्शन में संज्ञाभेद है, किन्तु स्थानैक्य है, द्वितीय में संज्ञा-ऐक्य है, किन्तु स्थान-भेद होने पर भी मूर्च्छना-सादृश्य है। जिस प्रकार का द्विविध प्रत्यङ्गदर्शन उभयग्राम में हमने अभी ऊपर किया उसी प्रकार का प्रत्यङ्गदर्शन उभयग्राम से उत्पन्न जातियों में जाति साधारण द्वारा भरत को अभिप्रेत है। अतः जातिसाधारण को भी दो प्रकार से समझा जा सकता है :—(१) स्थानगत ऐक्य तथा संज्ञा-भेद से एवं (२) मूर्च्छनागत सादृश्य से। यह दोनों प्रकार का जातिसाधारण क्रमशः नीचे दो सारिणियों में प्रस्तुत है।

१. उभयग्रामिक स्वरगत ऐक्य तथा संज्ञा-भेद से सिद्ध जाति-साधारण

षड्जग्राम की षाड्जी तथा मध्यमग्राम की मध्यमा		षड्जग्राम की आर्षभी तथा मध्यमग्राम की पञ्चमी		षड्जग्राम की नैषादी तथा मध्यमग्राम की गान्धारी	
षाड्जी	मध्यमा	आर्षभी	पञ्चमी	नैषादी	गान्धारी
सा	सा	सा	सा	सा	सा
—३	—३	—२	—४	—४	—४
रि	रि	रि्	रि	रि	रि
—२	—४	—४	—२	—३	—३
ग्	ग	ग्	ग्	ग	ग
—४	—२	—४	—४	—२	—४
म	म	म	म	म	म्
—४	—४	—३	—३	—४	—२
प	प	प	प	प	प
—३	—३	—२	—२	—४	—३
ध	ध	ध्	ध्	ध	ध
—२	—२	—४	—४	—३	—४
नि्	नि्	नि्	नि्	नि	नि
—४	—४	—३	—३	—२	—२
सां	सां	सां	सं	सां	सां

षड्जग्राम का षड्ज तथा मध्यमग्राम का मध्यम, ष०ग्राम का ऋषभ तथा म०ग्राम का पञ्चम, तद्वत् ष०ग्राम का निषाद तथा मध्यमग्राम का गान्धार वीणा पर एक ही स्थान पर स्थित हैं; इसीलिए षाड्जी—मध्यमा, आर्षभी-पञ्चमी तथा नैषादी-गान्धारी - इन उभयग्रामिक जाति-युग्मों का प्रत्यङ्गदर्शन ऊपर प्रस्तुत किया गया है। इन युग्मों में श्रुत्यन्तर-भेद के अतिरिक्त एक-एक स्वर की भिन्नता के प्रसंग में षड्जग्रामिक 'गान्धारोत्कर्ष' और मध्यमग्रामिक 'धैवतापकर्ष' को स्मरण रखना आवश्यक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. उभयग्रामिक मूर्च्छनासादृश्य से निष्पन्न जाति साधारण

उभयग्रामिक षड्ज का मूर्च्छना-सादृश्य (काफ़ी-सदृश)		उभयग्रामिक मध्यम का मूर्च्छना-सादृश्य (खमाज सदृश)		उभयग्रामिक पञ्चम का मूर्च्छना-सादृश्य (आसावरी सदृश)		उभयग्रामिक धैवत का मूर्च्छना-सादृश्य (तोड़ी-भैरवी सदृश)	
षड्जांश षाड्जी ष. ग्राम	षड्जांश मध्यमा म. ग्राम	मध्यमांश षाड्जी ष ग्राम	मध्यमांश मध्यमा म. ग्राम	पञ्चमांश षाड्जी ष. ग्राम	पञ्चमांश मध्यमा म. ग्राम	धैवतांश षाड्जी ष. ग्राम	धैवतांश मध्यमा म. ग्राम
सा	सा	सा	सा	सा	सा	सा	सा
—३	—३	—४	—३	—३	—४	—२	—२
रि	रि	रि	रि	रि	रि	रि	रि॒
—२	—२	—३	—४	—२	—२	—४	—४
ग॒	ग॒	ग	ग	ग॒	ग॒	ग॒	ग॒
—४	—४	—२	—२	४	—४	—३	—३
म	म	म	म	म	म	म	म
—४	—३	—४	—४	—३	—३	—२	—२
प	प	प	प	प	प	म॑	म॑
—३	—४	—३	—३	—२	—२	—४	—४
ध	ध	ध	ध	ध॒	ध॒	ध॒	ध॒
—२	—२	—२	—२	—४	—४	—४	—३
नि॒	नि॒	नि॒	नि॒	नि॒	नि॒	नि॒	नि॒
—४	—४	—४	—४	—४	—३	—३	—४
सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां

ऊपर प्रथम सारिणी में उभयग्रामिक संज्ञाभेद के आधार पर जातियों का प्रत्यङ्गदर्शन प्रस्तुत किया गया था। द्वितीय सारिणी में उभयग्रामिक मूर्च्छना-सादृश्य का आधार लिया गया है। षड्जग्रामिक षड्ज और मध्यमग्रामिक षड्ज का वीणा पर भिन्न स्थान होने पर भी दोनों की मूर्च्छनाओं में पर्याप्त सादृश्य पाया जाता है। इसी सादृश्य के आधार पर जातियों का प्रत्यङ्गदर्शन करने के लिए हमने यहाँ अंश स्वरों को षड्ज का स्थान देकर स्वरावलियाँ बनाई हैं।*

---

*ध्यान रहे कि अंशस्वर को षड्ज का स्थान देने की अल्पकालिक क्रिया यहाँ जातियों के प्रत्यङ्गदर्शन के प्रयोजन से ही की गई है। शुद्धा जातियों के स्वर रूप के नियामकत्व को न्यास में ही निहित मानने के सिद्धान्त में इससे कोई बाधा नहीं आती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मतंग

भरतोक्त व्यवस्थानुसार हमने शुद्धा, विकृता तथा संसर्गजा विकृता जातियों की रचना विभिन्न पहलुओं से देख ली। अब हम इस सम्बन्ध में मतंग की विचारधारा का भी अल्प दर्शन कर लें, क्योंकि भरत के परवर्ती उपलब्ध ग्रन्थों में उसका प्रमुख स्थान है।

ध्यान रहे कि भरत ने जातियों के स्वर-रूप दिखाने के लिए किसी मूर्च्छना का निर्देश नहीं ही किया है। किन्तु मतंग ने जातियों का विवरण देते समय उनकी मूर्च्छनाएं बताई हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भरतोक्त उत्तर-मन्द्रादि सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं के अतिरिक्त मतंग ने द्वादश-स्वर मूर्च्छना भी कही हैं। अतः जातियों के सम्बन्ध में मतंग के इस मूर्च्छना-विधान पर विचार करते समय उनकी द्वादश-स्वर-मूर्च्छना पद्धति को आलोचनात्मक दृष्टि से प्रथम देख लेना आवश्यक है।

मतंग ने द्वादश स्वर-मूर्च्छना का प्रयोजन त्रिस्थान प्राप्ति बताया है। यथा :—

तत्र मूर्च्छनानिर्देशः स्थानत्रितयप्राप्त्यर्थमिति वचनात् मन्द्रतारसिद्धयर्थमिति वचनाच्च द्वादशस्वरसम्पन्ना मूर्च्छना द्रष्टव्या प्रयोगकाले। तथा चाह कोहलः—

योजनीयो बुधैर्नित्यं क्रमो लक्ष्यानुसारतः।
संस्थाप्य मूर्च्छना जातिरागभाषादिसिद्धये ।।

अर्थात् जाति, राग, भाषादि की सिद्धि के लिए मूर्च्छना का लक्ष्यानुसार क्रम स्थापित करना चाहिए।

स्मरण रहे कि कोहल के इस उद्धरण में द्वादशस्वर मूर्च्छना का कहीं उल्लेख नहीं है।

इसी प्रसंग में मतंग ने नन्दिकेश्वर का उद्धरण भी दिया है :- नन्दिकेश्वरेणाप्युक्तं—

द्वादशस्वरसम्पन्ना ज्ञातव्या मूर्च्छना बुधैः।
जातिभाषादिसिद्धयर्थं तारमन्द्रादिसिद्धये ।।

अर्थात् जाति-भाषादि-सिद्धि के लिए तथा तारमन्द्रादि सिद्धि के लिए द्वादशस्वर मूर्च्छना समझनी चाहिए।

षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम की मूर्च्छनाओं के द्वादश-स्वर-रूप मतंग ने जिस प्रकार दिए हैं, वे निम्नोक्त सारिणियों से स्पष्ट हो जाएंगे और उन द्वादश स्वर-मूर्च्छना की भरतोक्त सप्तस्वर मूर्च्छना से भिन्नता भी स्पष्ट हो जाएगी।

१. षड्जग्राम

सांकेतिक मूर्च्छना-नाम	द्वादश-स्वर-मूर्च्छना	परम्परागत मूर्च्छना नाम	ग्राम का मूल आरंभस्वर (सप्तस्वर-मूर्च्छना के अनुसार)
धैवतादि	धनिसारिगमपधनिसारिग	उत्तरमन्द्रा	षड्ज
निषादादि	निसारिगमपधनिसारिगम	रजनी	निषाद
षड्जादि	सारिगमपधनिसारिगमप	उत्तरायता	धैवत
ऋषभादि	रिगमपधनिसारिगमपध	शुद्धषाड्जी	पञ्चम
गान्धारादि	गमपधनिसारिगमपधनि	मत्सरीकृता	मध्यम
मध्यमादि	मपधनिसारिगमपधनिसा	अश्वक्रान्ता	गान्धार
पञ्चमादि	पधनिसारिगमपधनि	अभिरुद्गता	ऋषभ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२. मध्यमग्राम

सांकेतिक मूर्च्छना-नाम	द्वादश स्वर मूर्च्छना	परंपरागत मूर्च्छना-नाम	ग्राम का मूल आरंभस्वर (सप्तस्वर मूर्च्छना के अनुसार)
निषादादि	निसारिगमपधनिसारिगम	सौवीरी	मध्यम
षड्जादि	सारिगमपधनिसारिगमप	हरिणाश्वा	गान्धार
ऋषभादि	रिगमपधनिसारिगमपध	कलोपनता	ऋषभ
गान्धारादि	गमपधनिसारिगमपधनि	शुद्धमध्यमा	षड्ज
मध्यमादि	मपधनिसारिगमपधनिसा	मार्गी	निषाद
पञ्चमादि	पधनिसारिगमपधनिसारि	पौरवी	धैवत
धैवतादि	धनिसारिगमपधनिसारिग	हृष्यका	पञ्चम

इन सारिणियों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि केवल षड्जग्राम की प्रथम मूर्च्छना में ही त्रिस्थानप्राप्ति का उद्देश्य पूर्ण हुआ है, क्योंकि वह षड्ज की मूर्च्छना है और धैवत से उसका आरंभ किया गया है। इस प्रकार मन्द्र में 'ध़ नि़' तथा तार में 'रिं गं' प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु अन्य किसी भी मूर्च्छना में इस क्रम का पालन नहीं हुआ है। निषाद से आरंभ होने वाली मूर्च्छना 'रजनी' को इस क्रम के अनुसार पंचम से आरंभ करना चाहिए था; किन्तु उसे निषाद से ही आरंभ किया गया है। इस प्रकार न तो त्रिस्थान प्राप्ति का उद्देश्य पूरा हुआ है और न ही सप्तस्वर मूर्च्छनाओं के मौलिक आरंभस्थानों के साथ द्वादश-स्वर मूर्च्छनाओं के आरंभस्थानों का सामंजस्य स्थापित हो सका है। यह स्मरणीय है कि सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं को यदि द्वादशस्वर मूर्च्छनाओं में, त्रिस्थान प्राप्ति के उद्देश्य से स्थापित करना हो तो वही अवरोह-क्रम रखना चाहिए—यथा 'ध' के बाद 'प' से तथा 'प' के बाद 'म' से षड्जग्राम की मूर्च्छनाएं बनाना चाहिए। किन्तु मतंग के विधान में इसके विपरीत आरोहक्रम रखा गया है। यानी 'सानिधपमगरि' इस क्रम में स्थित सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं को 'धपमगरिसानि' इस अवरोह-क्रम से द्वादश-स्वरों में स्थित करना चाहिए था; उसकी बजाय उन्हें 'धनिसरिगमप' यों आरोह-क्रममें रख दिया गया है। इस प्रसंग में मतंग का निम्नलिखित वाक्य भी विचारणीय है :—

सारिगमधनि अन्या (?) मूर्च्छना धनिगमपाद्याश्चिय (?) मूर्च्छना द्रष्टव्या। (बृहद्देशी पृ० ३२)

इस पंक्ति का शुद्ध पाठ निम्नलिखित होगा :—

सारिगमपधन्याद्या सप्तस्वर-मूर्च्छना धनिसरिगमपाद्या द्वादशस्वरमूर्च्छना द्रष्टव्या।

अर्थात्—(षड्जग्राम की) जो सप्तस्वर मूर्च्छनाएं क्रमशः 'सारिगमपधनि' से आरंभ होती है, वही द्वादश स्वर-व्यवस्थानुसार क्रमशः 'धनिसरिगमप' से शुरू होती है। ध्यान रहे कि इस उद्धरण में सप्तस्वर मूर्च्छनाओं को भी 'सारिगमपधनि' यों आरोह क्रम में रखा गया है। यदि इसी क्रम से द्वादश-स्वर-मूर्च्छनाओं के साथ सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं को स्थापित किया जाता तब तो दोनों में सामंजस्य रहता। किन्तु इस उद्धृत वाक्य के बाद 'बृहद्देशी' के वर्तमान उपलब्ध पाठ में सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं का तो परंपरागत अवरोह-क्रम ही रख लिया गया है और द्वादश-स्वर-मूर्च्छनाओं को आरोह-क्रम में ही बताया गया है। इसीलिए क्रम-भंग की सृष्टि हुई है और इसी क्रम-भंग के फलस्वरूप न तो त्रिस्थान-प्राप्ति का प्रयोजन ही सिद्ध हो सका है और न ही सप्तस्वर-मूर्च्छनाओं के साथ सामंजस्य स्थापित हो सका है। अस्तु।

द्वादश-स्वर-मूर्च्छना का प्रयोजन मतंग ने तो 'त्रिस्थान-प्राप्ति' या 'मन्द्रमध्यतारसिद्धि' इतना ही कहा है। किन्तु कोहल और नन्दिकेश्वर के जो वचन उन्होंने इस प्रकरण में उद्धृत किए हैं, उनमें इस प्रयोजन के अतिरिक्त 'जाति रागादिसिद्धि' पर ही विशेष बल दिया गया है। इस द्वितीय प्रयोजन की सिद्धि भी द्वादश-स्वर-मूर्च्छना से होती है या नहीं, यह भी हम जांच लें। दोनों ग्रामों की जातियों में उन्होंने जिन-जिन मूर्च्छनाओं का उल्लेख किया है, वे निम्नोक्त सारिणी में दिखाई गई हैं। ध्यान रहे कि इस सारिणी में हम मतंग की कही हुई जातिगत मूर्च्छनाओं का यथावत् उल्लेख कर रहे हैं। ये मूर्च्छनाएं सप्त-स्वर की हैं या द्वादश स्वर की हैं, इस बारे में मतंग मौन हैं। इसलिए जिस द्वादश-स्वर-मूर्च्छना-पद्धति का उन्होंने विशेष रूप से प्रतिपादन किया है, उसी का ग्रहण जाति-प्रकरण में समझना क्रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त है। इसके अतिरिक्त यह स्पष्ट करना भी यहां आवश्यक है कि मतंग ने जातियों की मूर्च्छनाओं के नामों का दो प्रकार से उल्लेख किया है, कहीं 'ऋषभादि', 'पंचमादि', 'धैवतादि'—इस प्रकार के नाम दिए हैं तो कहीं परंपरागत सप्तस्वर-मूर्च्छना-नाम यथा-हृष्यका आदि प्रयुक्त किए हैं। इससे कुछ भ्रम हो सकता है कि कहां सप्तस्वर-मूर्च्छना समझी जाए और कहां द्वादश-स्वर समझी जाए। किन्तु उनके द्वादश स्वर मूर्च्छना के आग्रह को देखते हुए इन दोनों प्रकार के नामोल्लेख को निम्न सारिणी में उनके स्व-निर्मित द्वादश स्वर मूर्च्छना के क्रम से ही रखना हमने उचित माना है। उदाहरण के लिए यदि हृष्यका मूर्च्छना नाम कहा है तो उसका द्वादश-स्वर-मूर्च्छना रूप धैवत से आरंभ होता है और सप्तस्वर रूप पंचम से। हमने तदनुसार उसका द्वादश स्वर रूप धैवतादि रखा है और साथ ही पाठकों के सौकर्य के लिए प्रत्येक मूर्च्छना के सप्तस्वररूप का आरंभस्थान भी दिखा दिया है। तद्वत् जहां ऋषभादि मूर्च्छना कही है, वहां उसे द्वादश स्वर मूर्च्छना का नाम मानकर उसका सप्तस्वर-नाम तदनुसार कलोपनता दिखा दिया है। पाठक इसी प्रकार सभी मूर्च्छनाओं के लिए समझ लें। कुछेक जातियों की मूर्च्छनाओं का नामोल्लेख मतंग के बृहद्देशी के वर्तमान उपलब्ध पाठ में प्राप्त नहीं होता। ऐसे स्थलों पर प्रश्न चिन्ह लगाकर 'रत्नाकर' में प्राप्त उल्लेखों से पूर्ति कर ली गई है। 'रत्नाकर' में जातिगत मूर्च्छनाओं के विषय में मतंग की बृहद्देशी का ही अविकल अनुसरण स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए आज 'बृहद्देशी' के जो अंश इस प्रकरण में लुप्त है, उनकी पूर्ति 'रत्नाकर' के आधार पर निःसंदेह की जा सकती है।

मतंगोक्त जातिगत मूर्च्छनाएँ

जाति-नाम	ग्राम	मूर्च्छना का द्वादश-स्वर-नाम	द्वादश-स्वर के अनुसार सप्तस्वर-नाम	सप्तस्वर मूर्च्छना का अपना आरंभ स्थान	जाति का अपना न्यास स्वर
१. षाड्जी	षड्ज	धैवतादि	उत्तरमन्द्रा	षड्ज	षड्ज
२. आर्षभी	,,	पञ्चमादि	अभिरुद्गता	ऋषभ	ऋषभ
३. धैवती	,,	धैवतादि	उत्तरमन्द्रा	षड्ज	धैवत
४. नैषादी	,,	गान्धारादि	मत्सरीकृता	मध्यम	निषाद
५. षड्जकैशिकी	,,	?	—	—	गान्धार
६. षड्जमध्यमा	,,	मध्यमादि	अश्वक्रान्ता	गान्धार	षड्ज, मध्यम
७. षड्जोदीच्यवा	,,	गान्धारादि	मत्सरीकृता	मध्यम	मध्यम
८. गान्धारी	मध्यम	धैवतादि	हृष्यका	पञ्चम	गान्धार
९. मध्यमा	,,	? ऋषभादि	कलोपनता	ऋषभ	मध्यम
१०. पञ्चमी	,,	? ,,	,,	,,	पञ्चम
११ मध्यमोदीच्यवा	,,	मध्यमादि	मार्गी	निषाद	मध्यम
१२. गान्धारोदीच्यवा	,,	धैवतादि	हृष्यका	पञ्चम	मध्यम
१३. रक्तगान्धारी	,,	ऋषभादि	कलोपनता	ऋषभ	गान्धार
१४. कैशिकी	,,	गान्धारादि	शुद्धमध्यमा	षड्ज	ग, प, नि
१५. गान्धारपञ्चमी	,,	,,	,,	,,	गान्धार
१६. कार्मारवी	,,	षड्जादि	हरिणाश्वा	गान्धार	पञ्चम
१७. आन्ध्री	,,	मध्यमादि	मार्गी	निषाद	गान्धार
१८. नन्दयन्ती	,,	हृष्यका (धैवतादि)	हृष्यका	पञ्चम	,,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जातियों के स्वर-रूप का निर्णय कैसे किया जाए ? किस आधार पर किया जाए ? ऐसा अनुमान किया जाता है कि इसी प्रश्न के हल के लिए मतंग ने जातियों की मूर्च्छनाओं का उल्लेख किया है। यहां यह पुनः स्मरणीय है कि भरत ने शुद्धा जातियों में तो उनके नाम-स्वरों को ही ग्रह-अंश, न्यास कहकर और न्यास को अपरिवर्तनशील बताकर उन-उन न्यास-स्वरों द्वारा ही अपनी अभिप्रेत जातिगत मूर्च्छनाओं का निर्देश कर दिया है। किन्तु मतंग ने उपर्युक्त भरत-व्यवस्था का यथावत् उल्लेख करके भी शुद्धा और संसर्गजा जातियों की भिन्न-भिन्न मूर्च्छनाओं का स्वतन्त्र रूप से निरूपण किया है और इन मूर्च्छनाओं का न्यास-स्वर के साथ कोई सामंजस्य नहीं है।

उपसंहार

मतंगकथित मूर्च्छनाएं भरतोक्त न होने पर भी उनके स्वीकार में हमें आपत्ति न होती यदि हमें उन मूर्च्छनाओं द्वारा प्राप्त स्वरावलियों में शुद्धा जातियों के रूपों का और उनके संसर्ग से बनी हुई संसर्गजा जातियों के समवायी रूपों का यथायथ दर्शन उपलब्ध होता। किन्तु मतंग की जातिगत मूर्च्छनाओं का विभिन्न पहलुओं से जो दर्शन हमने ऊपर किया, तदनुसार भरत के अनुयायी का यही कर्तव्य है कि वह उन्हीं की परंपरा का अनुसरण करे और उनकी प्रतिपादित न्यास स्वर की अपरिवर्तनशीलता, जो मतंग को भी मान्य है, उसके आधार पर न्यास स्वर को ही जाति के स्वर-रूप का नियामक माने। इस सिद्धान्त के अनुसार हम इसके पूर्व जातियों का विवरण दे ही चुके हैं।

यह भी सत्य है कि मतंग का 'बृहद्देशी' आज जिस रूप में उपलब्ध है; उसमें पाठ अतिशय भ्रष्ट और अपूर्ण है; यहां तक कि कई पृष्ठ के पृष्ठ लुप्त हैं। मतंग के इस जाति-प्रकरण की वर्तमान दुरूहता के लिए यह वस्तुस्थिति भी पर्याप्त मात्रा में उत्तरदायी है। इसलिए जब हम इस प्रसंग में प्राप्त उल्लेखों से मतंग का सिद्धान्तपक्ष समझने की असमर्थता प्रकट करते हैं, तब इस कथन में ग्रन्थकार के प्रति अनादर की कोई भावना नहीं है। उनके प्रति हमें सम्पूर्ण समादर है। सत्य का प्रकाश हम उन्हीं के उल्लेखों में खोजते हैं। हां, जहां-जहां कठिनाइयां हों वहां उन्हें स्पष्ट कर देना तो हमारा कर्तव्य हो जाता है।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इस वैदिक प्रार्थना के अनुसार हम भी प्रकाश पाने के लिए प्रार्थना करते हैं और जो कुछ आलोक प्राप्त हो उसे सानुनय वितरित करने के बल की कामना करते हैं। इसलिए जिस सत्य की जैसी उपलब्धि हुई है, यत्नपूर्वक जो जैसा समझ में आया है, उसे उसी रूप में रख देने के कर्तव्य का पालन कर रहे हैं।

इस प्रकरण के उपसंहार में मतंगोक्त द्वादश स्वर मूर्च्छना पर भी अपना मन्तव्य देना हम आवश्यक समझते हैं। हमने देखा कि मतंगोक्त द्वादश स्वर मूर्च्छना से किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। त्रिस्थान-प्राप्ति की दृष्टि से भी यह द्वादश स्वर विधान अनावश्यक ठहरता है, क्योंकि सप्तस्वर मूर्च्छना में भी तारमंद्रादि को सिद्धि के लिए उन्हीं स्वरों का तीनों सप्तकों में उपयोग किया जा सकता है। जिसकी सहज उपलब्धि सप्तस्वर मूर्च्छनाओं में ही परंपरा से प्राप्त है, उसके लिए द्वादश स्वर मूर्च्छना का विधान आवश्यक नहीं ही है। हमने यह भी देखा कि जातियों के स्वररूप निर्धारित करने में भी द्वादश स्वर मूर्च्छना की कोई उपयोगिता नहीं है; इसलिए हम भरतोक्त सप्तस्वर मूर्च्छनाओं को ही ग्राह्य मानते हैं। मतंग के परवर्ती जिन आचार्यों ने उनकी द्वादश स्वर मूर्च्छना को अग्राह्य माना है, उनमें से 'संगीतराज' के रचयिता कुम्भा राणा के शब्द निम्नोक्त हैं :—

अत्र याः मूर्च्छनाः प्राह द्वादशस्वरसंभवाः। मतङ्गस्तन्मतं नैव सुन्दरं प्रतिभाति मे ॥
अत्रैव कोहलाचार्यो नन्दिकेश्वर एव च। मतङ्गमनुसृत्यैवोचतुस्तदिह वर्ण्यते ॥
द्वादशस्वरसंपन्ना ज्ञातव्या मूर्च्छना बुधैः। जातिभाषादिसिद्ध्यर्थं तारमन्द्रादिसिद्धये ॥
त्रिस्थानप्राप्तिसिद्ध्यर्थं द्वादशस्वरमूर्च्छना। प्रयोक्तव्यान्यथा चोक्षपाडवो नैव सिद्ध्यतति ॥
त्रिस्थानप्राप्तिपर्यन्तं यावद्रागो न मूर्च्छति। न तावत्तच्छरीरस्य लाभः संजायते विदाम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न च सप्तस्वरैरेव त्रिस्थानव्याप्तिसंभवः । अत्र प्रतिसमाधत्ते खुम्भाणकुलनन्दनः ।।
क्रमात्स्वराणामारोहावरोहौ मूर्च्छनेति यत् । लक्षणं तद् विहन्येत् क्रमादारोहणाहते ।।
यद्युक्तं जातिभाषादितारमन्द्रादिसिद्धये । द्वादशस्वरगुम्फेन मूर्च्छना स्यात्प्रयोजिका ।।
नन्दयन्त्यां तदव्याप्तेः तत्पञ्चदशसंभवात् । षाडवौडुवितास्त्रतिव्याप्तिर्लोप्यादिसंभवात् ।।
असंभवाद्गतार्थत्वात्तारमन्द्रावधौ कृते । न तावत् क्रमतोच्चारे रक्तिः कुत्रापि जायते ।।
विसंवादिसमावेशाद्रक्तिभङ्गो यतः स्मृतः । ईषत्स्पर्शोल्लङ्घनाद्यैः क्रमभङ्गस्य शासनात् ।।
कूटतानोपयोगित्वं मुख्यमासां प्रयोजनम् । न रागजनिरेषातश्चोर्त्री सप्तस्वरेरिता ।।

(संगीतराज, गीतरत्नकोश, स्वरगतोल्लास ३५२-६४)

अर्थात्—"मतंग ने जो द्वादशस्वर-मूर्च्छना कही हैं, वह मुझे 'सुन्दर' (उचित) प्रतीत नहीं होती। कोहलाचार्य और नन्दिकेश्वर ने मतंग के मत का अनुसरण करके जो कुछ कहा है* वह इस प्रकार है—'बुधजनों को जातिभाषादि सिद्धि के लिए और तारमन्द्रादि-त्रिस्थान की सिद्धि के लिए द्वादशस्वर-मूर्च्छना प्रयुक्त करनी चाहिए। जब तक राग का त्रिस्थान में विस्तार न किया जाए तब तक उसका शरीर (रूप) बुधजनों को प्रतीतिगोचर नहीं हो सकता। सप्तस्वरों से त्रिस्थान व्याप्ति संभव नहीं होती, अतः द्वादशस्वरमूर्च्छना आवश्यक है।' इसका समाधान यह है—'मूर्च्छना का लक्षण है—क्रम से सप्तस्वरों का आरोहावरोह। इस लक्षण का द्वादशस्वर-मूर्च्छना में हनन हो जाता है, क्योंकि उसमें क्रम से सप्त स्वरों का आरोहावरोह नहीं होता। यह जो कहा गया है कि जाति-भाषादि-सिद्धि के लिए द्वादशस्वर मूर्च्छना आवश्यक है—वह भी यथार्थ नहीं है, क्योंकि नन्दयन्ती जाति में द्वादश-स्वर से भी काम नहीं चलता, पञ्चदश स्वरों से नन्दयन्ती की सिद्धि होती है। साथ ही यह भी विचारणीय है कि पाडव-औडव जाति-भेदों में लोप्य स्वरों की गिनाई न होने से द्वादशस्वर मूर्च्छना ढाई या तीन सप्तकों में व्याप्त हो जाएगी। यदि लोप्य स्वरों की भी गिनाई की जाए तो फिर पाडव-औडव जातियों या रागों की सिद्धि नहीं हो सकेगी। इस प्रकार द्वादशस्वर मूर्च्छना-पद्धति नन्दयन्ती के प्रसंग में अव्याप्ति-दोष-युक्त है और पाडव-औडव जातियों या रागों के लोप्य स्वरों के प्रसंग में यह अतिव्याप्ति दोष-युक्त है। इन दोषों के अतिरिक्त विसंवादि-अन्तरालों के समावेश के कारण इस मूर्च्छना-पद्धति में रक्तिभङ्ग भी होता है। अतः द्वादशस्वर मूर्च्छना का केवल कूटतान में उपयोग हो सकता है। उनसे 'राग' की उत्पत्ति संभव नहीं है। अतः सप्तस्वर मूर्च्छना ही ग्राह्य है' (द्वादशस्वर नहीं)।"

शार्ङ्गदेव

मतंग के पश्चात् शार्ङ्ग देव के 'संगीत रत्नाकर' का उल्लेख क्रम प्राप्त है। 'संगीत रत्नाकर' के जाति-प्रकरण को देखने से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि शार्ङ्ग देव ने इस संबंध में मतंग का ही अनुसरण किया है। हम देख आये हैं कि शार्ङ्ग देव के पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों में जातियों की मूर्च्छनाओं का उल्लेख मतंग ने ही किया है। 'रत्नाकर' में उसी उल्लेख का अविकल अनुसरण मिलता है। उदाहरणार्थ षाड्जी जाति के लिये 'मूर्च्छना धैवतादिका' इन शब्दों का शार्ङ्गदेव ने मतंग के अनुसार प्रयोग किया है। षाड्जी जाति शुद्धा जातियों में प्रथम है। शुद्धा जातियों की व्याख्या देते हुए यह स्पष्ट कहा गया है कि उनके ग्रह, अंश और न्यास उनके अपने नाम-स्वर से ही होते हैं। इस कथन से यह स्पष्ट है कि षाड्जी जाति का ग्रह, अंश और न्यास षड्ज ही है। यह होते हुए भी इसकी मूर्च्छना धैवतादिका क्यों कही गई ? ग्रह, अंश या न्यास—इन तीन में से जो भी जाति के स्वर रूप का नियामक माना जाए वहीं से, उसी स्वर से मूर्च्छना कहनी

---

* वास्तव में तो मतंग ने द्वादशस्वर मूर्च्छना के प्रकरण में कोहल और नन्दिकेश्वर को पूर्वाचार्य मानकर उनका मत उद्धृत किया है। ऐसी अवस्था में कुम्भ का यह कथन कि मतंग के मत का अनुसरण कोहल और नन्दिकेश्वर ने किया है, चिन्त्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिए। अर्थात् षाड्जी की मूर्च्छना षड्ज से ही कहनी चाहिए। उसके स्थान पर धैवतादि मूर्च्छना कहने का क्या तात्पर्य है ? उसी प्रकार 'आर्षभी' की मूर्च्छना 'पंचमादि', 'गान्धारी' की 'धैवतादि', मध्यमा की 'ऋषभादि', 'पंचमी'—'धैवती' की 'ऋषभादि', नैषादी की 'गांधारादि'—यों जातियों को मूर्च्छनायें शार्ङ्गदेव ने कही हैं।

जातियों के स्वर-रूप का निर्णय किस आधार पर हो यानी उनमें प्रयुक्त स्वरों के अंतराल कैसे रहेंगे, यह किस प्रकार निश्चित किया जाए ? दो ग्रामों की मूर्च्छना विभिन्न अन्तरालों की द्योतक हैं। शार्ङ्गदेव ने तो अपने ग्रन्थ में मूर्च्छनाओं के अतिरिक्त स्वरों के शुद्ध-विकृत भेद भी कहे हैं। उनमें से उन उन जातियों में कौन से शुद्ध विकृत स्वर प्रयुक्त होंगे इसकी कोई स्पष्टता इन्होंने नहीं की है। यदि उनकी कही हुई जातिगत मूर्च्छनाओं को जातियों के स्वर-रूप का निर्णायक मान लें तो षाड्जी की धैवतादि मूर्च्छना कहने से षाड्जी के ग्रह अंश और न्यास जो षड्ज ही हैं उसकी संगति कैसे बैठेगी ? साथ ही यह भी स्मरणीय है कि एक ही धैवतादि या ऋषभादि मूर्च्छना को कई जातियों के साथ संबद्ध दिखाया गया है। इससे स्पष्ट है कि जातिगत मूर्च्छनाओं को जातियों के स्वर-रूप का निर्णायक मानने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। साथ ही यह भी हमें कहना पड़ता है कि स्वकल्पित और कथित शुद्ध विकृत स्वरों का भी जातियों के स्वर-रूप स्पष्ट करने के लिये उपयोग नहीं किया है। ऐसा उपयोग यदि किया होता तो अनुमान करने के लिए कुछ आधार मिल जाता।

शार्ङ्गदेव ने भिन्न-भिन्न जातियों के स्वर-प्रस्तार के साथ-साथ गीत भी दिये हैं, जो उनके पूर्ववर्त्ती किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं हैं। * 'रत्नाकर' के ये जाति गीत मतंगोक्त जाति प्रस्तारों के स्वरों में ही अविकल रूप से जड़ित हैं; पाठकों के सौकर्य के लिये यहां हम उनके कुछ जातिगीत उद्धृत करते हैं और साथ ही मतंग के जाति प्रस्तार भी दे रहे हैं।

शुद्धा जातियाँ—मतंग की शुद्धा जातियों के विवरण में स्वर-प्रस्तार प्रायः उपलब्ध नहीं है, किन्तु संसर्गजा जातियों में शार्ङ्गदेव द्वारा मतंग का जिस प्रकार का अविकल अनुसरण पाया जाता है उससे यह मानने में कोई बाधा नहीं रह जाती है कि शुद्धा जातियों के प्रस्तार-गीत भी मतंग के प्रस्तारों के अनुसार ही बनाये गये होंगे। सर्वप्रथम हम षड्जग्राम की षाड्जी और मध्यमग्राम की गान्धारी इन दो जातियों के प्रस्तार गीत यहां उदाहरणार्थ उद्धृत कर रहे हैं।

षाड्जी

मतंग

तत्र षाड्ज्याः षड्जग्रामसम्बन्धाया अंशा ग्रहाः पञ्च भवन्ति। तद्यथा षड्जगान्धारमध्यमपञ्चमधैवता (ग्रहाः अंशा ?) ग्रहा अंशाश्च। गान्धारपञ्चमावपन्या (सो ? सौ)। निषादहीना षाडवा षड्जो न्यासः। षड्जगान्धारयोः षड्जधैवतयोश्च सङ्गतिः। गान्धारोऽतिवेलापित्वात्। परस्परगमनं च सङ्गतिः। पञ्चस्वरपरा तारगतिः। षड्ज-स्वरात् परा वा म (न्त्र ? न्द्र) गतिः। षड्जधैवतयोश्च औडुवित्वं च सर्वथैव नास्ति। सम्पूर्णा षाडवा। यदा सम्पूर्णा गीयते तदा ऋषभपञ्चमयोर्निषादपञ्चमयोरल्पत्वं कार्यम्। कुतः—

शार्ङ्गदेव

षाड्ज्यामंशाः स्वराः पञ्च निषादर्षभवर्जिताः।
निलोपात्षाडवं सोऽत्र पूर्णत्वे काकली क्वचित् ॥६०॥
सगयोः सधयोश्चात्र संगतिर्बहुलस्तु गः।
गांधारेंऽशे न नेर्लोपो मूर्च्छना धैवतादिका ॥६१॥
त्रिधा तालः पञ्चपाणिरत्र चैककलाऽऽदिकः।
क्रमान्मार्गाश्चित्रवृत्तिदक्षिणा गीतयः पुनः ॥६२॥
मागधी संभाविता च पृथुलेति क्रमादिमाः।
नैष्क्रामिकध्रुवायां च प्रथमे प्रेक्षणे स्मृतः ॥६३॥
विनियोगो द्वादशात्र कला अष्ट लघुः कला।

---

* नान्यदेव के 'भरतभाष्य' में वही जातिगीत उल्लिखित हैं, जो कि शार्ङ्गदेव ने दिए हैं। किन्तु नान्यदेव का काल अभी निश्चित नहीं हो पाया है; इसीलिए उपरिलिखित सामान्य उल्लेख कर दिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यं विना हीनता यस्यां स्यात् चेत्तस्यां तु सोऽल्पकः। इति वचनात्। य (था ? दा) षाडवा गीयते तदा ऋषभस्याल्पत्वं कार्यम्। शेषाणां स्वराणां बहुत्वम्। अस्याश्च दशांशकाः। तद्यथा। शुद्धा विकृताश्च पञ्चपूर्णा-श्चत्वारः षाडवाः गान्धारेंऽशे षाडवापवादात् तेनांशाः स्फुटयन्ते तेन लिखिताः षड्जांशेन शुद्धत्वं षड्जश्चापन्यासः सम्पूर्णावस्था-यामष्टविधलक्षणम्। षाडवावस्थायां न (य ? व) विधत्वम्। शुद्धां परित्यज्य चतुर्विधा षाड्जी विकृता बोद्धव्या। अस्याश्च धैवतादिमूर्च्छना पञ्चपाणिश्चित्रे मार्गे मागधी गीतिः पञ्चपाणिद्विकलः वार्तिकमार्गे सम्भाविता गीतिश्चतुष्कलः पञ्चपाणिः दक्षिणे मार्गे पृथुला गीतिः। अनेन क्रमेण सर्वासां जातीनां बोद्धव्यम्। वीररौद्राद्भुता रसाः कार्याः। प्रथमोपक्षेपगे ध्रुवागाने विनियोगः॥

अस्यां षाड्ज्यां षड्जो न्यासः। गांधारपञ्चमा-वपन्यासौ। वराटी दृश्यते। अस्याः प्रस्तारः :—

१. षाड्जी

१. सा सा सा सा पा निध पा धनि
तं भ व ल ला ट

२. री गम गा गा सा रिग धस धा
न य नां बु जा धि

३. रिग सा री गा सा सा सा सा
कं

४. धा धा नी निसं निध पा सां सां
न ग सू नु प्र ण य

५. नी धा पा धनि री गा सा गा
के लि स मु द्भ

६. सा धां धंनि पां सा सा सा सा
वं

७. सा सा गा सा मा पा मा मा
स र स क्ष त ति ल क

८. सा गा मा धनि निध पा गा रिग
पं का नु ले प

९. गा गा गा गा सा सा सा सा
नं

१०. धां सा री गरि सा मा मा मा
प्र ण मा मि का म

११. धा नी पा धनि री गा री सा
दे हें ध ना न

१२. रिग सा री गा सा सा सा सा
लं

टिप्पणी षाड्जी जाति के प्रस्तार गीत की टीका में कल्लिनाथ ने स्वरों के 'अल्पत्व-बहुत्व-परिज्ञान' के लिए गीत के अन्तर्गत आए हुए स्वरों की संख्या का निर्देश किया है। यथा—षड्ज ३६, ऋषभ १२, गान्धार २४, मध्यम ८, पंचम ८, धैवत १६, निषाद १२—और यह भी कहा है कि प्रस्तुत गीत का षोडश कला-प्रस्तार षड्जांश षाड्जी का है। प्रत्येक कला में स्वरों की कितनी मात्रा हैं, कौन-सा स्वर लघु है, कौन सा गुरु है, यह भी कल्लिनाथ ने प्रत्येक जातिगीत की टीका में विस्तारपूर्वक बताया है।

षाड्जी की मूर्च्छना 'धैवतादि' कही गई है। क्यों? 'षड्जादि' क्यों नहीं? इस प्रश्न के साथ ही यह भी विचारणीय है कि शार्ङ्गदेव की कही हुई 'धैवतादि' मूर्च्छना का भी तो दिए हुए प्रस्तार-गीत में कोई प्रतिनिधित्व दिखाई नहीं देता।

जाति गीत में प्रयुक्त स्वरों की संख्या निर्दिष्ट करने से कौन सा प्रयोजन सिद्ध होता है? अल्पत्व बहुत्व का परिज्ञान तो प्रयुक्त स्वरों की इस सापेक्ष स्थिति से समझा जा सकता है। अर्थात् कौन स्वर अधिक बार या न्यून बार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयुक्त हुआ है इसकी गिनाई से अल्पत्व बहुत्व का स्थूल परिज्ञान हो जाता है, किन्तु ग्रहत्व अंशत्व न्यासत्व का परिज्ञान कैसे हो ? यदि इन्हीं संख्याओं के आधार पर ग्रहत्व, अंशत्व न्यासत्व का भी निर्णय करने का यत्न किया जाय तो वह भी समीचीन नहीं होगा, क्योंकि ग्रंथकार इसके लिये मौन हैं और टीकाकार ने स्वयं "अल्पत्वबहुत्वपरिज्ञानार्थं" ही कह कर संख्या निर्देश किया है, ग्रहत्व अंशत्व आदि के परिज्ञानार्थ नहीं। मान लें कि गीत के आरंभ में चार बार 'सा' रहने के कारण 'सा' को ग्रहत्व प्राप्त है, किन्तु इसी गीत की अन्य कलाएं अन्यान्य स्वरों से आरंभ होती हैं; वहां ग्रहत्व का क्या होगा ? षाड्जी के शुद्ध स्वरूप में तो ग्रह अंश न्यास आदि सभी कुछ षड्ज ही है। उन सबका निदर्शन या प्रतिनिधित्व कहां, कैसे समझा जाए ? पूरे गीत में ३६ बार षड्ज का प्रयोग हुआ है; इसीलिए अंशत्व न्यासत्व आदि षड्ज में ही आरोपित किये जाएं क्या ? जिस प्रकार गीत की कई एक कड़ियां षड्ज से भिन्न स्वरों से आरंभ की गई हैं, उसी प्रकार षाड्जी के अन्य गीत अन्य स्वरों से आरंभ नहीं किए जा सकते क्या ? यदि नहीं, तो इसका अर्थ स्पष्ट है कि केवल गीत के आरंभ के स्वर को ही ग्रहत्व प्राप्त है और इससे अधिक और कोई महत्व 'ग्रह' को प्राप्त नहीं है। यदि ऐसा ही मान लें तो गीत रचना के वैविध्य का लोप हो जाएगा। दूसरी ओर हम देखते हैं कि षाड्जी के गीत में बीस बार गान्धार, सोलह बार धैवत, बारह-बारह बार ऋषभ निषाद और आठ-आठ बार मध्यम पंचम का प्रयोग हुआ है। ग्रह, अंश, न्यास, षड्ज की अपेक्षा से इन स्वरों की स्थिति कैसे समझी जाय ?

षाड्जी जाति के प्रस्तार-गीत की टीका के अन्त में कल्लिनाथ ने कहा है :—

अयं प्रस्तारः षड्जांशत्वे गान्धाराद्यंशत्वेऽप्येवमेवांशबहुत्वादिना सम्यग्विचार्योद्धारो नेयः। गान्धाराद्यंशत्वमपि स्वस्थानस्थितानामेव। तेषां स्थायित्वकरणमपि वीणायामुपतन्त्रीणां स्वनादसाम्यापादनमिति रहस्यम्।

अर्थात् यह प्रस्तार ('तं भवललाट' वाला) षड्जांश षाड्जी का है। गान्धारादि जब अंश बनाए जाएं तब भी इसी प्रकार बहुत्वादि से सम्यक् विचार करके, प्रस्तार बना लेना चाहिए। गान्धारादि का अंशत्व भी उनके स्वस्थानस्थित होने पर ही होता है। उन (गान्धारादि) का स्थायित्व-करण यानी उन्हें स्थायी बनाना भी वीणा की उपतन्त्रियों (चिकारियों) को (उन-उन स्वरों के) स्वनाद में स्थित करना ही है। यह रहस्य है।

इस उद्धरण का तात्पर्य यह है कि जब, जिस स्वर को अंशत्व देना हो यानी उसे 'स्थायी' स्वर बनाना हो तब उसी स्वर में वीणा की उपतन्त्रियां (चिकारियां) मिला ली जाएं। इस प्रकार भिन्न २ अंश स्वरों में चिकारियां मिलाने का विधान कहां तक और किस प्रकार क्रियाग्राह्य हो सकता है, उस पर विचार करें।

हम जानते हैं कि 'रिगमपधनि'—इन छः स्वरों का जनक षड्ज है। षड्ज के निरन्तर गुंजन से ही उसके अनुपात से अन्य स्वरों की स्थिति सिद्ध होती है। इसलिए किसी भी वीणा में मुख्य तन्त्रियों में से कम से कम दो तन्त्रियां अवश्य षड्ज में मिलाई जाती हैं। उसी षड्ज के परिपोष के लिए चिकारियों में भी एक अथवा दो तारों पर षड्ज निनादित होता रहे ऐसी व्यवस्था रखी जाती है। आज के व्यवहार से हम यह भी जानते हैं कि राग के अंश स्वर के प्रतिघोष के लिए पंचम, मध्यम, अथवा गान्धार, निषाद जैसे स्वरों को भी चिकारियों में स्थान देने की क्रिया विशिष्ट गुणिजनों में पाई जाती है। जैसे तानपुरे के प्रथम तार को पंचम, मध्यम अथवा गान्धार, निषाद में—राग के अंश (प्रमुख) स्वर के अनुसार मिलाया जाता है, उसी प्रकार चिकारियों को भिन्न २ स्वरों में मिलाने की विधि भी समझी जा सकती है और व्यवहार्य भी हो सकती है। पंचम, मध्यम का षड्ज के साथ संवाद-संबन्ध तो सर्वविदित है ही, सप्तश्रुति गान्धार का भी षड्ज से, पंचम से या निषाद से संवाद है; तद्वत् निषाद का पंचम से और गान्धार से संवाद-संबन्ध प्राकृतिकरीत्या स्थापित है। इस प्रकार, भिन्न २ स्वरों में चिकारियां मिलाने का क्षेत्र सीमित है, क्योंकि उसमें संवादतत्त्व की अनिवार्य आवश्यकता है। उदाहरणार्थ तीव्र मध्यम अथवा कोमल ऋषभ में चिकारियां मिलाना ग्राह्य नहीं हो सकता।

उपर्युक्त दृष्टि से यह विचारणीय है कि षड्जग्रामिक अथवा मध्यमग्रामिक पंचश्रुति गान्धार-निषाद में चिकारियां मिलाने पर वीणा का संवाद-तत्त्व किस प्रकार स्थिर रह सकेगा ? पंचश्रुति गान्धार निषाद का तो षड्ज और पंचम—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों के साथ सम्बन्ध है, इसलिये उनमें चिकारियाँ मिलाने की गुंजाइश समझी जा सकती है (यद्यपि ऐसा व्यवहार नहीं है,) किन्तु षड्जग्रामिक अथवा मध्यमग्रामिक गान्धार-निषाद में चिकारियाँ मिलाना न सहज है, न प्राकृतिक संवादसिद्ध है और न ही कर्णप्रिय हो सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उभयग्रामिक जातियों के सभी अंश स्वरों में चिकारियाँ मिलाने की क्रिया व्यवहारगत नहीं हो सकती।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भिन्न २ स्वरों में चिकारियाँ मिलाने पर भी षड्ज के स्थान में कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता। जैसे आज भी राग के अंश (प्रमुख) स्वर के परिपोष के लिए चिकारियों अथवा तरफ़ों के तारों को छेड़ दिया जाता है, कुछ वैसा ही अभिप्राय यदि कल्लिनाथ के ऊपर उद्धृत विधान का हो तब तो वह उपर्युक्त संवाद-मर्यादा के भीतर क्रियाग्राह्य हो सकता है। किन्तु यदि कोई उसका यह अर्थ लगाए कि चिकारियों में अंश स्वरों को षड्जस्थानीय मानकर तदनुसार स्वर-व्यवहार करना है तो वह अर्थ क्रियापक्ष की दृष्टि से अव्यवहार्य ही कहा जाएगा।

कल्लिनाथ का उपर्युक्त विधान एक अन्य दृष्टि से भी चिन्त्य है। एक-एक जाति में चार, पांच, छः या सात तक जो अंश स्वर माने हैं, उन सभी को अंशत्व देकर उनमें चिकारियाँ मिलाना और वीणा-वादन करना भला कैसे संभव हो सकता है? एक साथ तो अधिक से अधिक दो स्वरों में ही चिकारियाँ मिलाई जा सकती हैं और उन दोनों में भी संवाद की अनिवार्य शर्त तो है ही। एक के बाद एक स्वर को अंश बनाकर भी तुरन्त चिकारियां कैसे मिलाई जाएंगी? वादन-क्रिया के बीच-बीच में उस प्रकार मिलाने बैठना कैसे संभव होगा? यह कहा जा सकता है कि उस अवस्था में शुद्धा जातियों में क्रमशः अंश परिवर्तन से षड्जांश षाड्जी, गान्धारांश षाड्जी, मध्यमांश षाड्जी, धैवतांश षाड्जी—यों शुद्धा जातियों के शुद्ध-विकृत भेदों को एक के बाद एक लिया जा सकता है। यानी एक समय पर एक ही स्वर को अंशत्व देकर भी वादन किया जा सकता है। किन्तु, संसर्गजा विकृता जातियों में एकाधिक जातियों का संसर्ग एक साथ कैसे दिखाया जाएगा? जातियों के समवायी रूपों का निर्माण इस विधि में कैसे किया जाएगा?

कल्लिनाथ का ऊपर उद्धृत रहस्योद्घाटन इन सब प्रश्नों का जनक है, जिनके समाधान के बिना यह विधान क्रिया में ग्राह्य नहीं हो सकता। गुणिजन ऊपर उल्लिखित दृष्टियों से स्वयं इस विधान की ग्राह्यता जांच सकते हैं और निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

गान्धारी

मतंग

तत्र गान्धार्यां गान्धारषड्जमध्यमपञ्चमनिषादा ग्रहाः त एवांशा। पञ्चस्वरपरस्तारः न्यासपरस्तत्परो वा मन्द्रः। ऋषभहीनं षाडवम्, ऋषभधैवतहीनमौडुवितम्। पूर्णावस्थाया-मृषभधैवतयोरल्पत्वं शेषाणां बहुत्वम्। स्वरजातित्वाद् गान्धारो न्यासः। षड्जमध्यमावपन्यासौ धैवतर्षभयोः सङ्गतिः। तद्यथा—गान्धारी यदा सम्पूर्णा गीयते तदा मधारिगा इति गायन्ति इति प्रयो (गि? गः) स्यात्। यदा ऋ (ष) भहीना गीयते धरस्वरप्रवेशनं (?) मधाधागा इति प्रयोगः स्यात्। यदा औडुविता गीयते तदा उत्तर (स्वर?) स्वरप्रवेशे मागागा इति प्रयोगः स्यात्. मापरिध इति प्रयोगः कदाचिदपि न स्यात्। दशविधत्वमस्याः

शार्ङ्गदेव

अथ गांधारी

पञ्चांशा रिधवर्ज्याः स्युर्गांधार्यां संगतिः पुनः।
न्यासांशाभ्यां तदन्येषां धैवताद्दृषभं व्रजेत् ॥६७॥
रिलोपरिधलोपाभ्यां षाडवौडुविते क्रमात्।
पञ्चमः षाडवद्वेपी निसमध्यमपञ्चमाः ॥६८॥
अंशाद्विपन्त्यौडुवितं कलाः षोडश कीर्तिताः।
मूर्च्छना धैवतादिः स्यात्तालश्चचत्पुटो मतः ॥६९॥
विनियोगो ध्रुवागाने तृतीयप्रेक्षणे भवेत्।

अस्यां गांधार्यां गांधारो न्यासः। षड्जपञ्चमावपन्यासौ। गांधारपञ्चमदेशीवेलावल्यो दृश्यन्ते। अस्याः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकादशांशकाः शुद्धा विकृताः पूर्णा पञ्चचत्वारः षाडवा औडुवित एकः मूर्च्छना धैवतादिः चञ्चत्पुटस्तालः एककलविधः चित्रमार्गे मागधी द्विकले वार्त्तिके सम्भाविता चतुष्कले दक्षिणे पृथुला रसः करुणः मात्रा दक्षिणे वार्तिके चित्रे कला ध्रुवागाने तृतीयप्रेक्षणके विनियोगः।

प्रस्तारः—

३. गांधारी

१. गा गा सा नीं सा गा गा गा
ए तं

२. गा गम पा पा धप मा निध निसं
र ज नि व धू मु ख

३. निध पनि धा मपरि गा गा गा गा
वि भ्र म दं

४. गा गम पा पा धप मा निध निसं
नि शा म य व् रो रु

५. निध पनि मा मपरि मा गा मा सा
त व मु ख वि ला स

६. गा सा गा गा गा गम गा गा
व पु श्चा रु म म ल

७. गा गम पा पा धप मा निध निसं
मृ दु कि र ण

८. निध पनि मा मपरि गा गा गा गा
म मृ त भ वं

९. री गा मा पध री गा सा सा
र ज त गि रि शि ख र

१०. नीं नीं नीं नीं नीं नीं नीं नीं
म णि श क ल शं ख

११. गा गम पा पा धम मा निध निसं
व र यु व ति दं त

१२. निध पनि मा मपरि गा गा गा गा
पं क्ति नि भं

१३. नी नी पा नी गा मा गा सा
प्र ण मा मि प्र ण य

१४. गा सा गा गा गा गम गा गा
र ति क ल ह र व नु

१५. गा पा मा मा निध निसं निध पनि
दं

१६. मा परिग गा गा गा गा गा गा
श शि नं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गान्धारी में भी षाड्जी के सदृश धैवतादि मूर्च्छना ही कही है। जो उलझनें और प्रश्न हम षाड्जी के प्रकरण में व्यक्त कर आये हैं वही गांधारी में भी लागू होते हैं।

अब हम संसर्गजा जातियों में से सर्वप्रथम षड्जग्राम की षड्जमध्यमा जाति को ले लें। षड्जमध्यमा में सप्तस्वर ग्रह अंश हैं और षड्ज-मध्यम न्यास हैं। इसमें षाड्जी और मध्यमा जाति का संसर्ग है। यह जाति सर्वस्वरसाध्या कही गई है क्योंकि सभी स्वरों को इसमें अंशत्व प्राप्त है। जब जो स्वर अंशत्व पाएगा, उसी स्वर के अपने रस के अनुसार जाति की रस-निष्पत्ति होगी, ऐसा शास्त्र-वचन है। यहां भी हम शार्ङ्गदेव और मतंग के दिए हुए जाति-लक्षणों के साथ साथ मतंगोक्त प्रस्तार और 'रत्नाकरोक्त' जाति-गीत भी दे रहे हैं।

संसर्गजा विकृता जातियां

षड्जमध्यमा

मतंग

(षट् ? अंशाः) सप्त स्वराः षड्जमध्यमाया मिथश्च ते ॥
सङ्गच्छन्ते निरल्पोंऽशा (गा ? ङ्गा) हते वा (नि ? दि) तां विना ।
निलोपे निगलोपे च षाडवौडुविते मते ॥ ५३॥
षाडवौडुवयो स्यातां द्विश्रुती तु विरोधिनौ ।
गीतितालकलादीनि षाड्जीवन्मूर्छना पुनः ॥२५ ॥
मध्यमादिरिह ज्ञेया पूर्ववद् विनियोजनम् ।
अस्यां षड्जमध्यमौ न्यासौ । सप्त स्वरा अपन्यासाः ।

प्रस्तार :—

मागासगप (धप) मानिधनिमा (१)।
मामासरी गरिनि (ध) पधापा (२)।
मागारीगा मामासासा (३)।
धागधपरिरिगगरिगसधसधा । रिगरिगसासा ।
सासारिगरिग (५) (?) ।
निधधरीमम मामामामा (६)।
मांमांमगमम पपधपनिमग (७)।
धाधधपरिगम गारिगस+सग (८)।
मामाधनिधस धपपमपापा (९)।
मामगमामा पधपमगमगस (१०)।
धागधपरिरिगगरिगसधस (११)।
निधसरिमगममांमांमामा षड्जमध्यमा । स ॥

शार्ङ्गदेव

अथ षड्जमध्यमा

अंशाः सप्त स्वराः षड्जमध्यमायां मिथश्च ते ॥
संगच्छन्ते निरल्पोंऽशाद्गादृते वादितां विना ।
निलोपनिगलोपाभ्यां षाडवौडुविते मते ॥८६॥
षाडवौडुवयोः स्यातां द्विश्रुती तु विरोधिनौ ।
गीतितालकलाऽऽदीनि षाड्जीवन्मूर्च्छना पुनः ॥
मध्यमादिरिह ज्ञेया पूर्ववद्विनियोजनम् ।

अस्यां षड्जमध्यमायां षड्जमध्यमौ न्यासौ । सप्त स्वरा अपन्यासाः । अस्याः

प्रस्तार :—

१०. षड्जमध्यमा

१. मा गा सग पा धप मा निध निम
र ज नि व घू मु ख

२. मां मां सां रिंगं मंगं निध पध पा
वि ला स लो . च

३. मा गा री गा मा मा सा सा
नं

४. मा मगम मा मा निध पध पम गमम
प्र वि क सि त कु मु द

५. धा पध परि रिग मग रिग सधस सा
द ल फे न सं नि

६. निध सा री मगम मा मा मा मा
भं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७. मां मां मंगंमं मंधं धंपं पंधं पंमं गंमंगं
का मि ज न न य न

८. धा पध परि रिग मग रिग सधस सा
हृ द या भि नं दि

९. मा मां धनि धस धप मप पा पा
नं

१०. मां मंगंमं मां निधं पंधं पंमंगं गां मां
प्र ण मा मि दे वं

११. धा पध परि रिग मग रिग सधस सा
कु मु दा धि वा सि

१२. निध सा री मगम. मा मा मा मा
नं

टिप्पणी

इस गीत को और प्रस्तार को गा बजा कर देखा जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि सप्तस्वरों का अंशत्व, ग्रहत्व, अपन्यासत्व, षड्ज, मध्यम का न्यासत्व एवं षाड्जी व मध्यमा जाति का संयोग—ये सब षड्जमध्या के लक्षण जो उसके स्वरूप को निष्पन्न करनेवाले हैं, इस प्रस्तार गीत में प्रकट नहीं होते। इस दुर्बोध रहस्य का उद्घाटन न तो ग्रन्थकार के शब्दों में उपलब्ध है और न टीकाकारों की टीका में ही कहीं यह दर्शन होता है कि इस जाति को सर्वरसाश्रया जो कहा गया है तदनुसार उसमें भिन्न २ रसों का आविर्भाव कहां, किस प्रकार होता है।

षड्जमध्या में षड्जग्राम की षाड्जी और मध्यमग्राम की मध्यमा इन दो जातियों का जो समवाय बताया गया है, उस समवाय का सम्यक् दर्शन इस प्रस्तार-गीत में किस प्रकार किया जाए ग्रन्थकार के वचनों में इस समस्या को सुलझाने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। अतएव इस प्रसंग में आज के कुछ सम्मिश्र रागों की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। तदनुसार एक उदाहरण यहां अप्रासंगिक नहीं होगा।

एक अमेरिकन विद्यार्थी (डॉ० हैरल्ड पावर्स) जो कर्णाटकीय संगीत का विधिवत् अध्ययन किए हुए थे, भारतीय (हिन्दुस्तानी) संगीत की विशिष्ट राग-पद्धति में प्रवेश पाने के हेतु से हमारे पास आकर रहे थे। वे राग वसन्त-बहार की रचना को सुनकर तुरन्त यह पहचान गये थे कि उसमें नाम के अनुसार भिन्न २ दो रागों का सम्मिश्रण है। इतना ही नहीं षड्ज, मध्यम और पंचम ये तीन स्वर दोनों रागों के संधि-स्थल हैं, जहां से एक राग में से दूसरे में प्रवेश किया जाता है, यह भी वे समझ गये थे। उसी रचना से यह भी उनके ध्यान में सहज आ गया था कि मिश्रण-प्राप्त रागों (वसन्त और बहार) में ग्रहत्व, अंशत्व, न्यासत्व आदि किन-किन स्वरों का है। इस उदाहरण को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि कुछ इसी प्रकार की स्पष्टता षड्ज-मध्या या अन्य किसी स्वसंज्ञा जाति के प्रस्तार में अथवा गीत में पाठक या अनुसन्धित्सु को अपेक्षित होती है। यह आकांक्षा अपूर्ण रहने पर ये प्रश्न ज्यों के त्यों बने रहते हैं कि षड्जमध्या जाति के दिए हुए गीत में, प्रस्तार में, षड्जमध्या के अंतर्गत दो जातियों का संसर्ग, सप्तस्वरों का अंशत्व, ग्रहत्व, 'सा-म' का न्यासत्व, और सर्वरसत्व कहां तक स्फुट होता है? ये प्रश्न निरुत्तर ही रहते हैं, यह हम ऊपर कह आये हैं। जिन्हें प्रत्यक्ष अनुभूति पानी हो वे इस गीत को गा बजा कर देख लें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गान्धारोदीच्यवा

मतंग

गान्धारोदीच्यवायां तु द्वावंशौ षड्जमध्यमौ ॥२५५॥
रिलोपात् षाडवं ज्ञेयं पूर्णत्वेऽ (शोन्तरात्मना ? शेतराल्पता) ।
अल्पा निषपगान्धाराः षाडवत्वे प्रकीर्तिताः ॥२५६॥
रिधयोः स (गनिज्ञे ? ङ्गतिर्ज्ञे) या धैवतादिश्च मूर्च्छना ।
तालश्चचत्पुटो ज्ञेयः कलाः पोडश कीर्तिताः ॥२५७॥
विनियोगो ध्रुवागाने चतुर्थप्रेक्षणे मतः ।

अस्यां म (ध्य) मो न्यासः । षड्ज धैवतावपन्यासौ ।

प्रस्तार :—

सासापामा	पाधपमांमा	(१) ।
धापापामा	सासासा	(२) ।
धानीसासा	मामापापा	(३) ।
नीनीनीनी	नीनीनीनी	(४) ।
मामाधानिसं	नीनीनीनी	(५) ।
मापामापरि	गागासासा	(६) ।
गागमपापध	माधनिपापा	(७) ।
रिगसासध	नीनीधाधा	(८) ।
(गारिगसासनि)	गारिगसासा	(९) ।
सासासामा	मनिधनीनीनी	(१०) ।
धामापापापरि	गागासासा	(११) ।
गासागासा	मापामापरिगा	(१२) ।
गागागागा	गागासासा	(१३) ।
नीनिपाधा	नीगागागा	(१४) ।
नीनीधापा	धापामापा	(१५) ।
धापामामा	मामामामा	(१६) ।

गान्धारोदीच्यवती । म ॥

शार्ङ्गदेव

अथ गांधारोदीच्यवा

गान्धारोदीच्यवायां तु द्वावंशौ षड्जमध्यमौ ॥८८॥
रिलोपात्षाडवं ज्ञेयं पूर्णत्वेंऽशेतराल्पता ।
अल्पा निषपगांधाराः षाडवत्वे प्रकीर्तिताः ॥
रिधयोः संगतिर्ज्ञेया धैवतादिश्च मूर्च्छना ।
तालश्चचत्पुटो ज्ञेयः कलाः पोडश कीर्तिताः ॥
विनियोगो ध्रुवागाने चतुर्थप्रेक्षणे मतः ।

अस्यां गांधारोदीच्यवायां मध्यमो न्यासः । षड्ज-धैवतावपन्यासौ । अस्याः प्रस्तारः—

११. गांधारोदीच्यवा

१.	सा	सा	पा	मा	पा	धप	गा	मा
	सौ							
२.	धा	पा	मा	मा	सा	सा	सा	सा
	म्य							
३.	धा	नी	सा	सा	मा	मा	पा	पा
	गौ		री		मु	खां		बु
४.	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी	नी
	रु	ह	दि		व्य	ति	ल	क
५.	मा	मा	धा	निस	नी	नी	नी	नी
	प	रि	चुं		बि	ता		चिं
६.	मा	पा	मा	परिग	गा	गा	सा	सा
	त	सु	पा		दं			
७.	गा	मग	पा	पध	मा	धनि	पा	पा
	प्र	त्रि	क	सि	त	हे		म
८.	री	गा	सा	सध	नी	नी	धा	धा
	क	म	ल	नि	भं			
९.	गा	रिग	सा	सनि	गा	रिग	सा	सा
	अ	ति	रु	चि	र	कां		ति
१०.	सा	सा	सा	मा	मनि	धनि	नी	नी
	न	ख	द		र्पं	णा		भ
११.	मां	पां	मां	परिंग	गां	गां	सां	सां
	ल	नि	के		तं			

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१२.	गां	सां	गां	सां	मां	पां	मां,	पंरिंगं
	म	न	सि	ज	श	री	र	
१३.	गां	मां	गां	सां	गां	गां	गां	सां
	ता			ड	नं			
१४.	नीं'	नीं'	पां	धां	नीं'	गां	गां	गां
	प्र	ण	मा		मि	गां'		री
१५.	नीं'	नीं'	धां	पां	धां	पां	मां	पां
	च	र	ण	यु	ग	म	नु	प
१६.	धां	पां	सां	सां	मां	मां	मां	मां
	मं							

इस जाति के लक्षणों में निषाद का अल्पत्व कहने पर भी प्रस्तार में उसका विपुल प्रयोग किया गया है, तद्वत् लक्षण में कहा हुआ गान्धार का अल्पत्व भी प्रस्तार में दिखाई नहीं देता। इस जाति में षाड्जी गांधारी और धैवती व मध्यमा का संयोग है और इसका वीर रौद्र रस कहा गया है। इस प्रस्तार-गीत में न तो इन चार जातियों का संयोग स्फुट होता है और न हो इस जाति के रस को अभिव्यक्ति होती है। प्रस्तार-गीत की षोडश कलाग्रों में कौन स्वर कितनी बार आया है, इसकी गणना कर के देखने पर भी इसके ग्रह, अंश, न्यास, संसर्ग और रस का अस्फुटत्व बना ही रहता है। लक्षणों में कही गई 'रि-ध' संगति भी प्रस्तार में नहीं है।

कैशिकी

मतंग

कैशिक्यामृषभान्यां निधावंशौ (प ? य) दा तदा।
न्यासः पञ्चम एव स्यादन्यदा (वि ? द्वि) श्रुती मतौ ॥
अन्ये तु निगपन्यासा (नृ) निधयोरंशयोर्विदुः।
रिलोपरिधलोपेन षाडवौऽवितं मतम् ॥२६ ॥
रिरल्पो निरवाहुल्यमंशानां सङ्गतिर्मिथः।
षाडवौडुविते (द्द ? द्वि) ष्टः क्रमात् पञ्चमधैवतौ।
षाड्जीवत् पञ्चपाएयादि गान्धारादिस्तु मूर्च्छना।
षञ्चम (प्रो ? प्रे) क्षणगतं ध्रुवायां विनियोजनम् ॥२६५॥

अस्या (गान्धा) रपञ्चमनिषादा न्यासाः
रिवर्जाः षट् सप्त वा स्वरा अपन्यासाः।

प्रस्तारः —

पाधनिपाधनि गागागागा (१)।
पापामाधनि निधपापापा (२)।
धानीसासा रींरींरींरीं (३)।
सांसांसांरीं गामामामा (४)।
मधानीधा (मा) धामापा (५)।

शार्ङ्गदेव

अथ कैशिकी

कैशिक्यामृषभान्येंऽशा निधावंशौ यदा तदा।
न्यासः पञ्चम एव स्यादन्यदा द्विश्रुती मतौ ॥६५॥
अन्ये तु निगपान्न्यासान्निधयोरंशयोर्विदुः।
रिलोपरिधलोपेन षाडवौडुवितं मतम् ॥६६॥
रिरल्पो निपबाहुल्यमंशानां संगतिर्मिथः।
षाडवौडुविते द्विष्टः क्रमात्पञ्चमधैवतौ ॥६७॥
षाड्जीवत्पञ्चपाएयादि गान्धारादिस्तु मूर्च्छना।
पञ्चमप्रेक्षणगतध्रुवायां विनियोजनम् ॥६८॥

अस्यां कैशिक्यां गांधारपञ्चमनिषादा न्यासाः। रिवर्ज्याः षट् सप्त वा स्वरा अपन्यासाः। अस्याः

प्रस्तार :—

१३. कैशिकी

१.	पा	धनि	पा	धनि	गा	गा	गा	गा
	के		ली		ह		त	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निगरीसाधनि रीरीरीरी (६)।
गांरींसांसां पाधामामा (७)।
गागागामा मानीधनीनी (८)।
गागानीनी गागागागा (९)।
गागानीनी धापापापा (१०)।
मापामापा पापामामा (११)।
धामागानिधानीनीगागा (१२)।
कैशिकी । म ॥

२. पा पा मा निध निध पा पा पा
का म त नु
३. धा नी सां सा री री री री
वि भ्र म वि ला सं
४. सा सा सा री गा मा मा मा
ति ल क यु तं
५. मां धां नीं धां मां धां मां पां
मू र्धो र्ध्वं वा ल
६. गा री सा धनि री री री री
सो म नि भं
७. गा री सा सा धा धा मा मा
मु ख क म लं
८. गा गा गा मा मा निधनि नी नी
अ स म हा ट
९. गा गा नी नी गा गा गा गा
क स रो जं
१०. गां गां नी नीं निंधं पां पां पां
हृ दि सु ख दं
११. मां पां मां पां पां पां मां मां
प्र ण मा मि लो च
१२. सां मां गां निंधंनिं नीं नीं मां गां
न वि शे षं

इसमें षाड्जी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी और नैषादी इन पांच जातियों का संयोग कहा गया है, गान्धार,

टिप्पणी

निषाद और पंचम न्यास हैं, और ऋषभ को छोड़ कर 'सगमपधनि' ये छः स्वर ग्रह-अंश हैं और यही अपन्यास भी हैं।

इसके गीत प्रस्तार को देखते हुए प्रत्यक्ष गा बजा कर यह अनुभव लिया जा सकता है कि उसमें जाति के किन-किन लक्षणों का समन्वय या सामंजस्य प्राप्त होता है। साथ ही विवरणोक्त अल्पत्व-बहुत्व के नियम का भी इसमें पालन नहीं हुआ है। इस प्रकार देखने से यह स्पष्ट होने में कोई प्रत्यवाय नहीं रहेगा कि इस प्रस्तार में भी अन्य जाति प्रस्तारों के सदृश वांछित फल-सिद्धि नहीं होती।

उभयग्राम की दो शुद्धा तथा तीन संसर्गजा जातियों के उदाहरण हमने ऊपर देखे। यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि नाट्यान्तर्गत स्थायी या संचारी भावों की अभिव्यक्ति में इन जाति-प्रस्तारों द्वारा कैसी व कितनी सहायता उपलब्ध होती होगी, संसर्गजा जातियों में जिन-जिन जातियों का संसर्ग कहा गया है एवं जिन रसों का आविर्भाव सूचित किया गया है उन सबकी कहां तक सिद्धि होती है, यह सब कुछ बुध-जनों के लिये हर पहलू से विचारणीय है। इस विषय पर हम अपने विचार ऊपर की टिप्पणियों में स्पष्टता से व्यक्त कर ही आए हैं।

ऊपर दिए गए शुद्धा-विकृता जातियों के प्रस्तार-गीतों के उदाहरणों से यह स्पष्ट हुआ होगा कि जिन-जिन जातियों के जो-जो स्वर-प्रस्तार मतंग ने दिए हैं, उन्हीं को अविकल बनाए रखते हुए 'रत्नाकर'कार ने उनमें गीत के शब्द बैठा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिए हैं अथवा इसी रूप में ये गीत उन्हें किसी परंपरा द्वारा प्राप्त हुए होंगे। इन प्रस्तार-गीतों में उन-उन जातियों का कितना और कैसा दर्शन होता है यह हम ऊपर कह आये हैं। मतंग ने तो प्रत्येक जाति के ग्रह, अंश और न्यास के अनुसार स्थूल मान से, अत्यल्प रूप में स्वर-प्रस्तार का एक ढांचा प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिये ग्रह, अंश, न्यास यदि 'सा' या 'ग' है तो आरंभ में 'सा' या 'ग' का विपुल प्रयोग दिखा कर, बीच-बीच में भी उन स्वरों का बहुत्व रख कर, नियमानुसार स्वर-संगति आदि का प्रयोग करके अन्त में 'सा' या 'ग' पर ही न्यास करके दिखा दिया है। शुद्धा जातियों में मंद्र में, और विकृताओं में तार में न्यास या समाप्ति दिखाई है। भरत ने तो "विकृतास्वनियमात्" कह कर यही बताया है कि विकृता जातियों में यह नियम नहीं है कि न्यास मंद्र में ही हो, अर्थात् मंद्र में भी हो सकता है और मध्य या तार में भी हो सकता है। किन्तु मतंग के स्वर-प्रस्तारों में और शार्ङ्गदेव के गीतों में विकृता जातियों में नियम से तार में ही न्यास किया गया है; यहां तक कि प्रस्तार की समाप्ति तार सप्तक के मध्यम, पंचम, अथवा निषाद तक पर की गई है। विद्वज्जन इस बात पर ध्यान दें कि इस प्रकार की गीत-समाप्ति क्रिया में कहां तक व्यवहार्य है। मतंगोक्त प्रस्तारों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि ये यथावत् गीत में प्रयुक्त करने के लिये नहीं ही बनाए गए हैं। आज भी हम देखते हैं कि किसी भी राग के स्वर-प्रस्तार में से ठीक उसी क्रम से या उसी रूप में गीत रचना नहीं होती। इसलिये मतंग के इन जातिगत प्रस्तारों में शार्ङ्गदेव द्वारा अथवा किसी अन्य द्वारा जो गीत बिठाये गये हैं, उनमें गीत के लिये आवश्यक स्वर-रचना का अभाव दिखाई देता है। गीत में स्वर-सौष्ठव, माधुर्य, स्वरों का क्रम-प्रवाह, शब्दों के अभंग उच्चार की व्यवस्था, यति और शब्दार्थ का अटूट सम्बन्ध - ये सब बातें अनिवार्य आवश्यक होती हैं, जिनका लोकगीत तक में स्वाभाविक रूप से पालन होता है। किन्तु हम देखते हैं कि इन तत्वों का 'रत्नाकर' के जाति-गीतों में दर्शन नहीं होता। प्रत्येक कलाकृति का मूल्यांकन उसकी aesthetic value या सौन्दर्य भावना के आधार पर ही होता है। इन जाति-गीतों की aesthetic value की प्रतीति इन्हें गा-बजा कर देखने से और ऊपर लिखी कसौटी पर कसने से ही हो सकती है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि जातियों के प्रस्तार-गीतों के विषय में जो कुछ भी ऊपर कहा गया है, वह उनके गीत अंश से ही सम्बन्ध रखता है, पाठ्य अंश से नहीं। हमने उन गीतों की स्वर-रचना को ही आलोचनात्मक दृष्टि से देखा है; उनके पाठ्य-अंश यानी गीतों में प्रयुक्त देवस्तुति-परक पद्यों की उत्कृष्टता तो असंदिग्ध ही है। मतंगोक्त स्वर-प्रस्तारों में इन पद्यों को जड़ देने के फलस्वरूप यति-भंग, शब्दार्थ-व्यवच्छेद आदि दोषों की जो सृष्टि हुई है, उसकी ओर हमने ऊपर संकेत किया ही है।

उपसंहार

ऊपर शुद्धा और संसर्गजा विकृता जातियों के प्रस्तारगीतों के सम्बन्ध में हमने जो कुछ टिप्पणियां दीं, उनके अतिरिक्त इन जाति गीतों के संबन्ध में यह भी विचारणीय है कि यज्ञ में, देवपूजनार्थ नाट्य में, महफ़िल में अथवा परिजन परिवार में रसभाव-पोषणार्थ, अथवा लोकरंजनार्थ इन गीतों को गाया जाय तो क्या इनसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त हो सकेगी? प्राचीन गौरव-गाथा के मोह को त्याग कर यदि इन गीतों को गाकर देखें तो ये संगीत की आदिम अवस्था के द्योतक नहीं प्रतीत होते हैं क्या? जिस काल में संगीत शास्त्र में श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना का इतना सूक्ष्म विश्लेषण होता था, तथा नाट्य में रसभावानुकूल संगीत की रचना होती थी, उस काल का संगीत क्या इतनी आदिम अवस्था में रहा होगा? विश्वास नहीं होता, श्रद्धा विचलित होती है। अतः यह संशय होना नितांत स्वाभाविक है कि ये प्रस्तार-गीत उस काल के संगीत का सचमुच प्रतिनिधित्व करते हैं या नहीं?

जिस काल में जाति लक्षणों का इतना पूर्ण, गहन, सूक्ष्म और विशद विवेचन हुआ, उस काल में जाति गान का इतना अविकसित रूप भला कैसे रहा होगा? यदि प्रत्यक्ष संगीत-प्रयोग इतना सीमित ही रहा होता, तो इतने लक्षणों के विवेचन का क्या प्रयोजन था?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हम जानते हैं कि आज के लक्ष्य में एक ही राग में अनेक प्रकार की स्वर-रचना वाले गीत विभिन्न तालों में उपलब्ध होते हैं और रागों के नियमित ढांचों में रचना का आज इतना विपुल क्षेत्र विकसित है कि एक-एक राग में पचासों रचना ध्रुपद अंग में, ख्याल अंग में, ठुमरी-टप्पा में, भजनों में और ग़ज़ल-क़व्वाली में विद्यमान होते हुए भी आज तक नवीन रचनायें होती रही हैं, हो रही हैं और भविष्य में भी होती रहेंगी। एक ही नियमित ढांचे में से इतनी विविध रचना के क्षेत्र की उपलब्धि, यही तो भारतीय राग पद्धति की विशेषता है। भरतोक्त जाति, जो कि इस राग-पद्धति का मूल-रूप है, उसका स्वरूप क्या इतना संकुचित, निर्जीव, और गतिहीन रहा होगा कि शताब्दियों तक 'रत्नाकरोक्त' एक-एक गीत को ही एक-एक जाति का प्रतिनिधि समझा जाता रहा ? स्पष्ट है कि ऐसी निर्जीवता भरत या मतंग को अभिप्रेत नहीं ही रही होगी। संभवतः इसीलिए उन्होंने उदाहरण स्वरूप गीत देने की आवश्यकता नहीं समझी होगी। साथ ही यह भी विचारणीय है कि जिस जाति गान का स्वरूप भरत ने इतना व्यापक बताया है कि यहां तक कह डाला है कि "यत्किञ्चिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्"—उस जातिगान का इतना संकुचित क्षेत्र कैसे रहा होगा ?

शार्ङ्गदेवोक्त जातिगीतों का वेदसादृश्य

'रत्नाकर'कार पं० शार्ङ्गदेव ने इन जातियों को सामवेदसंभूत बताया है, 'तं भवललाटादि' पदों को ब्रह्मोक्त कह कर उन्हें अपरिवर्तनीय ठहराया है, उनके यथायथ प्रयोग को महत् पुण्य जनक बताया है और उनके अनियमित प्रयोग को महत् पातक-रूप कहा है। इस सम्बन्ध में उनके अपने शब्द और कल्लिनाथ की टीका निम्नोक्त है:—

ब्रह्मप्रोक्तपदैः सम्यक्प्रयुक्ताः शंकरस्तुतौ ॥ १३३ ॥
अपि ब्रह्महणं पापाज्जातयः प्रपुनन्त्यमूः।
ऋचो यजूंषि सामानि क्रियन्ते नान्यथा यथा ॥ १३४ ॥
तथा सामसमुद्भूता जातयो वेदसंमिताः।

(सं० र० १. ७. १३३-३४)

प्राक्पूर्वं शंकरस्तुतौ शंकरस्तुतिं विषयीकृत्य ब्रह्मप्रोक्तपदैः, ब्रह्मणा चतुर्मुखेण प्रोक्तं ग्रंथितैः पदैः 'तं भवललाट' इत्यादिभिर्योजयित्वा सम्यगन्यूनातिरेकेणोक्ता गीताश्चेदमूः षाड्ज्यादयो जातयो ब्रह्महणमपि ब्रह्मघ्नमपि पुरुषं पापाद् ब्रह्महत्यारूपान्मोचयित्वा प्रपुनन्ति पूतं कुर्वन्ति। अनेन सम्यग्जातिगानस्य महापातकप्रायश्चित्तत्वमुक्तं भवति। एवं सामर्थ्यं जातीनामुक्तनियमयुक्तानामृगादिमन्त्रसादृश्यहेतुत्वेनाभिसंधाय तासामनियमप्रयोगं निषेधति ऋच इति। ऋचो यजूंषि सामानि यथाऽन्यथा न क्रियन्ते स्वरवर्णोच्चारणादिवैपरीत्येन न प्रयुज्यन्ते, तथा सामसमुद्भूताः सामभ्यः समुत्पन्ना अतएव वेदसंमिता वेदसदृशा जातयोऽन्यथा न क्रियन्ते; स्वरपदतालादिवैपरीत्येन न प्रयोक्तव्या इत्यर्थः। एतेन विपरीतप्रयोगे प्रत्यवायः सूचितो भवति ॥

(कल्लिनाथ की 'कलानिधि' टीका)

ऊपर के उद्धरणों का तात्पर्य यह है कि ये जातियां जब 'ब्रह्मप्रोक्त' पदों के माध्यम से शंकर-स्तुति में प्रयुक्त होती हैं, तब वे ब्रह्महत्या तक के पापी को पुनीत (पापमुक्त) बना देती हैं। जिस प्रकार ऋक्, साम, यजु—इस वेदत्रयी के मन्त्रों को अन्यथा नहीं कर सकते अर्थात् उनके उच्चार और स्वर में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते, उसी प्रकार 'साम से समुद्भूत इन जातियों को भी समझना चाहिए, क्योंकि वे वेदसंमित हैं, अर्थात् वेदसदृश हैं। इन्हें स्वर, पद, तालादि के वैपरीत्य से प्रयुक्त नहीं करना चाहिए। विपरीत (नियम विरुद्ध) प्रयोग से प्रत्यवाय होने की संभावना है।

हम जानते ही हैं कि 'संगीत रत्नाकर' मुनिकृत ग्रन्थ नहीं है। जिन मुनियों के ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उनमें से किसी में 'ब्रह्मप्रोक्त' पदों की परंपरा का उल्लेख नहीं है। इसलिए पं० शार्ङ्गदेव के इन विधानों के सम्बन्ध में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ ऐसे प्रश्न उपस्थित होते हैं जो नितान्त विचारणीय हैं। इस संबन्ध में अपनी ओर से कुछ न कह कर केवल उन प्रश्नों को ही हम विद्वज्जन के सम्मुख रख देना समुचित समझते हैं। वे क्षीर-नीर विवेक से स्वयं उनके उत्तर पाकर सत्यानृत का निर्णय कर लें।

'रत्नाकर' में जाति-गान के रूप में उल्लिखित पदों को 'ब्रह्मप्रोक्त' कहा गया है। यदि ये पद शार्ङ्गदेवप्रोक्त नहीं हैं, तो इन पदों की उपलब्धि उन्हें कहां से हुई ? इन पदों के निर्माता न सही, 'द्रष्टा' कौन थे ? मतंग मुनि के 'बृहद्देशी' में इन जातियों के जो स्वर-प्रस्तार दिए गए हैं, हूबहू उन्हीं स्वर-प्रस्तारों के नीचे इन पदों को रखा गया है। क्या मतंग को, शार्ङ्गदेव के बहुत पूर्ववर्ती होने पर भी, ये ब्रह्मप्रोक्त पद उपलब्ध नहीं थे ?

'संगीत रत्नाकर' में सात शुद्धा और एकादश संसर्गजा—यों मिलाकर कुल अष्टादश जातियों में केवल एक-एक पद ही दिया है। हम जानते हैं कि भरत ने प्रत्येक शुद्धा जाति के ग्रह-अंश, अपन्यास-परिवर्तन से एवं संपूर्णत्व-भंग से विपुल संख्यक विकृत भेद बनाने का विधान दिया है। 'रत्नाकर' के टीकाकारों ने भी कहा है कि ग्रह-अंश-परिवर्तन से शुद्धा जातियों के विकृत भेद बना लिए जाएं। सामवेद-संभूत तथा ब्रह्मप्रोक्त इन अष्टादश जाति-गीतों में ही यदि जातिगान सीमित हो तो फिर इन विकृत भेदों को कहां स्थान मिलेगा ? इनकी रचना कौन करेगा ? नाट्य-प्रयोग में ऐसी अनेक रचनाएं क्या नहीं हुई होंगी ? यदि ये विकृत भेद प्रयोगगत नहीं थे तो क्या नाट्यान्तर्गत स्थायी, संचारी भावों की अभिव्यक्ति तथा नवरसादि की सिद्धि इन अष्टादश ब्रह्मप्रोक्त गीतों में ही परिपूर्ण होती थी ?

'शुद्धा' या संसर्गजा जातियों में क्या एक-एक ही गीत-रचना थी ? क्या इनमें उल्लिखित ग्रह-अंशादि नियमों के अन्तर्गत अन्य रचना को कोई स्थान नहीं था ? अथवा अन्य रचना करने का निषेध था ? क्या शार्ङ्गदेव के काल में जाति गान का ऐसा ही स्वरूप रहा होगा ? यदि ऐसा ही हो तो भरत का वचन "यत्किंचिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्" कैसे सार्थक समझा जाए ?

हम स्वानुभव से जानते हैं कि गुरु अपनी परंपरा को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने विद्यार्थियों से आग्रहपूर्वक प्रबन्धगीतिगत स्वरावली का यथायथ परिपालन कराते आए हैं। प्रमादवश, अनभ्यासवश, विस्मृतिवश, अनवधानवश अथवा अवज्ञावश यदि विद्यार्थी से उसमें किंचित् भी परिवर्तन का अपराध हो जाए तो वह अक्षम्य माना जाता रहा है। क्या इन गीतों को अपरिवर्तनीय कहने के पीछे कोई ऐसी ही भावना तो सन्निहित नहीं रही होगी ?

शार्ङ्गदेव द्वारा इन पदों को वेद की भांति अपरिवर्तनशील कहने का क्या तात्पर्य है ? इन्हें अपरिवर्तनशील क्यों स्वीकार किया जाए ? हम जानते हैं कि वेद के मन्त्रों या ऋचाओं में उदात्त, अनुदात्त, स्वरित स्वरों के किंचित् परिवर्तन मात्र से अर्थ के अनर्थ हो जाते हैं। पातञ्जल महाभाष्य का निम्नोद्धृत वचन प्रसिद्ध ही है :—

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

(पातञ्जल महाभाष्य, पस्पशान्हिक १-१-१)

अर्थात् स्वर संबन्धी अथवा वर्णसंबन्धी दोष से युक्त (दुष्ट) शब्द जब मिथ्या (अयथार्थ) रूप से प्रयुक्त होता है, तब वह अपने (वास्तव) अर्थ को नहीं कह सकता अर्थात् उससे यथार्थ बोध नहीं होता। ऐसा 'दुष्ट' (दोषयुक्त) शब्द वाग्वज्र (वाणी रूपी वज्र) बन कर यजमान (प्रयोक्ता) का ही हनन करता है। जिस प्रकार स्वर के अपराध से 'इन्द्रशत्रु' ने किया था।

'इन्द्रशत्रु' की कथा इस श्लोक के भाष्य में इस प्रकार दी है :—

१२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुरा किल विश्वरूपाख्ये त्वष्टुः पुत्रे इन्द्रेण हते कुपितस्त्वष्टा इन्द्रस्य हन्तारं हिंसितवानित्यर्थः। इन्द्रस्याभिचारो वृत्रेणारब्धस्तत्र 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' इति मन्त्र ऊहितः। तत्रेन्द्रस्य शमयिता शातयिता वा भव—इति क्रियाशब्दोऽत्र शत्रुशब्द आश्रितो न तु रूढ़िशब्दः, तदाश्रयजे हि बहुव्रीहितत्पुरुषयोरर्थभेदः। तत्रेन्द्रामित्रत्वे सिद्धे सति 'इन्द्रस्य शत्रुर्भव' इत्यत्रार्थं प्रतिपाद्येऽन्तोदात्ते प्रयोक्तव्य आद्युदात्त ऋत्विजा प्रयुक्त इति—अर्थान्तराभिधानादिन्द्र एव वृत्रस्य शातयिता संपन्नः।

शतपथ ब्राह्मण में इसी कथा को इन शब्दों में कहा है :—

अ॒थ यद॑ब्रवी॒दिन्द्रशत्रु॒र्वर्द्धस्वे॒ति। तस्मा॑दु हैनमि॒न्द्र एव जघाना॒थ य॒द्ध शश्वदवक्ष्य॒दिन्द्रस्य श॒त्रुर्वर्द्धस्वेति श॒श्वदु ह स॒ एवेन्द्रमहनिष्यत्॥

(शतपथ ब्राह्मण १. ६. ३. १०)

इन उद्धरणों का तात्पर्य यह है कि इन्द्र ने जब त्वष्टा के विश्वरूप नामक पुत्र की हत्या कर दी तब त्वष्टा ने कुपित होकर 'इन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्व' इस मन्त्र के साथ यज्ञ किया और उनका प्रयोजन यही था कि इन्द्र के शत्रु की वृद्धि हो अर्थात् उक्त मन्त्र से वे इन्द्र के शत्रु की उत्पत्ति की कामना करते थे। किन्तु 'इन्द्र का शत्रु' इस प्रकार का अर्थ तत्पुरुष समास से ही निकल सकता था और इसके लिए 'इन्द्र शत्रु' को अन्तोदात्त रखना आवश्यक था, किन्तु ऋत्विज् ने 'आद्युदात्त' (आदि में उदात्त) प्रयोग किया। उससे तत्पुरुष के स्थान पर बहुव्रीहि समास का अर्थ हो गया 'इन्द्र शत्रु है जिसका'। इस स्वर-अपराध के कारण इन्द्र का शत्रु तो उत्पन्न नहीं हुआ, अपितु यज्ञ से जिस वृत्रासुर की उत्पत्ति हुई उसे इन्द्र ने ही मार दिया। स्वर-प्रयोग सम्यक् हुआ होता तो 'इन्द्र का शत्रु उत्पन्न हो (बढ़े)' ऐसा अर्थ निष्पन्न होता और यज्ञ से उत्पन्न वृत्र ने इन्द्र को मार दिया होता।

स्वर-सम्बन्धी इस कठोर नियम-पालन की व्यवस्था के अतिरिक्त, हमें स्मरण है कि बाल्यकाल में संहिता के अध्ययन के समय केवल स्वर ही नहीं, अपितु वेदमन्त्रपाठ के समय श्वास की प्रक्रिया पर भी अपेक्षित संतुलन रखने का गुरु की ओर से आग्रह रहता था। जहां-तहां स्वेच्छापूर्वक श्वास लेना और छोड़ना ग्राह्य नहीं था, क्योंकि श्वासोच्छ्वास-प्रक्रिया अनियमित होने से भी वेदार्थ में परिवर्तन होने का भय माना जाता था। इन सब कारणों से वेदमन्त्रों के शब्दोच्चार, स्वर, और श्वास-प्रक्रिया इन सबका नियमन नितान्त आवश्यक मानकर उसके विपरीत प्रयोग में विपरीत फल का दर्शन करना, उस प्रकार के प्रयोग को पापरूप समझना और उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान देना इनमें कोई अनौचित्य नहीं दिखाई देता। किन्तु इन जातिगत पदों में, उनके स्वरों में या पदों के स्वर-संयोगों को अपरिवर्तनशील मानने में क्या उसी प्रकार अर्थ का अनर्थ होने की संभावना है ? इन प्रस्तार-गीतों में पदों का जहां-जहां यति-भंग हुआ है, वह क्या दोषार्ह नहीं है ? जातिगान के अन्तर्गत इन पदों को सनातन, अपौरुषेय या अनादि तो नहीं कह सकते। ऐसी अवस्था में शार्ङ्गदेव का यह विधान कि "ऋक्, यजु, साम की भांति इन जातिगत पदों को भी अन्यथा नहीं किया जाना चाहिए" किस रूप में ग्राह्य माना जाए ?

शार्ङ्गदेव के परवर्ती ग्रन्थकार

'रत्नाकर' के परवर्ती ग्रन्थकारों में रामामात्य (स्वरमेलकलानिधि), शुभंकर (संगीतदामोदर), श्रीकण्ठ (रसकौमुदी) सोमनाथ (रागविबोध), अहोबल (संगीतपारिजात), श्रीनिवास (रागतत्त्वविबोध), हृदयनारायणदेव (हृदयकौतुक), व्यंकटमखी (चतुर्दण्डिप्रकाशिका), दामोदर पण्डित (संगीत दर्पण) लोचन (रागतरंगिणी), पुण्डरीक विट्ठल (सद्रागचन्द्रोदय, रागमाला, रागमञ्जरी) आदि ने जाति-प्रकरण को अपने ग्रन्थों में समाविष्ट नहीं किया है।

जिन-जिन ग्रन्थकारों ने 'जाति' का उल्लेख आवश्यक समझा है, वे हैं—नान्यदेव (भारतभाष्य), * कुम्भा राणा (संगीतराज), रघुनाथ भूप (संगीत सुधा) और तुलजाधिप (संगीतसारामृत)। इन सब ग्रन्थकारों ने जाति-

* नान्यदेव 'रत्नाकर' के पूर्ववर्त्ती, परवर्त्ती या समकालीन हैं, इसका निर्णय अभी नहीं हो सका है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निरूपण में प्रायः शार्ङ्गदेव का ही अनुसरण किया है। उन्होंने जातियों के लक्षण, उनकी मूर्च्छना और 'तं भवललाटादि' ग्रहप्रोक्त' पद 'रत्नाकर' में से प्रायः ज्यों के त्यों उतार लिये हैं। केवल नान्यदेव इसके अपवाद हैं और उनकी विशेषता यही है कि उन्होंने जातियों की मूर्च्छना नहीं कही हैं। जातियों की मूर्च्छनाओं का उल्लेख सर्वप्रथम मतंग में मिलता है और उसी का अविकल अनुसरण शार्ङ्गदेव ने किया है, यह हम देख ही चुके हैं। ऐसी अवस्था में शार्ङ्गदेव के काल के समीपवर्त्ती नान्यदेव का जातियों की मूर्च्छना न कहना काफ़ी महत्त्व रखता है। इससे यह संकेत मिलता है कि संभवतः इस सम्बन्ध में मतंग से भिन्न कोई विचारधारा भी प्रचलित रही होगी।

शार्ङ्गदेव के परवर्त्ती संगीत-ग्रन्थों में जाति-प्रकरण की उपर्युक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'रत्नाकर' के पश्चात् इस विषय का विकास समाप्तप्राय हो गया था और इससे सम्बन्धित विचारधारा अवरुद्ध हो गई थी। जाति को रागों की जननी के रूप में जो प्रतिष्ठा प्राप्त थी, वह लुप्त हो गई और रागों को जाति से विच्छिन्न करके स्वतन्त्र रूप से निरूपित किया जाने लगा। इसीलिए मध्ययुग के ग्रन्थकारों ने या तो जाति-विषय को अछूता ही छोड़ दिया और या फिर गतानुगतिक भाव से 'रत्नाकर' का अनुकरण करने में ही संतोष मान लिया।

उपसंहार

'संगीतरत्नाकर' के पश्चात् मध्ययुग से लेकर आधुनिक युग तक जिन ग्रन्थकारों ने 'जाति'—विषय का अपने ग्रन्थों में समावेश अथवा उल्लेखमात्र किया है, वे दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं—एक वे जिन्होंने केवल गतानुगतिक भाव से संगीत रत्नाकर' अथवा अन्य प्राचीन ग्रन्थकारों के प्रायः अक्षरशः उद्धरण अथवा भाषान्तर प्रस्तुत किये हैं और दूसरे वे जिन्होंने इस विषय को 'नष्टप्राय'. 'पुराण' तथा 'स्पष्टीकरण के अयोग्य' कह कर इसका अध्ययन, चिन्तन, मनन अनावश्यक ठहराया है। पहली श्रेणी में प्राचीन शास्त्रों के प्रति 'लौकिक' श्रद्धा है, किन्तु द्वितीय श्रेणी में उसका अभाव है। हमारा यत्न इन दोनों से भिन्न श्रेणी का है जिसमें प्राचीन शास्त्रोक्त जाति-व्यवस्था के प्रति शास्त्रीय श्रद्धा रखते हुए विद्यार्थियों तथा जिज्ञासुओं में वही भाव प्रसारित करने का उद्देश्य निहित है। भरत, मतंग अथवा शार्ङ्गदेव के जाति-प्रतिपादन को उद्धृत कर देना अथवा उसका भाषान्तर मात्र प्रस्तुत करना सुगम मार्ग अवश्य है, किन्तु उससे उपर्युक्त उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। अतः इस उद्देश्य की पूर्त्ति के निमित्त जो यत्न किये गए, जो कुछ जैसा भी बन पड़ा, वही यहाँ जाति-प्रकरण में प्रस्तुत किया गया है।

'इदमित्थं' कह कर हमने अपने यत्न की यहीं 'इति' नहीं की है। हम मानते हैं कि इस विषय में बहुत सी अन्य बातें विचारणीय हैं। उदाहरणार्थ आन्ध्री, रक्तगान्धारी ('गान्धार' देश से संबन्धित ?) गान्धारोदीच्यवा, षड्जोदीच्यवा, मध्यमोदीच्यवा में 'उदीच्यवा' का उत्तरदिशा से संवन्ध (?) इस प्रकार कुछ जाति-नाम विभिन्न देश-प्रदेशों से संबन्ध रखते हैं। इसका क्या तात्पर्य रहा होगा ? यह एक विचारणीय प्रश्न है, जिस पर विचार करना अभी शेष है। तद्वत् 'कैशिकी' अथवा 'षड्जकैशिकी' इन जाति-नामों में 'कैशिक' का समावेश क्या उन-उन जातियों में कैशिक स्वर-साधारण का प्रयोग सूचित करता है ? यह और ऐसे कई एक अन्य प्रश्न विशेष रूप से विचारणीय हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि भरत का 'यत्किञ्चिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्' यह वचन आज भी हर दृष्टि से, हर पहलू से क्रियागत रूप से पूर्णतया सार्थक हो सकता है। जिस प्रकार भरतोक्त ग्राम-व्यवस्था के साथ आज के शुद्ध या प्राकृतिक ग्राम का संबन्ध स्थापित हो सका है, उसी प्रकार भरतोक्त जाति-व्यवस्था के साथ आज की राग-पद्धति का अविच्छिन्न संबन्ध भी अवश्य स्थापित हो सकेगा। इस विषय पर अधिक विचार 'प्रणव-भारती' की द्वितीय वीणा (रागशास्त्र) में किया जाएगा।

राग और राग-वर्गीकरण

भरत-मतंग-शार्ङ्गदेवोक्त जाति-विषय को हमने विभिन्न दृष्टिकोण से देखा। अब 'राग' और 'राग'-वर्गीकरण के विषय पर विचार करना क्रमप्राप्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत-काल में रागों का अस्तित्व था या नहीं, इस विषय पर हम पृ० २-४ पर चर्चा कर चुके हैं। किन्तु यहाँ 'राग' के इतिहास पर कुछ विशद विचार अपेक्षित है। भरत और मतंग के अतिरिक्त इस प्रसंग में नारद का नाम उल्लेखनीय है। नारद-प्रणीत नारदीय शिक्षा के उस उल्लेख पर यहाँ हमें विशेष विचार करना है जिसमें प्राप्त संज्ञाओं को अधिकांश लेखकों ने 'ग्रामराग' के साथ संबद्ध किया है। ये सप्त संज्ञाएं निम्नलिखित श्लोकों में प्राप्त होती हैं :—

ऋषभोत्थितः षड्जहतो धैवतसहितश्च पञ्चमो यत्र।
निपतति मध्यमरागे (ग्रामे ?) तन्निषादं षाड्वं विद्यात् ॥
यदि पञ्चमो विरमते गान्धारश्चान्तरस्वरो भवति।
ऋषभो निषादसहितस्ते पञ्चममीदृशं विद्यात् ॥
गान्धारस्याधिपत्येन निषादस्य गतागतैः।
धैवतस्य च दौर्बल्यात् मध्यमग्राम उच्यते ॥
ईषत्स्पृष्टो निषादस्तु गान्धारश्चाधिको भवेत्।
धैवतः कम्पितो यत्र षड्जग्रामं तु निर्दिशेत् ॥
अन्तरस्वरसंयुक्ता काकलिर्यत्र दृश्यते।
तं तु साधारितं विद्यात् पञ्चमस्थं तु कैशिकम् ॥
कैशिकं भावयित्वा तु स्वरैः सर्वैः समन्ततः।
यस्मात्तु मध्यमे न्यासस्तस्मात् कैशिकमध्यमः ॥
काकलिर्दृश्यते यत्र प्राधान्यं पञ्चमस्य तु।
कश्यपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसंभवम् ॥ (नारदीय शिक्षा)

इन श्लोकों में से केवल प्रथम श्लोक में ही 'मध्यमरागे' इस पद में 'राग' शब्द का प्रयोग मिलता है। किन्तु, यह पद भी सन्देहास्पद है, क्योंकि 'तन्निषादं पाडवं विद्यात्' (उसे निपाद-पाडव समझना चाहिए) इस वाक्यांश से स्पष्ट है कि नारद मुनि की अभिप्रेत संज्ञा या निरूप्य पद 'निपाद-षाडव' है, न कि 'मध्यमराग'। इसीलिए हमने 'मध्यमरागे' के स्थान पर 'मध्यमग्रामे' पाठ प्रस्तुत किया है। नारदीय शिक्षा के अन्य किसी श्लोक में या अन्य किसी भी पूर्वापर-संदर्भ में 'राग' का उल्लेख नहीं है। फिर भी अनेक आधुनिक लेखकों ने इन संज्ञाओं को 'ग्रामराग' मान लिया है, क्योंकि इनका भरत के ध्रुवा-प्रकरणोक्त संज्ञाओं से साम्य है और क्योंकि मतंग ने भरतोक्त संज्ञाओं को शुद्धा गीति के अन्तर्गत शुद्ध ग्राम-रागों से संबद्ध कर दिया है। नारदीय शिक्षा, भरत के नाट्यशास्त्र और मतंग के बृहद्देशी में जिन मिलती-जुलती संज्ञाओं का उल्लेख मिलता है, वे नीचे एक साथ दी जा रही हैं।

नारदीय शिक्षा (नारद)	नाट्यशास्त्र (भरत)	बृहद्देशी (मतंग)
१. निपाद षाडव	१. मध्यमग्राम	१. मध्यमग्राम
२. पञ्चम	२. षड्जग्राम	२. षड्जग्राम
३. मध्यमग्राम	३. साधारित	३. साधारित
४. षड्जग्राम	४. कैशिक मध्यम (अथवा पंचम)	४. पञ्चम
५. कैशिक	५. कैशिक	५. कैशिक
६. कैशिक मध्यम		६. षाडव
७. साधारित		७. कैशिकमध्यम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरतोक्त संज्ञाओं का 'राग' के साथ संबन्ध जोड़ना उचित नहीं है, यह हम ऊपर पृ० २-३ पर दिखा चुके हैं। नारदीय शिक्षा में दी हुई उपर्युक्त सप्त संज्ञाओं का भी 'राग के साथ कोई स्पष्ट संबन्ध नहीं दिखाई देता। ऐसी अवस्था में यह विचारणीय है कि इन नामों द्वारा किस विषय का निरूपण ग्रन्थकार को अभिप्रेत है? नारदीय शिक्षा का विषय 'गान्धर्वगान' नहीं, अपितु 'सामगान' है। वेद के छः अंगों में से शिक्षा का संबन्ध वर्णोच्चार तथा वैदिक स्वर पद्धति से है। नारदीय शिक्षा में वर्णोच्चार के अतिरिक्त वैदिक स्वरों का, गान्धर्वगान में कहे हुए श्रुति-प्रामादिक व्यवस्था के साथ संबन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया गया हो ऐसा प्रतीत होता है। इसी प्रसंग में ऊपर की संज्ञाओं की सार्थकता समझी जा सकती है। इस अनुमान को इन संज्ञाओं से ही स्वतः पुष्टि मिलती है। यथा—'षड्जग्राम', 'मध्यमग्राम' एक निश्चित श्रुति-स्वर-व्यवस्था के द्योतक हैं। 'साधारित' (अन्तर-काकलीयुक्त) 'कैशिक' आदि नाम स्वरों की अवस्था-विशेष के सूचक हैं। तद्वत् 'षाडव' संज्ञा छः स्वरों के विशेष सन्निवेश की परिचायक है। हां, यह सत्य है कि इन संज्ञाओं के जो लक्षण नारदीय शिक्षा में दिये गए हैं, उनमें विशिष्ट स्वर-सन्निवेशों की ओर संकेत किया गया हो, ऐसा अवश्य प्रतीत होता है। किन्तु उनमें 'राग' के लक्षणों को पूर्णता प्राप्त नहीं होती। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साम-संगीत में प्रयुक्त स्वर-सन्निवेशों को निर्दशित करने के लिए ये संज्ञाएं प्रयुक्त की गई होंगी, किन्तु इतने मात्र से उन्हें रागवाची नहीं माना जा सकता, क्योंकि उनके लक्षणों में उस विकसित अवस्था या पूर्णता के दर्शन नहीं होते जो दशविध रागलक्षणों में हमें परंपरा प्राप्त है।

नारदीय शिक्षा में 'राग' का स्पष्ट उल्लेख नहीं ही है, यह हमने देखा। 'नारदीय शिक्षा' के पश्चात् उपर्युक्त सात संज्ञाओं का 'कुडुमलाई' (दक्षिण के पेदाकोटा राज्यान्तर्गत) की चट्टानों पर खुदे हुए स्वरागम (स्वर-प्रस्तार) में उल्लेख मिलता है। उक्त शिलालेख का काल सातवीं शताब्दी ई० के आस पास निश्चित किया गया है। यहां भी उपर्युक्त सात संज्ञाओं के साथ 'राग' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं है। इसलिए 'राग' के संबन्ध में जो अस्पष्टता नारदीय शिक्षा के संदर्भ में हम देख चुके हैं, वही इस शिलालेख में भी सामने आती है। साथ ही यह प्रश्न भी विचारणीय है कि नारदीय शिक्षा का विषय तो साम-संगीत था, किन्तु इस शिलालेख का विषय यदि साम-संगीत न होकर गान्धर्व-संगीत रहा हो तो उसमें नारदीय शिक्षा की संज्ञाओं की क्या और कैसी सार्थकता रही होगी? संभव है अनुसन्धान द्वारा इस प्रश्न पर कभी प्रकाश पड़ सकेगा। जिस प्रकार विद्वानों ने नारदीय शिक्षा में रागों के अस्तित्व का अनुमान किया है उसी प्रकार उन्होंने इन शिलालेखों में भी उन्हीं सात 'रागों' (?) के स्वर-प्रस्तार का दर्शन किया है। किन्तु 'राग' में जिन लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर-सन्निवेश अपेक्षित हैं, उनका इन शिलालेखों में अभाव होने से हम इनका 'राग' के साथ स्पष्ट संबन्ध स्वीकार करने में असमर्थ हैं। मतंग का 'बृहद्देशी' इस शिलालेख का प्रायः समकालीन माना जा सकता है। अतः यह भी अनुसन्धान का विषय है कि 'बृहद्देशी' में उल्लिखित राग संज्ञाओं के साथ उक्त शिलालेख के 'स्वरागम' का कैसा और कितना संबन्ध है।

ऊपर हमने देखा कि नारदीय शिक्षा में रागों का उल्लेख स्वीकार करके 'राग'-व्यवस्था को भरतकाल से भी पूर्ववर्त्ती सिद्ध करने का जो यत्न कुछ लेखकों ने किया है, वह वास्तविक तथ्यों से पुष्ट नहीं होता। भरत के नाट्यशास्त्र में भी 'राग' का उल्लेख नहीं है, यह हम ऊपर पृ० २-४ पर कह चुके हैं*। अतः यह कहने में कोई बाधा नहीं है कि 'राग' का सुस्पष्ट उल्लेख अधुना उपलब्ध ग्रन्थों में से सर्वप्रथम मतंग के 'बृहद्देशी' में ही प्राप्त होता है।

---

* सुप्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ स्व० प्रो० पी० आर० भण्डारकर भी भरत के ध्रुवाप्रकरणोक्त श्लोकों के सम्बन्ध में प्रायः उसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, जिसे हम ऊपर पृ० २-४ पर उल्लिखित कर चुके हैं। यथा :—

In the first place let it be noted that only five names, likely to be understood as being those of the above mentioned Rāgas occur in these verses. Secondly, the Manuscript A (3) reads Madhyama for Pancama which further reduces the amber for the Manuscript. A I may remark, is on the whole more trustworthy than those on which the printed edition is

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मतंग ने रागों का वर्गीकरण मुख्य रूप से ग्रामराग और भाषाराग अथवा देशी राग इन दो विभागों में किया है। विपुल संख्या में विस्तार, विकास और प्रचलन हुए बिना वर्गीकरण की आवश्यकता नहीं होती। मतंग की राग-वर्गीकरण-व्यवस्था को देखने से यह स्पष्ट होता है कि उनके काल तक रागों का विकास, विपुल संख्या में विस्तार और प्रचलन हो चुका था। मतंग के पूर्व कुछ शताब्दियां राग के इस विकास-क्रम में अवश्य व्यतीत हुई होंगी। किन्तु उस काल का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इसलिए आज मतंग के 'बृहद्देशी' में राग-व्यवस्था की जो प्रथम उपलब्धि होती है, वह पर्याप्त रूप से विकसित और विस्तृत है।

'राग' के स्पष्ट उल्लेख के साथ-साथ मतंग के 'बृहद्देशी' में राग-वर्गीकरण का भी विस्तृत विवरण मिलता है। 'वर्गीकरण' के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि नाट्य-प्रयोग में पूर्वरङ्ग, भिन्न २ प्रवेश, पञ्चसन्धियों इत्यादि के प्रसंग में जिन-जिन स्वर-सन्निवेशों को प्रयोग में लाया जाता था, उन सबका वर्गीकरण भरत ने १८ जातियों में किया है। इससे यह कहा जा सकता है कि जातियां कदाचित् स्वर-सन्निवेशों के वर्गीकरण की सर्वप्रथम अवस्था की प्रतीक हैं।

मतंग ने अपने रागों का सप्त गीतियों के अन्तर्गत विभाजन किया है। यथा—शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, राग, साधारणी, भाषा और विभाषा। उन्होंने अपने पूर्वाचार्यों में से याष्टिक, दुर्गशक्ति, शार्दूल और भरत के मत का भी इस प्रसंग में उल्लेख किया है। इन सब का मतोल्लेख मतंग ने जिस प्रकार किया है, वह नीचे एक साथ प्रस्तुत है:—

याष्टिक	दुर्गशक्ति	शार्दूल	भरत
भाषा, विभाषा और अन्तरभाषा	शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा और साधारणी*	भाषागीति	मागधी, अर्धमागधी, संभाविता और पृथुला

भरत की चार गीतियों के लिये यह उल्लेखनीय है कि वे विभिन्न गेय छन्दों के अन्तर्गत अक्षर-विन्यास से सम्बन्ध रखती हैं। यों तो 'गीति' संज्ञा से 'गान'-क्रिया के साथ सम्बन्ध जान पड़ता है, किन्तु भरतोक्त 'गीति' का स्वर-प्रयोग या स्वर-विन्यास के साथ सम्बन्ध नहीं है, अपितु गान-क्रिया में प्रयुक्त पदों या पद्यों की वर्ण-संघटना से सम्बन्ध है। मतंग ने भी अपने 'बृहद्देशी' में इन चार (भरतोक्त) गीतियों का छन्द-अक्षर के प्रकरण में पृथक् रूप से उल्लेख किया है। उस प्रकरण में गान-क्रिया का कोई प्रसंग नहीं है। भरत और मतंग के निम्नोद्धृत वचनों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

---

based. Thirdly, it must be remembered that none of these names occur as belonging to Rāgas in the special chapters of the work treating of music. All this at once makes one think that the names, as used here, do not belong to Rāgas at all, and this conjecture is borne out by the explicit statement contained in the first sloka, which Kallinatha has not quoted. From this sloka it is evident that the rules in the following verses are not for the use of Rāgas of these names but for the two Grāmas and the Sādhāraṇa mentioned in an earlier part of the work. Thus, music in the Madhyamagrāma is to be used in the Mukha portion of a Nāṭaka and again in 'Vimarśa' (or Avamarśa), music in the Sadjagrāma in the Pratimukha, music in the Sādhāraṇa (Sādhāritam is thus a mistake for Sādhāraṇam) in the Garbha, and music in the Kaiśiki in the Nirvahaṇa. It is thus clear that the seven Ragas of this inscription did not exist in the time of the Bhāratīya Nāṭya Śāstra." (Kudumalai Inscription on Music by Rao Bahadur P. R. Bhandarkar, Epigraphia Indica Vol. XII (1914) p. 266).

* दुर्गशक्ति की पांच गीतियों का ही 'संगीत रत्नाकर' में ग्रहण किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरत

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि गीतीनामपि लक्षणम् ।
प्रथमा मागधी ज्ञेया द्वितीया चार्धमागधी ॥
संभाविता तृतीया च चतुर्थी पृथुला स्मृता ।
भिन्नवृत्तिप्रगीता (विनिवृत्तप्रवृत्ता) या सा
गीतिर्मागधी मता ॥
अर्धकालनिवृत्ता च विज्ञेया त्वर्धमागधी ।
संभाविता च विज्ञेया गुर्वक्षरसमन्विता ॥
लघ्वक्षरकृता नित्या पृथुला संप्रकीर्त्तिता ॥

(ना. शा. काशी संस्करण २९।७६-७९.
बम्बई संस्करण २९।३८-५०

मतंग

अथ गीतिं प्रवक्ष्यामि छन्दोऽक्षर………… ।
(संभाविता) च विज्ञेया गुर्वक्षरसमन्विता ॥
चित्रे चैककले ताले विज्ञेया गीतिर्मागधी ।
वार्त्तिके द्विकला ज्ञेया गीतिः संभाविता बुधैः ॥
दक्षिणे पृथुला गीतिस्ताले ज्ञेया चतुष्कले ।
अनेनैव विधानेन गातव्या गीतयो बुधैः ॥
द्विगुरुत्रिनिवृत्ता च चित्रे गीतिस्तु मागधी ।
लघुप्लुतकृता चैव तदर्धे चार्धमागधी ॥
संभाविता गुरुवृत्तौ पृथुला दक्षिणे लघु ॥

(बृ० १७३-१७७ पृ० ४९-५०)

इन उद्धरणों का संक्षेप में यही भावार्थ❀ है कि गीत के 'पदों' (शब्दों) में गुरु अक्षरों की संघटना से 'संभाविता' गीति और लघु अक्षरों की संघटना से 'पृथुला' गीति की निष्पत्ति होती है। 'मागधी' और 'अर्धमागधी' गीतियों का संबन्ध गीत के पदों (शब्दों) की आवृत्ति (पुनरुक्ति) की प्रक्रिया के साथ है। शार्ङ्गदेव ने भी इन चार गीतियों का इसी संदर्भ में निरूपण किया है। और राग-वर्गीकरण के लिए गृहीत पांच गीतियों (शुद्धा भिन्ना आदि) से इन्हें पृथक् रखा है। कल्लिनाथ ने भी इन दो प्रकार की गीतियों की भिन्नता निम्नोद्धृत शब्दों में कही है :—

ननु पूर्वोक्ताभ्यो मागध्यादिगीतिभ्योऽधुनोक्तानां शुद्धाऽऽदिगीतीनां को भेद इति चेत्; उच्यते। मागध्यादयः प्राधान्येन पदतालाश्रिताः; शुद्धाऽऽदयस्तु, प्राधान्येन स्वराश्रिता………… ।

(सं० र० २।१।२ पर कलानिधि टीका)।

अर्थात् यदि यह प्रश्न किया जाए कि मागधी आदि गीतियों से शुद्धा आदि गीतियाँ किस प्रकार भिन्न हैं, तो उसका उत्तर यही है कि मागधी आदि प्रधानरूप से 'पदताल' के आश्रित हैं और शुद्धा आदि प्रधानरूप से स्वर के आश्रित हैं।

मतङ्ग ने जिन सात गीतियों के अन्तर्गत राग-वर्गीकरण किया है उनके जो लक्षण दिये हैं उनसे भी यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि इन गीतियों का मुख्य संबन्ध स्वर-प्रयोग से ही है। यथा :—

मन्द्रामन्द्रैश्च तारैश्च ऋजुभिर्ललितैः समैः। स्वरैश्च श्रुतिभिः पूर्णा चोक्षा गीतिरुदाहृता ॥
सूक्ष्मैश्च प्रचलैर्वक्रैरुल्लासितप्रसारितैः। ललितैस्तारमन्द्रैश्च भिन्ना गीतिरुदाहृता ॥
प्रयोगैश्च द्रुतैः कार्या मिश्रामिश्रैश्च मालवैः (?,। ईषत्प्रकम्पितैः किञ्चिद्ललितैस्तारदीपितैः ॥
सोच्छ्वासैः खण्डखण्डैश्च भिन्ना गीतिरुदाहृता* ।
†ओहालललितैश्चापि त्रयो गौडाश्च शोभनाः ।

❀ इन उद्धरणों में 'वृत्ति' 'दक्षिण' 'चित्र' आदि जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है उनका स्पष्टीकरण यहाँ प्रासंगिक नहीं है। इनका विशद स्पष्टीकरण प्रणव-भारती (द्वितीय भाग) में किया जायगा।

*विषय-प्रतिपादन की शृंखला की दृष्टि से, मुद्रित क्रम में यहाँ कुछ परिवर्त्तन करना पड़ा है।

†'ओहाल' से संभवतः 'ओहाटी' संबन्धी स्वर प्रयोग से तात्पर्य है। 'ओहाटी' या 'ओहाडी' या 'ओहालो' का लक्षण मतंग ने इस प्रकार दिया है :—

हकारोकारयोर्योगादोहालो परिकीर्त्तिता। चिबुकं हृदये न्यस्य ओहाडी मन्द्रजा भवेत् ॥
द्रुता द्रुततरा कार्या स्वरकम्पेन पीडिता। ओहाडी ललिता चापि हृष्टाहृष्टेन कर्मणा ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समाक्षरा समा चैव कार्यारोहावरोहिणी । अविश्रामेण त्रिस्थाने गौडी गीतिरुदाहृता ॥
ललितैर्गमकैश्चित्रैः प्रसन्नैरौरसैः समैः । रञ्जकैः स्वरसन्दर्भैं रागगीतिरुदाहृता ॥
चतुर्णामपि वर्णानां यो रागः शोभनो भवेत् । स सर्वो दृश्यते येषु तेन रागा इति स्मृताः ॥
ऋजुभिर्ललितैः किञ्चित् सूक्ष्मासूक्ष्मैश्च सुश्रवैः । ईपद्द्रुतैश्च कर्तव्या मृदुभिर्ललितैस्तथा ॥
प्रयोगैर्मसृणैः सूक्ष्मैः काकुमिश्रैः सुयोजितैः । स्वरैः साधारणा गीतिर्गीतिज्ञैः समुदाहृता ॥
एवं साधारणा ज्ञेया सर्वगीतिसमाश्रया ।
प्रयोगैर्गात्रजैः श्लक्ष्णैः काकुरक्तैः सुयोजितैः । कम्पितैः कोमलैर्दीप्तैर्मलिवीकाकुनान्वितैः ॥
ललितैः सुकुमारैश्च प्रयोगैश्च सुसंयतैः । भाषागीतिः समाख्याता एषा गीतिविचक्षणैः ॥
यथा वै रज्यते लोकस्तथा वै संप्रयुज्यते । ललितैर्बहुभिर्दीप्तैः कम्पितैरौरसैः समैः ॥
तारातितारैर्मसृणैर्मध्ये मध्यमदीपितैः । गमकैः श्रोत्रसुखदैर्ललितैस्तु यदृच्छया ॥
विभाषागीतिस्तु संयोज्या यथा लोकोऽनुरज्यते ॥ (बृ० पृ० ८२-८४)

इस उद्धरण के संक्षिप्त भावार्थ के अनुसार सात गीतियों के लक्षण इस प्रकार हैं :—

१—चोक्षा अथवा शुद्धा गीति—मन्द्र, मध्य, तार स्थानों में ऋजु (सरल) ललित, सम, पूर्ण (श्रुतियों से पूर्ण) स्वरों का प्रयोग ।

२—भिन्ना गीति—सूक्ष्म, कम्पित, वक्र, ललित, तार, मन्द्र, द्रुत, ईषत्कम्पित, तारदीपित, उच्छ्वास-सह, खण्ड-खण्ड में स्वरों का प्रयोग ।

३—गौड़ी गीति—ओहाटी (गमक) सह, ललित, सम, विश्रामरहित स्वरों का प्रयोग ।

४—रागगीति—ललित, गमकयुक्त, 'प्रसन्न', रञ्जक, स्वरसन्दर्भों का प्रयोग ।

५—साधारणगीति—सब गीतियों के लक्षणों के एकत्र समावेश से निष्पन्न ।

६—भाषा गीति—श्लक्ष्ण, काकु-सहित, सुयोजित, कम्पित, कोमल, दीप्त, ललित, सुकुमार स्वर-प्रयोग । जिस प्रकार लोकरञ्जन हो उसी प्रकार इस गीति का प्रयोग किया जाता है ।

७—विभाषा गीति—ललित, दीप्त, कम्पित, सम, तारातितार, मसृण, मध्यम-दीपित, श्रोत्रसुखद गमक से युक्त । इसमें लोकरञ्जन की दृष्टि से स्वेच्छानुसार इन स्वर प्रयोगों का यथास्थान विनियोग किया जा सकता है ।

प्रश्न हो सकता है कि प्राचीनों द्वारा भिन्न २ गीतियों के निरूपण का तथा उनके अन्तर्गत राग-विभाजन का क्या तात्पर्य है ? क्या इससे यह समझा जाए कि रस-भाव की दृष्टि से भिन्न २ रागों का उनके अनुकूल गमकादि स्वरप्रयोग तथा विलम्बित-मध्य-द्रुत आदि लयप्रयोग-युक्त भिन्न २ गायनवादन-शैलियों में प्रयोग करने का विधान है ? मतंग ने रागों का गीतियों के अनुसार जो वर्गीकरण किया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि उस काल में भिन्न २ रागों का भिन्न २ लयों,

---

त्रिस्थानकरणैर्युक्ता स्व(त्रि)स्थानचलनाकुला । चतुर्विधा तथोहाडो कर्त्तव्या गेयवेदिभिः ॥
(बृ० पृ० ८३)

अर्थात् हकार और उकार के योग से 'ओहाली' (गमक विशेष) निष्पन्न होती है। ठोड़ी को हृदय में (गले के नीचे) लगाकर मन्द्र स्थान में 'ओहाटी' का प्रयोग हो सकता है। मन्द्र, मध्य, तार तीनों स्थानों से 'ओहाटी' का सम्बन्ध है। उसमें द्रुत और द्रुततर लय में स्वरकम्प का प्रयोग रहता है। यह ओहाडी चार प्रकार की होती है। (इस उद्धरण का पाठ 'संगीत रत्नाकर' २।१।५ की 'सुधाकर' टीका में उद्धृत अंश के पाठ के अनुसार शुद्ध किया गया है)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिन्न २ गमकों, भिन्न स्थानों (सप्तकों) और भिन्न उच्चार—प्रकारों से प्रयोग हुआ करता था। विभिन्न रागों की इसी प्रयोगगत भिन्नता अथवा विविधता का शास्त्रीय निरूपण गीतियों में किया गया है।

उपर्युक्त वैविध्य के कुछ अवशेष आज भी हमारी राग-परम्परा में विद्यमान हैं, यद्यपि गीतियों के रूप में उसके शास्त्रीय निरूपण का प्रत्यक्ष प्रयोग के साथ सम्बन्ध हम भूल बैठे हैं। उदाहरण के लिए कल्याण, झिंझोटी, भैरवी, काफ़ी जैसे रागों में स्वरों का सीधा, सम प्रयोग शुद्धा गीति के अन्तर्गत समझा जा सकता है; तद्वत् दरबारी, मल्हार, पूरिया जैसे रागों में मन्द्र-मध्य स्थान में मन्द गति में गमकयुक्त प्रयोग का गौड़ी गीति के साथ संबन्ध जान पड़ता है। बहार, जैजैवन्ती, भैरव, देसी आदि रागों में स्वरों के सूक्ष्म और वक्र प्रयोग के बाहुल्य में भिन्ना गीति का अस्तित्व दिखाई देता है; उसी प्रकार अडाणा, सोहनी जैसे तारव्याप्ति और त्वरित गति वाले रागों में 'वेसरा' (वेगस्वरा) गीति का स्पष्ट दर्शन होता है; तद्वत् सरल, वक्र, गमकयुक्त त्वरितगतियुक्त—इन सब प्रकार के स्वर-प्रयोगों का मिश्रण तो आज के अधिकांश रागों में विपुल मात्रा में दिखाई देता है। उदाहरण के लिए मारूबिहाग, भूपाली, हमीर, केदार, आसावरी आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

हमारे आज के राग-प्रयोग में 'गीति'-परंपरा के अल्प अवशेष प्राप्त होने पर भी यह निःसंदेह कहना पड़ता है कि आज हम अधिकांश रागों को एक ही ढर्रे से, एक ही विस्तार-क्रम से गाते बजाते हैं। आज हम रागों की प्रकृति, रस, स्वरान्तराल, स्वरोच्चार, स्वाभाविक गति की ओर न देखते हुए प्रायः एक ही शैली से प्रत्येक में विलम्बित आलाप, बहलावा, बोलतान, तान का प्रयोग और विलम्बित, मध्य, द्रुत सभी लयों का सञ्चार करते हैं। इस प्रकार रस-रंग की जो क्षति होती है और भाव-भंग की जो अवस्था अस्तित्व में आती है, वह निःसंदेह शोचनीय है। उदाहरण के लिए हम कई स्थानों पर, कितनी ही बार यह निवेदन कर चुके हैं कि तोड़ी जैसी प्रौढ़ प्रोषितपतिका, विरहदग्धा, परम दुःखिता रागिनी में केवल गमकयुक्त ही नहीं, अपितु सभी प्रकार की तानों का प्रयोग रस-भाव की दृष्टि से निषिद्ध मानना चाहिये; उस विरहिणी के दुःख का आविर्भाव आलाप तक ही सीमित रखना चाहिए क्योंकि उसके विलापों की अभिव्यक्ति आलाप से ही हो सकती है; गमक की तानों से, द्रुतगति की तानों से या अन्य किसी प्रकार की तानों से नहीं हो सकती, बल्कि उनसे नितान्त विपरीत भाव खड़ा होगा। किन्तु इसके सरल आरोहावरोह के कारण इसमें इतनी तानबाजियां होती हैं कि इसके रस का संपूर्ण तिरोभाव हो जाता है। कई बार विदेशी लोग पूछते हैं कि तानों में तो तोड़ी का करुण रस कहीं भी दिखाई नहीं देता। तब कहना पड़ता है कि रस-दृष्टि से इसमें तानों का प्रयोग नितान्त अग्राह्य होने पर भी हमें परेच्छा से अनिच्छा कर्म करना पड़ता है।

हम जानते हैं कि कुछ श्रोता भी तानबाज़ी की ही राह देखा करते हैं और उसी को सराहना के लिए तत्पर रहते हैं। परन्तु श्रोताओं की मनोभूमिका तैयार करने का कार्य भी तो कलाकार का ही है। किन्तु कलाकार की कौन कहे? प्रवाह में सब कोई बह जाते हैं और शास्त्रसम्मत 'नये' मार्ग को खोजने वाला, दिखाने वाला, प्रयुक्त करने वाला यदि कला-पक्ष में अपना मत कहता है, समझाता है, करके दिखाता है, तब भी "कौन सुने कासे कहौं ये दुख बतियां" वाली स्थिति सामने आती है। लीक को छोड़ने वाला विरला ही होता है। लोक-निन्दा से ऊंचा उठा हुआ वह विरला ही अपनी तपःसिद्धि से सत्य-पथ का निदर्शन करेगा। श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है—"अपूर्व अवसर एवुं क्यारे आवशे? क्यारे थाशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो, सर्वसंबन्धनुं बन्धन तीक्ष्ण छेदी ने वीचरशुं, कोई महत्पुरुष ने पन्थ जो।" अस्तु।

उपर्युक्त चर्चा का सारांश यही है कि प्राचीन गीति-व्यवस्था में रागों के गमक-भेद, लय-भेद, स्थान-भेद आदि के वैज्ञानिक नियमन की जो विचारधारा निहित है, उसके अनुसार आज के लक्ष्यगत रागों का नियमन परम वांछनीय है। ऐसे नियमन से ही हमारे संगीत का भाव-पक्ष पुष्ट और सबल हो सकता है।

मतंग ने ऊपर दी गई सात गीतियों में से प्रथम पांच में ग्रामरागों का वर्गीकरण किया है और शेष दो (भाषा और विभाषा) में देशी रागों का। उनका यह वर्गीकरण परिशिष्ट में (क) तालिका में प्रस्तुत है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शार्ङ्गदेव

शार्ङ्गदेव ने मतंग के सदृश पांच गीतियों के अन्तर्गत ग्रामरागों का विभाजन किया है। किन्तु उन पांच गीतियों के नाम दुर्गशक्ति के मतानुसार शार्ङ्गदेव ने ग्रहण किये हैं। यथा:—शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा और साधारणी। मतंग ने वेसरा के स्थान पर रागगीति का ग्रहण किया है। शार्ङ्गदेव ने इन पांच गीतियों के लक्षण इस प्रकार दिये हैं:—

शुद्धा स्यादवक्रैर्ललितैः स्वरैः। भिन्ना वक्रैः स्वरैः सूक्ष्मैर्मधुरैर्गमकैर्युता॥
गाढैस्त्रिस्थानगमकैरोहाटीललितैः स्वरैः। हकारौकारयोगे वा हृन्यस्ते चिबुके भवेत्॥
वेगवद्भिः स्वरैर्वर्णचतुष्केऽप्यतिरक्तितः। वेगस्वरा रागगीतिर्वेसरा चोच्यते बुधैः॥
चतुर्गीतिगतं लक्ष्म श्रिता साधारणी मता। शुद्धाऽऽदिगीतियोगेन रागाः शुद्धादयो मताः॥

(सं० र० २।१।३,७)

अर्थात्—अवक्र (सरल), ललित स्वरों से शुद्धा; वक्र, सूक्ष्म, मधुर गमकों से युक्त स्वरों से भिन्ना; गाढ़, त्रिस्थान-व्यापी गमकों से युक्त, 'ओहाटी' सहित (हकार-औकार के योग से और गले के नीचे चिबुक लगाने से उत्पन्न) ललित स्वरों से गौड़ी; चारों वर्णों में वेगसहित स्वरों के रक्तिपूर्ण प्रयोग से वेसरा और चारों गीतियों के लक्षणों के मिश्रण से साधारणी गीति निष्पन्न होती है। 'शुद्धा' आदि गीतियों के योग से राग भी 'शुद्ध' आदि नाम पाते हैं।

देशी रागों के वर्गीकरण के लिए मतंग ने भाषा और विभाषा—इन दो गीतियों को ग्रहण किया है, यह हम देख चुके हैं। किन्तु शार्ङ्गदेव ने रागाङ्ग, भाषाङ्ग, क्रियाङ्ग और उपाङ्ग इन चार विभागों में देशी रागों का वर्गीकरण किया है। यहां यह ध्यान देने की बात है कि शार्ङ्गदेव के 'भाषाङ्ग' का मतंग को 'भाषा' अथवा 'विभाषा' के साथ शब्द-साम्य होते हुए भी 'अर्थ-साम्य' नहीं है। मतंग ने 'भाषा' 'विभाषा' का संबन्ध सीधे ग्रामरागों के साथ जोड़ा है अर्थात् यह बताया है कि अमुक ग्राम-राग की इतनी 'भाषा' हैं और इतनी 'विभाषा' हैं। किन्तु शार्ङ्गदेव ने 'भाषाङ्ग' का इस प्रकार से ग्राम-रागों के साथ संबन्ध न जोड़कर उनका 'देशी' रागों के एक प्रकार-विशेष के रूप में स्वतन्त्र निरूपण किया है। साथ ही उन्होंने मतंगोक्त 'भाषा-विभाषा' का भी पृथक् निरूपण किया है। उनका राग—वर्गीकरण परिशिष्ट में तालिका (ख) के रूप में प्रस्तुत है।

मध्ययुग की राग-वर्गीकरण-व्यवस्था

'संगीत रत्नाकर' के पश्चात् 'ग्राम-राग' और 'देशी-राग' वर्गीकरण के स्थान पर राग-रागिणी और मेल-पद्धति के नाम से दो अन्य वर्गीकरण-पद्धतियां अस्तित्व में आईं; किन्तु 'सङ्गीत रत्नाकर' के परवर्ती काल का एक विराट् ग्रन्थ ऐसा भी प्राप्त है जिसमें 'ग्राम-राग' और 'देशी-राग' का ही मतंग-शार्ङ्गदेवोक्त ढांचा वर्गीकरण के लिए ग्रहण किया गया है। यह ग्रन्थ है—कालसेन अथवा कुम्भा राणाकृत 'सङ्गीतराज' जिसका काल पन्द्रहवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध माना जाता है इस एक अपवाद को छोड़कर, मध्ययुग के प्रायः आरंभ से ही राग-वर्गीकरण की दो धाराएं अस्तित्व में आईं—एक की दृष्टि ने रागों के भाव-रूप को लक्ष्य करके उनमें पुरुषत्व-स्त्रीत्व का दर्शन किया, उनके यौवन-प्रौढ़त्व का अनुभव किया, यहां तक कि किसी-किसी ने तो नान्यतर नपुंसक रागों की भी भावुक कल्पना की और दूसरी की दृष्टि रागों के स्वररूप पर केन्द्रित रही। पहली धारा राग-रागिणी-वर्गीकरण के रूप में विकसित हुई और दूसरी धारा ने मेल-पद्धति का रूप धारण किया।

राग-रागिणी-वर्गीकरण

दक्षिण को छोड़कर सारे भारत में राग और रागिणी का वर्गीकरण प्रचलित रहा और आज तक वह भारत के उन सभी प्रदेशों में पूर्ण मात्रा से जनमानस में घुला हुआ है। सामान्य ग्राम-जनता भी रागों को पुरुष और स्त्री के रूप में जानती है। भारत के कलाकारों के मन और हृदय पर इसकी इतनी जबर्दस्त पकड़ है कि वे अभी तक इसी के प्रभाव से प्रभावित हैं। पौराणिक कथाओं पर जिस श्रद्धा से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्वास किया जाता रहा है, कुछ उसी प्रकार राग और रागिणी देव-देवियों के सदृश भारतीय संस्कृति में पूजे जाते रहे हैं। बीसवीं सदी की पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति में दीक्षित जनता भले ही इस परम्परा को पौराणिक या कपोल-कल्पना मान लें, फिर भी कलाकार और सामान्यजन राग और रागिणियों के भावपूर्ण अस्तित्व को स्वीकार करते रहे हैं, अभी भी कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति में शब्दशास्त्र, शिल्प, संगीत, नृत्य, नाट्य आदि सभी विद्याओं और कलाओं का उद्गम दिव्य माना गया है और सभी ग्रंथकारों ने ग्रंथारम्भ में उन-उन विषयों की उत्पत्ति की कथा इसी मान्यता के अनुसार कही है।

जिन-जिन कलाकारों अथवा कला-मर्मज्ञों की भावदृष्टि ने स्वरों का दर्शन किया, उन स्वरों के श्रुत्यन्तरों, स्वरान्तरों, संवादान्तरों, अनुवादान्तरों और विवादान्तरों को देखा, जांचा, परखा, उन्होंने भावुक हृदय की गहराई से इन सब में निहित भाव-तत्त्व को पहचाना, स्वरोचार, गमकादि प्रयोग, काक्वादि-भेद इन सबसे पर अथवा अतीत एक महान् सत्य का अनुभव किया। उनकी इस अनुभूति ने इन स्वरों से उद्भूत रागों में पुरुषत्व-नारीत्व का दर्शन किया अथवा दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि रागों की भावाभिव्यञ्जना को स्थूल भाषा में निबद्ध करने के लिए पुरुषत्व-स्त्रीत्व के प्रतीक का ग्रहण किया। तदनुसार उन्होंने भावना की ठोस नींव पर इन राग-रागिणियों का शिव और पार्वती के साथ अथवा किसी-किसी ने कृष्ण और गोपियों के साथ संबन्ध स्थापित किया है।

भारतीय दर्शन में सृष्टि के पूर्व ब्रह्म की "एकोऽहं बहु स्याम्" इस कामना के द्वारा एक महान् सत्य को प्रकट किया गया है। 'बहु' होने से पूर्व 'एक' से 'दो' का होना आवश्यक होता है। 'एक' ही बिन्दु या शून्य का द्विधा विभक्त होना और उन दो के परस्पर योग से तीन तथा क्रमशः अनन्त की उत्पत्ति,—यही सृष्टि का क्रम माना गया है। सृष्टितत्त्व में प्रकृति-पुरुष का योग विभिन्न रूप से विभिन्न दर्शनों में स्थान पाए हुए है। वेद, उपनिषद्, पुराणों में से होती हुई यह विचारधारा तन्त्रों में सब से अधिक विकसित हुई, यद्यपि संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त युग्मभाव को प्रत्येक भारतीय दर्शन में किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया गया है। यही युग्म-भाव संगीत में भी स्वरों के भाव-रूप की अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीक के रूप में अपनाया गया और रागों में पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व को स्थान दिया गया।

हम देखते हैं, जानते हैं कि उद्भिज से लेकर पिंडज तक सभी में स्त्री, पुरुष का द्वैत भाव विद्यमान है। एक किसान एक 'अद्वैत' बीज को बोता है, उसका जब अंकुर निकलता है तब एक का दो हो जाता है। यह द्विदल भी उसी सत्य को निदर्शित करता है।

हमारे महर्षियों तथा आचार्यों ने स्वरनिबद्ध रागों में ईश्वर और माया के सदृश पुरुषराग और स्त्री रागिणी का भावमय अनुभव किया और उन्हें तदनुसार संज्ञा प्रदान की।

आज का विज्ञान का युग भावना के इस तर्कातीत दर्शन को समझने में असमर्थ रहे तो कोई आश्चर्य नहीं। हम जानते हैं कि बुद्धि और हृदय में सदैव अंतर रहा है। बुद्धि को तर्क का सहारा है, हृदय को श्रद्धा का। यह भी कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी धर्मों का उदय, इतना ही नहीं ईश्वर का अस्तित्व भी इसी श्रद्धा पर अवलम्बित है। तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है—"जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी"—भगवान् श्रीकृष्ण ने भी यही कहा है—"श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यः श्रद्धः स एव सः"—

आचार्यों की भाव-दृष्टि से प्रसूत राग-रागिनियों के भावरूपों को शायद आज तर्क-विरुद्ध कहा जाए, वैज्ञानिक ढंग से इनकी विवेचना असंभव बताई जाए; फिर भी यह आज भी नितांत सत्य है कि जिन-जिन राग-रूपों को हम सुनते हैं, गुनते हैं उनमें पुरुषत्व और स्त्रीत्व का दर्शन केवल स्वरों के द्वारा सचमुच हो ही जाता है।

यह नितान्त निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि पाश्चात्य जगत् में भी बिथोवन, मोजार्ट, शोपेन, बाक़ इत्यादि विश्वप्रसिद्ध कंपोजरस् (स्वर काव्य नियोजकों) ने भी स्वरों को इस भाव सृष्टि को सूक्ष्मतया देख कर ही अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Symphony orchestra के स्वर-देह को चैतन्य प्रदान किया है। यह निःसंदेह सत्य है कि उनकी निर्मित स्वर रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न स्वरान्तरों द्वारा मानव हृदय की भावनाओं को ही उन्होंने मूर्त रूप दिया है। भूत काल के इन कलाकारों की कृतियों का आज भी उतना ही समादर है और वे जनता के मन-बुद्धि आत्मा को भूलोक से स्वर्लोक में पहुँचा देती हैं। आज भी वे कलाकार उतने ही श्रद्धेय और समादरणीय स्थान पाए हुए हैं।

इससे यह सिद्ध है कि क्या पौर्वात्य और क्या पाश्चात्य सभी अंतर्दृष्टि-सम्पन्न कलाकारों, चिंतकों ने स्वरों की भावसृष्टि को देखा है और अपने-अपने ढंग से निरूपित किया है। भारतीय संगीत में स्वरों के भाव जगत् को निरूपित करने के लिए पुरुषत्व और स्त्रीत्व का जो प्रतीक ग्रहण किया है उस पर थोड़ा-सा दार्शनिक विचार हम ऊपर प्रस्तुत कर चुके हैं। रागों अर्थात् विशिष्ट स्वर-सन्निवेशों के भावमय रूप को स्त्री-पुरुष के व्यापक और सबल प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त करने की इस परंपरा की भित्ति को यदि हम समझ लें तो हम इस परंपरा में गौरव का दर्शन कर सकेंगे और जगत् के समक्ष उन्नतशिर से इसकी व्याख्या कर सकेंगे। जिस प्रकार हमारी 'राग'—पद्धति विश्व भर में अद्वितीय है, उसी प्रकार संगीत के भाव-जगत् में पुरुषत्व-स्त्रीत्व का विनियोग भी हमारी 'संगीत-संस्कृति' का एक गौरवमय अंग है।

वर्तमान प्रचलित राग-रागिणियों के कुछ उदाहरण हम देख लें जिससे राग-रागिणी-वर्गीकरण में निहित विचारधारा प्रत्यक्ष प्रतीति में आ सके। अधुना प्रसिद्ध दरबारी कान्हड़ा के प्रौढ़ पुरुष रूप का हम दर्शन करें :—

सा ऽऽ नि॒ ध॒ ~ सा नि॒ नि॒ सा, सा रि सा रि सानि॒सारि नि॒ ध॒ ~ नि॒ ऽ प, म॒प नि॒ ध॒ ~ सा नि॒ नि॒ सा।

सारि ग॒ म ~ म ~ मरिऽसा। रिसानि॒ध॒नि॒सारिग॒~ग॒मपग॒~मरिऽसा ; रिसारि ग॒ म ~ग॒ म प नि॒ ध॒ ~

प नि॒ ~प, मपध॒ ~ ~ प नि॒ऽप, मपनि॒ प नि॒ प नि॒पमप म ग॒~ नि॒ प नि॒ प पमपमपनि॒ म ग॒ ~मरिऽसा,

नि॒सारि नि॒ ध॒ ~ सा नि॒ सा।

दरबारी कान्हड़ा की तालीम देते समय गुरु अपने शिष्यों को इस बात की ताक़ीद करते हैं कि इस राग के गांधार धैवत पर गंभीर रूप से आंदोलन दे कर इन स्वरों पर गमक का विपुल उपयोग करें और विलंबित लय में तथा गंभीर आवाज़ से इनका उच्चार करें। साथ ही वे यह भी आदेश देते हैं कि इस राग की अलापचारी मंद्र और मध्य तक ही सीमित रखी जाय। जो भी तान ली जाय वह गमक युक्त हो; इतना ही नहीं द्रुत तान का क़तई उपयोग न किया जाए। तार सप्तक के स्वरों का उच्चार करते समय भी स्वरों के स्थिर उच्चार किए जाएं जिससे राग की गंभीरता में बाधा न पड़े।

ऊपर कहे ढंग से दरबारी कान्हड़ा के स्वरों का यथोचित काकु सहित उच्चार करके देखने से विश्वास हो जायेगा कि इस राग के स्वरों में प्रौढ़ वयस्क पुरुष तथा वयानुसार गंभीर स्वभाव का दर्शन होता है।

क़रीब-क़रीब उन्हीं स्वरों से गाया जाने वाला अड़ाना नामक एक अन्य राग है, जिसके स्वरों के आन्दोलन-रहित उच्चार, तारमय व्याप्ति और द्रुत गति ये सब उसे एक युवा पुरुष का रूप प्रदान करते हैं। और इसकी शिक्षा देते समय गुरु सदैव आदेश देते हैं कि इस राग के स्वर कभी भी आन्दोलन सहित और विलम्बित गति से न उच्चारे जाएं। और भूल कर भी मन्द्र सप्तक में सञ्चरण न किया जाए। इसको विधिवत् गा बजा कर देखने से मन पर उसका क्या प्रभाव पड़ता है, उसको जांचने से यह कहना नहीं पड़ेगा कि अड़ाना किसी तरल प्रकृति के युवा पुरुष का चित्र है। इसका अल्प स्वरूप निम्नोक्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नि॒पनि॒मप सां, नि॒नि॒प नि॒नि॒पमप, सां, पमनि॒ग सांनि॒रिंसां सांरिंनि॒सां ध॒नि॒सां, ❀रिंसांऽ ❀रिंनि॒सां ध॒नि॒सां,

❀नि॒पऽनि॒ ❀गनि॒मप, रिंसांऽरिं सांरिंनि॒सां, ❀मंगं॒ऽमं ❀गं॒मंरिंसां, सांरिंनि॒सां ध॒नि॒सां।

यहां यह पुनः ध्यान दिलाना आवश्यक है कि इन स्वरों का आन्दोलन-रहित द्रुतगति से ही उच्चार किया जाय।

स्थूल मान से क़रीब क़रीब इन्हीं ग॒, ध॒, नि॒, कोमल स्वरों वाली आसावरी नाम की रागिणी का रूप भी देख लें। इसमें मध्यम गति से, अल्प आन्दोलन, अल्प मींड़ और आघात-रहित स्वरोच्चार से निम्नोक्त स्वर प्रयुक्त किए जाएं।

सरिमप ^प^ध॒ऽप, रिमऽपनि॒ध॒ऽप, मपनि॒ध॒ऽप, पध॒पमरिमपनि॒ध॒ऽप, रिमपध॒मपनि॒ध॒ऽप, ध॒मध॒प नि॒ध॒ऽप, पध॒पमप-

नि॒ध॒ऽप, पध॒प मगम रिमपनि॒ध॒ऽप, ध॒मध॒प सांनि॒ध॒ऽप, नि॒ध॒ऽप, ध॒ऽम, मपनि॒ध॒ऽपध॒ऽम, मपध॒मपग॒ ^सा^ रिऽसा।

ध्यान रहे कि इस रागिणी में स्त्रीत्व का दर्शन उसके कोमलकांत स्वरोच्चार में सन्निहित है। दरबारी-कान्हड़ा जैसे पुरुष राग में गांधार का आन्दोलन मध्यम से लिया जाता है और यह आन्दोलन बार बार गंभीर रूप से उच्चरित होता है. वही स्थिति उसके धैवत की भी है। जब भी दरबारी में धैवत का उच्चार किया जाए तब सदैव कोमल निषाद से ही आन्दोलन दिये जाएं। तद्वत् अवरोह करते समय नि-प और म-रे की संगति ऐसे गंभीर ढंग से उच्चारी जाए जिससे उसके पुरुषोचित भाव का दर्शन हो। नि-प और म-रि के अन्तराल की दीर्घता भी पुरुष भाव को सूचित करती है। दूसरी ओर आसावरी में नि-प न करते हुए धैवत को आन्दोलन दिए बिना कोमल भाव से 'नि॒ ध॒ प' यों स्वरोच्चार किया जाए जिससे उसका स्त्रीत्व निखर आए। जब धैवत पर अल्प आन्दोलन दिया जायेगा तब पंचम से सम्बन्ध रहेगा, दरबारी सदृश निषाद से नहीं। ध्यान रहे कि रिमपध॒पमप यह स्वर समूह जब आसावरी में लिया जाता है तब दरबारी के धैवत से एक श्रुति उतरा धैवत प्रयुक्त होता है और वह भी स्त्रीभाव को परिपुष्टि करता है; साथ ही इस रागिणी में जब कोमल गांधार पर कुछ देर ठहर कर उसे थोड़ा सा आन्दोलन दिया जाता है, तब वह गांधार ऋषभ के साथ संबन्ध जोड़ता हुआ (दरबारी सदृश मध्यम से नहीं) नितांत मृदु भावना खड़ी करता है। इस प्रकार स्वरों के सूक्ष्मान्तर उनके काक्वादि उच्चार, सप्तकान्तर, मंद्र मध्य या तार विस्तार, विलंबित, मध्य द्रुत के लयभेद—ये और ऐसे अन्य सभी उपादानों से राग का पुरुषत्व और रागिणी का स्त्रीत्व, उनकी बाल, युवा, प्रौढ़ आदि अवस्थाएं, वीर, करुण, शान्त, श्रृंगार जैसे रस—इन सबका दर्शन होता है। इसी दृष्टि से हिंडोल और मालकंस को देखने से भी क्रमशः वीर पुरुष और शान्त मानव का दर्शन होगा।

हिण्डोल में यों रि प का समूचा त्याग है, गध नि शुद्ध और मध्यम तीव्र है, स्वरों के खड़े खड़े उच्चार किए जाते हैं, बीच-बीच में आघात से स्वरों पर धक्का दिया जाता है और उससे भर्त्सना, ललकार, दर्प आदि वीर-पुरुषोचित भावनाएं उद्दीप्त होती हैं।

दूसरी ओर मालकंस में रि प का समूचा त्याग, 'ग, ध नि' का कोमलत्व शुद्ध मध्यम का दीर्घ उच्चार, स म और ध॒ म को स्वर संगति इत्यादि उपादानों से एक शांत और गंभीर पुरुष का दर्शन होता है। इन भावों को देखने के लिए और उन्हें दिखाने के लिए यह सदैव ध्यान रहे कि रागों का भाव-रूप उनमें प्रयुक्त स्वरों, उनके उच्चारों, काक्वादि भेद, गमकयुक्त या गमकहीन प्रयोग, आन्दोलनसहित या आन्दोलनरहित अवस्था, तार मंद्रादि व्याप्ति, द्रुत विलंबित आदि गति इत्यादि प्रयोग-विधि पर निर्भर रहता है।

आजकल देखा जाता है कि गायकी अंग के प्रदर्शन के मोह में रागों के स्वरों में अंकित भावरूप की उपेक्षा हो जाती है। श्रोता भी अधिकतर दो प्रकार के पाए जाते हैं जिनमें एक कलाकार की तैयारी की ओर कान लगाए रहते हैं और दूसरे गीत के शब्द की खोज में लगे रहते हैं। इसीसे राग के वास्तविक रूप का और रस-भाव का दर्शन नहीं हो पाता।

❀ यह चिह्न धक्के सहित उच्चार के लिए है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विश्व के भिन्न २ देशों का मेरा अनुभव यह कहने को बाध्य करता है कि जिन्हें शब्द से निरपेक्ष, स्वर की भाषा द्वारा होनेवाली भावाभिव्यक्ति को देखने, सुनने, परखने का अभ्यास है, वे हमारे रागरूपों को सुनकर कई बार सहज कह उठते हैं, पूछ उठते हैं :—"अहा ! इस रचना में करुणा (Pathos) भरी-पड़ी दिखाई देती, क्या आपके यहाँ भी इसके लिए ऐसी ही मान्यता है ?" अथवा "आवेश, उत्साह (Bravery, Chivalry) प्रेम (love) दिखाई देते हैं," इत्यादि। हम जानते हैं कि अन्य देशों की जनता भारतीय भाषाओं से अनभिज्ञ है। वह जब भी भारतीय संगीत सुनती है, तब भारतीय रागान्तर्गत गीतों के शब्दों की थोड़े ही समझती है ? वह तो प्रयुक्त स्वरों को ही सुनती है। उन्हें उन स्वरावलियों के राग-नाम, रस या भाव इत्यादि के शास्त्रीय पक्ष से कोई परिचय नहीं होता है, फिर भी उन स्वरों में सन्निहित विभिन्न भावों का वे दर्शन करते हैं, भावोद्रेक के साथ तादात्म्य का अनुभव करते हैं और साश्चर्य पूछ उठते हैं —"क्या आपके यहाँ भी हमारी भाँति स्वरों की भावाभिव्यक्ति की मान्यता है ?" तद्वत् भारतीय वाद्यों के वादन से भी वे कितने प्रभावित होते हैं, यह अनजानी बात नहीं है। इसीसे यह सिद्ध है कि संगीत की भाषा विश्व की भाषा है, प्राणिमात्र की वह वाणी है, नैसर्गिक भाव-व्यञ्जना का वह माध्यम है। इसीसे उसे देशकालातीत कहा गया है। अस्तु, अब हम भारतीय राग-रागिणी-वर्गीकरण पद्धति का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हैं।

राग-रागिणी-वर्गीकरण का इतिहास —मतंग

हमने मतंग के राग-वर्गीकरण-प्रकरण में ऊपर देखा कि उन्होंने देशी रागों का भाषा और विभाषा गीतियों के अन्तर्गत विभाजन किया है और इन भाषा विभाषा का सीधे ग्रामरागों के साथ संबन्ध जोड़ा है अर्थात यह बताया है कि अमुक ग्रामराग की अमुक भाषाएं हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि जितनी भाषाएं कही हैं उन सब की संज्ञाएं भी स्त्रीलिंगवाची हैं। 'ग्रामराग' यह पुल्लिंगवाची संज्ञा है और 'भाषा-विभाषा' ये स्त्रीलिंगवाची हैं। इन द्विविध संज्ञाओं को देखते हुए यह प्रबल अनुमान हो आता है कि 'राग' और 'रागिणी' की विचारधारा मतंग में ही सर्वप्रथम उपलब्ध हो जाती है। इस अनुमान की पुष्टि वाचनाचार्य 'सुधाकलश' के 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' (१४ वीं शताब्दी ई०) से होती है। अधुना उपलब्ध ग्रन्थों में से इसी ग्रन्थ में सर्वप्रथम स्पष्ट रूप से रागों में पुरुषत्व और स्त्रीत्व का आरोप प्राप्त होता है। वहाँ स्त्री रागों को 'रागिणी' न कह कर भाषा कहा गया है। इस 'भाषा' का मतंग की 'भाषा' के साथ सहज संबन्ध जान पड़ता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जब ग्राम-राग-देशी-राग-वर्गीकरण के स्थान पर राग-रागिणी-वर्गीकरण का विकास आरंभ हुआ तब प्रथमावस्था में स्त्री 'रागिणी' के लिए 'भाषा' संज्ञा का उपयोग यह सूचित करता है कि मतंगोक्त 'भाषा' में रागों के स्त्रीत्व के बीज उस काल में भी ग्रन्थकारों ने देखे होंगे और तभी इस संज्ञा का ग्रहण किया होगा।

२—'संगीत रत्नाकर'

शार्ङ्गदेव के 'संगीत रत्नाकर' में राग-वर्गीकरण के संबन्ध में अधिकांश रूप से मतंग का ही अनुसरण मिलता है। इसलिए जो कुछ ऊपर मतंग के विषय में हम कह आए हैं, वही 'संगीत रत्नाकर' को भी लागू होता है यानी 'भाषा'-'विभाषा' में रागों के स्त्रीत्व-दर्शन का बीजरूप जैसे मतंग के बृहद्देशी में समझा जा सकता है, उसी प्रकार 'संगीत रत्नाकर' में भी परम्परागत रूप से समझा जा सकता है। किन्तु यह अवश्य स्मरणीय है कि रागों के 'पुरुषत्व' अथवा 'स्त्रीत्व' का कोई भी प्रस्फुट उल्लेख 'संगीत रत्नाकर' में नहीं मिलता।

—नारद (?) का संगीत मकरन्द

इस ग्रन्थ और ग्रन्थकार की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। श्रीरामकृष्ण कवि (संपादक 'संगीत मकरन्द') की ऐसी मान्यता है कि यह ग्रन्थ ७वीं शताब्दी से ११ वीं शताब्दी के बीच की रचना है और तदनुसार यह 'संगीत रत्नाकर' के पूर्ववर्ती ठहरता है। यदि इस ग्रन्थ का काल सचमुच उतना ही प्राचीन हो जितना कि श्रीरामकृष्ण कवि ने कहा है, तब तो राग-रागिणी वर्गीकरण की परम्परा की प्राचीनता भी साथ ही सिद्ध हो जाए, क्योंकि इसमें 'राग-रागिणी' का उल्लेख मिलता है। किन्तु इस ग्रन्थ के विषय-प्रतिपादन को देखते हुए इसे इतना प्राचीन मानना समीचीन नहीं जान पड़ता। स्थानाभाव के कारण सभी विषयों की चर्चा यहाँ संभव नहीं है, किन्तु केवल राग-वर्गीकरण पर ही विचार करें तो निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मतंग का काल भी सातवीं शताब्दी ई० के आसपास माना जाता है। इनके ग्रन्थ में पांच गीतियों में ग्राम-राग-वर्गीकरण तथा दो गीतियों में देशी राग वर्गीकरण पाया जाता है। 'संगीत रत्नाकर' में प्रायः इसी वर्गीकरण-पद्धति का प्रतिपादन मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मतंग से लेकर शार्ङ्गदेव तक राग-वर्गीकरण की एक ही धारा प्रवाहित रही है। यदि 'संगीत मकरन्द' को इन दोनों के बीच के काल रखा जाए तो दो बड़े प्रश्न उपस्थित होते हैं:—

(१) जिस काल में मतंगोक्त वर्गीकरण प्रचलित रहा होगा, उसी में नारद (?) ने यदि किसी नवीन वर्गीकरण-प्रणाली का प्रवर्त्तन किया होता तो क्या वे उस काल में प्रचलित पद्धति का कुछ भी उल्लेख न करते ?

(२) दूसरी ओर 'संगीत रत्नाकर' कार शार्ङ्गदेव को पूर्ववर्ती ग्रन्थों में यदि 'संगीत मकरन्द' भी उपलब्ध होता तो क्या वे पुरुष-राग स्त्री-राग इत्यादि की वर्गीकरण-प्रणाली को अपने ग्रन्थ में किसी रूप में भी स्थान न देते ?

इन प्रश्नों में 'संगीत मकरन्द' को 'संगीत रत्नाकर' से पूर्ववर्ती मानने में बड़ी बाधा निहित है जिसके कारण इसका काल पूर्ण संदिग्ध है।

'संगीत मकरन्द' में राग-वर्गीकरण के निम्नलिखित पृथक्-पृथक् रूप मिलते हैं:—

(१) रागों के प्रयोग-काल के अनुसार :—

(क) सूर्यांश राग (प्रातःकालीन), (ख) चन्द्रांश राग (सायंकालीन), (ग) मध्याह्नकालीन।

(२) संपूर्ण-षाडवादि अवस्था के अनुसार :—

(क) संपूर्ण राग, (ख) षाडव राग, (ग) औडव राग।

(३) 'लिंग' के अनुसार :—

(क) पुल्लिंग राग, (२) स्त्रीलिंग राग, (३) नपुंसक राग।

इन तीनों लिंगों के अन्तर्गत रागों के रसानुकूल प्रयोग के लिये 'संगीतमकरन्द' में कहा है:—

रौद्रेऽद्भुते तथा वीरे पुंरागैः परिगीयते।
शृङ्गारहास्यकरुणं स्त्रीरागैश्च प्रगीयते॥
भयानके च बीभत्से शान्ते गायन्नपुंसके। (सं० म० ६३, ६४)

अर्थात्—रौद्र, अद्भुत तथा वीर रसों के प्रसंग में पुरुषराग, शृङ्गार, हास्य, करुण में स्त्रीराग और भयानक, वीभत्स, शान्त में नपुंसक राग प्रयुक्त किये जाएं। (रस-दृष्टि से यह उल्लेख बहुत महत्त्वपूर्ण है)।

(४) रागाङ्ग राग। इस श्रेणी में नारद (?) ने कुछेक राग पृथक् रूप से रखे हैं। यह रागभेद तो शार्ङ्गदेव के वर्गीकरण का एक अंग है। इसे किस सन्दर्भ में नारद ने स्थान दिया है, यह बिलकुल अस्पष्ट है।

(५) छः पुरुष-राग और प्रत्येक की छः-छः स्त्रियां (दो मत से)। (द्रष्टव्य परिशिष्ट सारिणी (ग)

इन भिन्न २ वर्गीकरणों में अनेक राग-नामों की पुनरुक्ति हुई है जो स्वाभाविक है। साथ ही इन भिन्न २ वर्गीकरणों के परस्पर सामंजस्य-स्थापन का कोई यत्न या उल्लेख ग्रन्थ में नहीं मिलता। राग-वर्गीकरण की इस परस्पर असंबद्ध सामग्री को देखते हुए कुछ ऐसा लगता है कि यह एक संकलन मात्र है जिसके पीछे ग्रन्थकार की अपनी कोई एक निश्चित दृष्टि अथवा विचारधारा संभवतः नहीं है। आपाततः यह निर्णय करना कठिन है कि इस ग्रन्थ को भारतीय राग-वर्गीकरण के इतिहास में अथवा विकास-क्रम में कहाँ, कैसा, कितना स्थान दिया जाए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मतंग के प्रकरण में अभी ऊपर देख आए हैं कि 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' नाम के ग्रन्थ में 'राग' (पुरुष) और 'भाषा' (स्त्री रागिणी) के ढांचे में राग-वर्गीकरण किया गया है। इसमें छः राग और प्रत्येक राग की छः-छः 'भाषा' कही है जो परिशिष्ट में सारिणी (घ) में दिखाई गई हैं। राग और भाषा के नाम तथा रूप-ध्यान देने के पूर्व ग्रन्थकार कहते हैं :—

संगीतोपनिषत्सारोद्धार

तावन्तस्ते तु रागाः स्युर्यावन्त्यो व्रजजातयः।
षोडशसहस्रसंख्यास्ते रागा गोपीकृता मताः॥

अर्थात्—सोलह सहस्र गोपियों द्वारा बनाए हुए उतने ही राग हैं।

इस श्लोक से इस बात का संकेत मिलता है कि जिस प्रकार शिव-पार्वती के साथ राग-रागिणी परंपरा का संबन्ध जोड़ा गया है, उसी प्रकार कुछ ग्रन्थों में कृष्ण और गोपियों के साथ भी संबन्ध जोड़ने की परंपरा रही है।

शुभंकर का 'संगीत दामोदर', पुण्डरीक विट्ठल की 'रागमाला', दामोदर पण्डित का 'संगीत दर्पण' इत्यादि ग्रन्थ १५ वीं से १७ वीं शताब्दी के काल में प्राप्त होते हैं। इन सबमें राग-रागिणी-वर्गीकरण के नामोल्लेख के अतिरिक्त इस वर्गीकरण के शास्त्रीय आधार की कोई चर्चा नहीं है। अतः हम परिशिष्ट में इन ग्रन्थों में उल्लिखित राग रागिणियों की तालिका-मात्र प्रस्तुत कर रहे हैं। इस विषय पर हमारा अपना मंतव्य इस प्रकरण के उपसंहार में दिया जायगा।

मध्ययुग में राग-रागिणी-वर्गीकरण के प्रमुख ग्रन्थ

श्रीकण्ठ की 'रसकौमुदी' (१६ वीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध) में मेल-पद्धति और राग-रागिणी-पद्धति का समन्वय करने का यत्न किया गया है। ११ मेलों के अन्तर्गत २३ पुरुष राग और १५ स्त्री रागिणी कही हैं, जो परिशिष्ट में सारिणी (च) में प्रस्तुत हैं। इन राग-रागिणियों के ध्यान भी दिये हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि 'रसकौमुदी' के इस वर्गीकरण में स्थूल समन्वय दिखाई देने पर भी मेलों के माध्यम से स्वर-दृष्टि और 'राग-रागिणी' के माध्यम से भाव-दृष्टि का वास्तविक समन्वय करने का शास्त्रीय यत्न इस ग्रन्थ में दिखाई नहीं देता।

श्रीकण्ठ की रसकौमुदी

ऐतिहासिक कारणों से, राजकीय परिस्थितिवश, तथा पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव-वश उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संगीत-शास्त्र के विचारकों में, रागों के भाव-रूप के सूक्ष्म आधार पर निर्मित राग-रागिणी-पद्धति के पौराणिक रूप के प्रति रुचि घटती गई हो और रागों के स्वर-रूप के स्थूल आधार पर निर्मित मेल-पद्धति के प्रभाव से थाट-निर्माण की ओर झुकाव हुआ हो ऐसा प्रतीत होता है। किन्तु क्रमशः बीसवीं शताब्दी में थाट-पद्धति का प्रचार हो जाने पर भी सामान्य जनमानस 'राग-रागिणी' के पौराणिक संस्कार को त्याग नहीं पाया है। यह हम आरंभ में ही कह आए हैं। अस्तु।

राग-रागिणी वर्गीकरण के प्रचलन की आधुनिक युग में अवस्था

राग रागिणी-वर्गीकरण का संक्षिप्त इतिहास हमने ऊपर देखा। यहां एक तात्त्विक प्रश्न उपस्थित होता है कि रागों के भाव-रूप का उनके स्वर-रूप के साथ गहरा संबन्ध तो निर्विवाद है, किन्तु इस समय उपलब्ध ग्रन्थों में राग-रागिणी-वर्गीकरण के जो रूप प्राप्त होते हैं, उनमें रागों के भावमय पुरुषत्व और स्त्रीत्व की उनके स्वर-रूप के साथ कहां तक और कैसी संगति बैठाई जा सकती है? तद्वत् यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि अमुक राग के साथ अमुक रागिणियों का भार्याओं के रूप में संबन्ध जोड़ने का आधार क्या था? इन प्रश्नों के साथ अन्य कितनी ही समस्याएं जुड़ी हुई हैं। यथा :—

राग-रागिणी-वर्गीकरण का तात्त्विक विवेचन

(१) उल्लिखित रागरागनियों का पृथक् २ स्वररूप कैसे स्थिर किया जाए? इस संबन्ध में कठिनाइयां निम्नोक्त हैं:-

(क) राग-रागिणी-वर्गीकरण का प्रथम (?) प्रतिपादक ग्रन्थ 'संगीत मकरन्द' (नारद ?) रागों के स्वररूप के विषय में मौन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(ख) मध्ययुग के ग्रन्थकार, दामोदर पंडित आदि के स्वर प्रकरण एवं राग-प्रकरण में कोई स्पष्ट सामञ्जस्य नहीं दीखता। स्वर-प्रकरण में उन्होंने भरत के ही ग्राम-मूर्च्छना आदि का उल्लेख करके, मानो भरत ही उनके आधार हैं, ऐसा प्रकट किया है। हम जानते हैं कि भरत के स्वर दो ग्रामों में निबद्ध हैं। उन द्वैग्रामिक स्वरों की यथावत् स्थिति और वीणा पर उनके वास्तविक स्थान समझने में वे ग्रन्थकार कैसे और कितने असमर्थ रहे हैं, यह 'प्रणव भारती' प्रथम भाग में हम स्पष्ट कर आए हैं। वहां हम देख चुके हैं कि उनके कहे हुए षड्जग्राम से भरतोक्त षड्जग्राम का किसी प्रकार का सामञ्जस्य नहीं है। हम यह भी जानते हैं कि मध्यमग्राम को उन्होंने अञ्जलि प्रदान की और विदा कर दिया। द्विश्रुति को कभी त्रिश्रुति, तो कभी एकश्रुति, त्रिश्रुति को द्विश्रुति, चतुःश्रुति को पंचश्रुति मान लेने से श्रुत्यन्तरों और स्वरान्तरों का वास्तविक अर्थ तिरोहित हो गया। इसलिए वे लोग भरतोक्त स्वर-जाति-ग्राम का नामोल्लेख करने पर भी भरत परंपरा को अपने ग्रन्थों में अक्षुण्ण रूप से निरूपित करने में असफल रहे हैं। इस प्रकार तत्कालीन क्रियागत स्वरों का और उनके अपने ग्रन्थों में निरूपित स्वरों का सामञ्जस्य भी नहीं रह पाया। इसीलिए रागों को निरूपित करते समय वे सभी ग्रंथकार उन रागों के स्वरों का अपने ग्रन्थोक्त स्वरों के साथ संबन्ध नहीं दिखा पाए। संभवतः भरत की कही हुई स्वर, श्रुति ग्राम-व्यवस्था उनके लिए अस्पष्ट रहने के कारण ही मध्ययुग के ग्रन्थकारों के स्वर-श्रुति-ग्राम-प्रकरण के साथ उनके राग-निरूपण का कोई सामञ्जस्य स्थापित नहीं हो सका है।

रागों के भावरूप के दर्शन के लिए उनके स्वर रूप का स्पष्ट दर्शन आवश्यक है, किन्तु उपर्युक्त विवेचन से हमने देखा कि उनके ग्रन्थोक्त स्वर-रूप नितान्त अस्पष्ट हैं, ऐसी अवस्था में उन ग्रन्थकारों के दिए हुए रागरूपों में पुरुषत्व या स्त्रीत्व का अनुभव पाना असंभवप्राय है। रागों का राग-रागिणी में वर्गीकरण करने वाले 'संगीतदर्पण' के रचयिता पं० दामोदर ने अपने राग और रागिणियों का निरूपण करते समय किस राग में या किस रागिणी में कौन कौन से स्वर लगाते हैं, किस राग में किस श्रुत्यन्तर वाले स्वरों का उपयोग होगा, यह कहने की बजाय अमुक राग का अमुक मूर्च्छना है, अधिकांश स्थलों में ऐसा ही कहा है। जहां स्वर-नामों के माध्यम से राग-निरूपण किया है वहां भी स्वर-प्रकरण की अस्पष्टताओं और असमञ्जसताओं के कारण कोई प्रामाणिक निरूपण प्राप्त नहीं होता। यह सत्य है कि मूर्च्छना के स्वरों से राग का स्वरूप स्पष्ट होना चाहिए, किन्तु हम जानते हैं कि जैसे राग मूर्च्छनाश्रित है, वैसे मूर्च्छना ग्राम के आश्रित है। जब तक ग्राम यथायथ रूप से नहीं समझा जाता, तबतक उसके आश्रित मूर्च्छनाएं कैसे स्पष्ट हो सकती हैं ? 'संगीतदर्पण' तथा उनके समकालीन अन्य ग्रन्थों में यही असमंजसता विद्यमान है जो कि स्वर, ग्राम, मूर्च्छना के सम्बन्ध में इसके पूर्व हमें सभी मध्ययुग के अन्य ग्रन्थकारों के लिए कह आए हैं।

(२) दूसरी समस्या यह है कि रागों में पृथक् पृथक् रूप से पुरुषत्व वा स्त्रीत्व का भावदर्शन ही जब असाध्य है तब यह समझने का यत्न कैसे किया जाय कि अमुक राग के साथ अमुक रागिणियों को भार्याओं के रूप में संवद्ध करने के पीछे क्या शास्त्रीय दृष्टि रही होगी ? भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों के राग-रागिणी-वर्गीकरण की जो तालिकाएं हम परिशिष्ट में दे रहे हैं, उनमें यह दिखाई देगा कि भैरव के साथ भैरवी, हिंडोल के साथ तोड़ी ऐसे बेमेल स्वर-रूपों वाले रागों और रागिणियों का परस्पर सम्बन्ध जोड़ा गया है। राग-रागिणी परंपरा के सभी ग्रन्थकारों का काल उतना प्राचीन नहीं है कि उन नामों वाले रागों के रूपों में आमूल परिवर्तन हो गया हो। इसलिए आज के प्रचलित राग रूपों के अनुसार उन ग्रन्थोक्त राग रागिणियों का सम्बन्ध जोड़ना, जांचना अनुचित नहीं कहा जा सकता। यहां यह उल्लेखनीय है कि आज से हमारी अपनी गुरु परंपरा के काल का विचार किया जाय तो यह मानना होगा कि सात-आठ पीढ़ी पूर्वतक की राग-परंपरा की हमें अपरोक्ष जानकारी प्राप्त है। इससे हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व की राग परंपरा हमें अक्षत रूप से प्राप्त है। आज से दो सौ वर्ष के काल में तथा इन मध्ययुगीय ग्रन्थकारों के काल में कुछ इतना अधिक व्यवधान नहीं है कि जिससे राग-रूपों के आमूल परिवर्तन की कल्पना की जा सके। आजके भैरव से भैरवी का क्या सामञ्जस्य हो सकता है ? नाममात्र में पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग-वाची शब्द के साम्य के अलावा इनमें और कोई साम्य दिखाई नहीं देता। भैरवी को भैरव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को स्त्री कहने से उन दोनों का क्या परस्पर सम्बन्ध जुड़ सकता है? इसी प्रकार अन्य कई राग-रागिणियों के बीच भी असामंजस्य साफ़-साफ़ दिखाई देता है। इस वैषम्य को हम किस प्रकार साम्य में परिवर्तित करें और सामञ्जस्य की स्थापना करें, यह भी एक बड़ी उलझन है। हम देख आए हैं कि राग रागिणियों के स्वर रूप नितान्त अस्पष्ट हैं। ऐसी अवस्था में आज के प्रचलित राग-नामों के साथ जहां-जहां ऐक्य या साम्य दिखाई दे वहां आज के प्रचलित रागरूपों के अनुसार रागों और रागिनियों स्वर-रूपों का परस्पर सम्बन्ध जांचने की ओर दृष्टि जाना स्वाभाविक है। किन्तु, भैरव-भैरवी जैसे स्थलों में नाम-मात्र में पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंगवाची शब्द-साम्य के अलावा और कोई साम्य दिखाई नहीं देता।

हम जानते हैं कि व्यवहार में स्त्री और पुरुष में शरीरगत तथा स्वभावगत वैषम्य रहता है। कोई कह सकते हैं कि स्त्री पुरुष के देह-वैषम्य और प्रकृति-वैषम्म को ध्यान में रखते हुए राग-रागिनियों का भावदर्शन करने वालों ने स्वर या भाव के साम्य के आधार पर नहीं, अपितु उनके वैषम्य के आधार पर राग-रागिनियों का सम्बन्ध जोड़ा होगा। यदि ऐसा मान लिया जाए तब भी वैषम्य का आधार ग्रन्थकारों के अपने शब्दों में उपलब्ध होना ही चाहिए, किन्तु राग-रागिणी-वर्गीकरण के ग्रन्थों में साम्य या वैषम्य किसी आधार का स्पष्टीकरण उपलब्ध नहीं होता। इसलिए यह कहना कठिन है कि इन राग-रागिणियों के वर्गीकरण के पीछे पुरुषत्त्व और स्त्रीत्व के भावदर्शन का कौन सा ठोस आधार स्वीकार किया गया होगा।

यहां यह कहना ही पड़ता है कि इस परंपरा के सभी उपलब्ध ग्रन्थकारों ने शास्त्रीय विवेचन तो दूर इस कल्पना के आधार का रञ्चमात्र भी संकेत तक नहीं दिया है; केवल तालिका मात्र प्रस्तुत की हैं।

उपसंहार

राग और रागिणी के भाव रूप पर हमने साधक और बाधक उभय दृष्टि से विचार किया। क्या शब्द में, क्या स्वर में, क्या भाषा में, क्या संगीत में स्वर द्वारा हो भाव सृष्टि का निर्माण किया जाता है। शब्दों से अर्थ की निष्पत्ति और अर्थ से भाव को उत्पत्ति के ठोस पहलू हमसे अज्ञात नहीं, शब्द और शब्द के अर्थ और उनके भाव-निरूपण के पीछे सूक्ष्म रूप से स्वर ही का बलवत्तर आधार रहता है। जिस संगीत में स्वर ही मुख्य उपादान है, उसका भाव-पक्ष कितना प्रबल है, उसके सम्बन्ध में इस प्रकरण के पूर्वार्ध में हम विशद विवेचन कर आए हैं। स्वानुभूति से हम दृढ़तापूर्वक मानते हैं कि स्वर में रसभाव की अपार सृष्टि सन्निहित है। सुखदुःखादि संवेदनाओं से लेकर साहित्य ग्रन्थों में वर्णित रसों का दर्शन भी स्वर के माध्यम से किया जा सकता है। और इसीलिए इस प्रकरण के पूर्वार्ध में हमने स्वर और राग के भावरूप दर्शन में, उनके पुरुषत्व और स्त्रीभाव के दर्शन में, अपनी आस्था प्रकट की।

किन्तु जिन-जिन ग्रन्थकारों ने स्वर-राग के भाव-रूप का दर्शन कराने का, उनके पुरुष-भाव, स्त्री-भाव को अभिव्यक्त करने का जो यत्न किया है, वह कैसा है, सफल है, निष्फल है, पूर्ण है, अपूर्ण है, समंजस है, असमंजस है—वह जैसा भी है, वैसा हम इस प्रकरण के अन्तिम चरणों में कह आए हैं।

स्वरों में, रागों में निःसंदेह स्त्री पुरुष का दर्शन होता है। उनके भाव-रूप का अनुभव किया जा सकता है और उनको रस-मूर्ति का दर्शन कर सकते हैं, किन्तु तन्निमित्त यानी उसके अनुभव के लिए जिन उपादानों की आवश्यकता है, उनकी पूर्ण उपलब्धि पर वह दर्शन अवलम्बित है। वही उपादान इन मध्यकालीन ग्रन्थों में उपलब्ध न होने से राग-रागिणियों का भाव-दर्शन समंजस रूप से स्पष्ट नहीं होता है। किन्तु भले ही इन ग्रन्थों में हमें यह अपेक्षित दर्शन उपलब्ध नहीं होता, फिर भी राग रागणियों के भाव-रूप की स्वीकृति कोरी कल्पना हो नहीं, अपितु सत्य पर आधृत पूर्ण दर्शन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेल-पद्धति

मध्ययुग में राग-वर्गीकरण की दूसरी धारा मेल-पद्धति थी जिसका मुख्य कार्यक्षेत्र दक्षिण भारत रहा है। इस मेल-पद्धति के आद्य प्रवर्तक विद्यारण्य माने जाते हैं जिनका काल १४ वीं शताब्दी ई० है। उनका ग्रंथ 'संगीतसार' तो आज अनुपलब्ध है, किन्तु तांजोर के रघुनाथ भूप के ग्रन्थ 'संगीत-सुधा' में विद्यारण्य के मतानुसार जिन १५ मेलों का उल्लेख मिलता है, वे इस प्रकार हैं :—

नट्ट,* गुर्जरी, वराटी, श्रीराग, भैरवी, शंकराभरण, अहोरी, बसन्तभैरवी, सामन्त, काम्बोदी, मुखारी, शुद्धरामक्रिया, केदारगौळ, हेजुज्जी, देशाक्षी।

यद्यपि विद्यारण्य कर्णाटकीय संगीत के आद्य प्रवर्तक माने जाते हैं, तथापि उनका ग्रन्थ अप्रकाशित होने के कारण रामामात्य के 'स्वरमेलकलानिधि' को ही आज उक्त संगीत-पद्धति का आधार-ग्रन्थ माना जाता है। रामामात्य के मेल और उनकी स्वरावलियां हम परिशिष्ट में तालिका (ञ) में दे रहे हैं। यह स्मरणीय है कि रामामात्य के आद्य मेल मुखारी को ही आज तक कर्णाटक पद्धति में भरत के षड्जग्राम का निदर्शक माना जाता रहा है। 'प्रणव-भारती' (प्रथम भाग) तथा संगीताञ्जलि पंचम भाग में हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि रामामात्य के मुखारी मेल की स्वरावली वास्तव में सा – रि॒ – रि – म – प – धृ – ध – सां है और उसमें द्विश्रुति अन्तराल की त्रिश्रुति तथा चतुश्रुति अन्तराल को पंचश्रुति मानने की भ्रान्ति निहित है, जिसके कारण उसे भरत के षड्जग्राम के साथ एकरूप मान लिया गया है। किन्तु वस्तुतः भरत के षड्जग्राम को उसमें किसी प्रकार भी प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। फिर भी आज यह भ्रान्त धारणा प्रचलित है कि कर्णाटक संगीत में भरत-परम्परा अक्षुण्ण है और भारत के अन्य प्रदेशों में वह परम्परा छिन्न-भिन्न हो चुकी है। इस भ्रान्ति के खण्डन में हमने जो ठोस प्रमाण दिये हैं वे 'प्रणव-भारती' तथा संगीताञ्जलि (पंचम भाग) में द्रष्टव्य हैं। यहां उनके पुनरुल्लेख का अवकाश नहीं है।

रामामात्य के बाद सोमनाथ ने २३ तथा व्यंकटमखी ने ७२ मेल कहे हैं जो क्रमशः तालिका (ट) (ड) में परिशिष्ट में संगृहीत हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि मेलों की संख्या में वृद्धि होने पर भी शुद्ध स्वरावली के विषय में सभी कर्णाटकीय ग्रन्थकारों ने रामामात्य का अविकल अनुसरण किया है। साथ ही वैकल्पिक स्वर-नामों के प्रयोग से सभी ने घोर अव्यवस्था की सृष्टि की है। वैकल्पिक स्वर नामों की पृष्ठभूमि में मेल रचना के ये दो नियम हैं :—

(१) प्रत्येक मेल संपूर्ण होना चाहिए अर्थात् उसमें सातों स्वरों का प्रयोग होना चाहिए। और

(२) किसी भी मेल में किसी स्वर के दो रूपों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

इन दोनों नियमों का मेल पद्धति में किंचित् भी परिपालन नहीं हुआ है, अपितु एक स्वर के दो रूपों का मुक्त रूप से ग्रहण करके पूर्णत्व का भंग किया गया है और वैकल्पिक संज्ञाओं के प्रयोग से इन नियमों की शाब्दिक रक्षा का विफल प्रयास किया गया है। निम्न तालिका से यह बात स्पष्ट होगी :—

---

* रामामात्य का आद्य मेल मुखारी है और उसी को व्यंकटमखी ने कनकांगी नाम दिया है। किन्तु विद्यारण्य ने मुखारी के स्थान पर 'नट्ट' को आद्य मेल स्वीकार किया है, यह ध्यान देने की बात है। नट्ट मेल के स्वर रघुनाथ भूप ने इस प्रकार कहे हैं :—

षड्जस्तथा मध्यमपञ्चमौ च शुद्धाः स्वराः षट्श्रुतिभिः समेतः।
सधैवतः स्याहषभोऽन्तरश्च गान्धारकः काकलिको निषादः ॥

अर्थात् सा – ग॒ – ग – म – प – नि॒ – नि – सां यह नट्ट मेल की स्वरावली है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेलों में आए हुए एक स्वर के दो-दो रूप (वास्तविक श्रुत्यन्तर सह)	हिन्दुस्तानी स्वर नाम	ग्रन्थोक्त मेल-व्यवस्था में स्वर नाम (कल्पित श्रुत्यन्तर सह)
द्विश्रुति-चतुःश्रुति ऋषभ	कोमल, शुद्ध ऋषभ	शुद्ध ऋषभ, शुद्ध गान्धार
चतुःश्रुति ऋषभ-षट्श्रुति गान्धार (कर्णाटकीय संज्ञा में शुद्ध गान्धार, साधारण गान्धार)	शुद्ध ऋषभ, कोमल गान्धार	पञ्चश्रुति ऋषभ, साधारण गान्धार
षट्श्रुति (साधारण) गान्धार, सप्तश्रुति (अन्तर) गान्धार	कोमल, शुद्ध गान्धार	षट्श्रुति ऋषभ, अन्तर गान्धार
द्विश्रुति धैवत, चतुःश्रुति धैवत	कोमल, शुद्ध धैवत	शुद्ध धैवत, शुद्ध निषाद
चतुःश्रुति धैवत—षट्श्रुति निषाद (कर्णाटकीय स्वरसंज्ञा के अनुसार शुद्धनिषाद, कैशिक निषाद)	शुद्ध धैवत, कोमल निषाद	पञ्चश्रुति धैवत, षट्श्रुति निषाद
षट्श्रुति (कैशिक) निषाद, सप्तश्रुति (काकली) निषाद	कोमल, शुद्ध निषाद	षट्श्रुति धैवत, काकली निषाद

नोट :—दो मध्यम वाला कोई मेल नहीं है।

वैकल्पिक संज्ञाओं की इस अव्यवस्था के अतिरिक्त मेल-पद्धति की एक बहुत बड़ी त्रुटि है—अनेक विवादी मेलों की सृष्टि। जिनमें रञ्जकता न हो, जो विवादी दोष से भरे हों ऐसे मेलों की संगीत में क्या उपयोगिता हो सकती है? 'राग' तो रञ्जकता के लिए ही होता है। जिससे जनरञ्जन, मनरञ्जन, आत्मरञ्जन न हो वह 'राग' ही नहीं कहला सकता। विवादित्व दोष वाले मेलों से जन्य 'राग' अपने नाम को ही सार्थक नहीं कर सकते। इसीलिए अधिकांश मेलों की स्वरावलियां गायन वादन के लिये अनुपयोगी मानी गई हैं क्योंकि वे न कर्णप्रिय हैं, न आत्मप्रिय हैं। किन्तु ऐसे अनुपयोगी मेलों को शास्त्र में स्थान देने से क्या लाभ? 'अशास्त्रीय' को बलात् शास्त्रीय बनाने की प्रवृत्ति से क्या लाभ? रक्ति-हानि के इस दोष के सम्बन्ध में श्री के. वासुदेव शास्त्री के निम्नोद्धृत वचन प्रासंगिक हैं :—

"The pell-mell of views resulted in the theoretical computation of all possible Melas using the swaras in common usage. 16 swaras were settled as of common use. But they had only twelve Swarasthānas. With these the 72 melas were coined purely on a mechanical basis.* I may repeat here again that the classification, had nothing to do with melody or 'Rakti' which is the soul of Rāga-Bhāva or Rasa. The classification was intended to exhaust all the possibilities of the arbitrary aspect of music but not its scientific aspect......... Thus far I have tried to show that the Mela or Thāta has neither the sanction of Śāstras or the science of melody, nor is it a safe guide for singing our rāgas. Knowing all this, we are still clinging to the mechanical and uncertain guide, calling it our 'Sangita Śāstra'...................... Rakti is the foreman and Mela is the time-keeper in the workshop of music."

('Is Mela or Thāta' a Shastraic concept? Nādarūpa Vol. I pp. 26-32).

मेल-पद्धति की स्वर-सम्बन्धी अव्यवस्था, रक्ति-हानि-दोष तथा यान्त्रिकता के इस अत्यल्प दिग्दर्शन के पश्चात् अब हम इसकी सहोदरा थाट पद्धति का स्वल्प निरूपण करेंगे।

* व्यंकटमखी के ७२ मेल परिशिष्ट में तालिका (ड) में द्रष्टव्य हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थाट पद्धति

दक्षिण की मेल पद्धति के ढाँचे पर वर्त्तमान काल में १० थाटों के अंतर्गत भारतीय संगीत के रागों का वर्गीकरण करने का जो यत्न किया गया है उसका संक्षेप में विवेचन करना अब यहाँ क्रमप्राप्त है। पं० विष्णुनारायण भातखण्डे उपनाम चतुरपंडित इस थाट पद्धति के प्रवर्त्तक माने जाते हैं, यद्यपि कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि १० थाट की पद्धति के मूल आविष्कारक कोई अन्य व्यक्ति हैं। इस पद्धति के आविष्कारक जो भी कोई रहे हों, इसका विपुल प्रचार पं० भातखण्डे के ग्रन्थों द्वारा ही हुआ है इसलिये उनके नाम के साथ इसका अभिन्न सम्बन्ध है। उनके द्वारा निरूपित १० थाट निम्नोक्त हैं :—

बिलावल, काफ़ी, भैरवी, कल्याण, खमाज, आसावरी, भैरव, पूर्वी, मारवा, तोड़ी।

इन थाटों की रचना के बारे में ऐसा कहा जाता है कि बिलावल के स, रे, ग, म, प, ध की छः मूर्च्छनाओं* से क्रमशः बिलावल, काफ़ी, भैरवी, कल्याण, खमाज, आसावरी इन छः थाटों की और भैरव, पूर्वी, मारवा और तोड़ी इन चार थाटों में क्रमशः कोमल रि ध के साथ शुद्ध मध्यम का योग, कोमल रि ध के साथ तीव्र मध्यम का योग, कोमल ऋषभ तथा तीव्र मध्यम के साथ शुद्ध धैवत का योग और कोमल ऋषभ, गान्धार, धैवत के साथ तीव्र मध्यम तथा शुद्ध निषाद का योग कर के इन दस थाटों की रचना की गई है।†

हम देख चुके हैं कि कर्णाटकीय मेल पद्धति में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग निषिद्ध माना गया है। फिर भी हम जानते हैं कि उनके यहाँ एक स्वर के दो-दो रूपों का प्रयोग मेलों में मुक्त रूप से हुआ है। ऐसे मेलों में वैकल्पिक स्वर-संज्ञाओं के प्रयोग द्वारा तत्सम्बन्धी नियम-भंग से बचने का असफल यत्न किया गया है। अपने ही बनाए हुए नियम का भंग होने पर भी वैकल्पिक नाम दे कर स्वरों के दो-दो रूप प्रयुक्त किये गये हैं। थाट-पद्धति में थाट की मूल स्वरावली में भले ही एक स्वर के दो रूपों का ग्रहण नहीं किया गया है, किन्तु फिर भी इस पद्धति में एक अन्य असमंजसता उत्पन्न हुई है जो निम्नोक्त है।

जनक थाटों में पं० भातखण्डे ने केवल सप्त स्वरों का ही प्रयोग मान्य रखा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उनके जन्य रागों में अनिवार्य रूप से प्रयुक्त होनेवाले कई स्वर ऐसे पाए जाते हैं जिन्हें जनक थाटों में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। इतना ही नहीं, कई रागों के तो अंश या वादी स्वर ऐसे हैं जो उनके जनक थाट में कहीं नहीं हैं। इस प्रश्न का कोई तर्कसंगत उत्तर प्राप्त नहीं होता कि जो स्वर मूलरूप थाट में ही नहीं है, वह जन्य रागों में कहाँ से, किस नियम से आ सकता है? अथवा जन्य रागों में वादी या प्राण-स्वर के रूपमें उसका कैसे प्रयोग हो सकता है? कुछ उदाहरणों से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

(क) कल्याण थाट के जन्य रागों में केदार, कामोद, हमीर, बिहाग, गौडसारंग इत्यादि का समावेश माना है। इन सभी में शुद्ध मध्यम का बहुल प्रयोग पाया जाता है। और तीव्रमध्यम अल्प मात्रा में प्रयुक्त होता है। इतना

---

* बिलावल के निषाद की मूर्च्छना से सरि्ग्ममध्नि्—यह स्वरावली प्राप्त होती है। उसी में से शुद्ध मध्यम निकाल कर पञ्चम को स्थान देने से तथा कोमल निषाद के स्थान पर शुद्ध निषाद रखने से तोड़ी थाट की निष्पत्ति हो जाती है।

† दस थाटों की स्वरावली इस प्रकार है :—

१—बिलावल—सारिगमपधनि २—काफ़ी—सारिग्मपधनि् ३—भैरवी—सारि्ग्मपध्नि् ४—कल्याण—सारिगम्पधनि ५—खमाज—सारिगमपधनि् ६—आसावरी—सारिग्मपध्नि् ७—भैरव—सारि्गमपध्नि ८—पूर्वी—सारि्गम्पध्नि ९—मारवा—सारि्गम्पधनि १०—तोड़ी—सारि्ग्म्पध्नि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही नहीं, केदार जैसे राग में शुद्ध मध्यम प्राण स्वर के रूपमें प्रतिष्ठित है और कोमल निषाद भी राग-रूप के निर्माण में काफ़ी सहायक होता है। इससे प्रश्न होता है कि कल्याण थाट में जिन स्वरों का समूचा अभाव है ऐसे शुद्ध मध्यम और कोमल निषाद जिसमें. प्रयुक्त होते हैं ऐसा केदार राग कल्याण के जन्य रागों में कैसे रखा गया है? इन जन्य रागों में थाट के स्वरों के अतिरिक्त जो जो स्वर प्रयुक्त होते हैं वे सब क्या केवल आगंतुक, विवादी या मनाक् स्पर्श के रूप में अथवा राग में चमत्कृति दिखाने के लिए ही प्रयुक्त होते हैं? क्या यह सत्य नहीं है कि वे कई स्थलों पर राग के अंश, प्राण या वादी का स्थान पाते हैं?

(ख) कल्याण थाट की ही भाँति मारवा थाट तथा तज्जन्य रागों में भी ऐसी ही अव्यवस्था दिखाई देती है। मारवा थाट से उत्पन्न ललित राग का प्राण शुद्ध मध्यम ही है। सभी क्रियाकुशल गुणी इस बात को जानते हैं। उसी एक स्वर पर ललित का दारोमदार है, उसका अस्तित्व ही 'मम्म' इस शुद्ध मध्यम युक्त क्रिया पर अवलंबित है। किन्तु इस ललित के जनक के रूप में जिस मारवा थाट का चुनाव किया गया है उस थाट के मूल में ही शुद्ध मध्यम का अभाव है।

(ग) तद्वत् खमाज में शुद्ध निषाद् को स्थान नहीं है, केवल कोमल निषाद ही रखा गया है। किन्तु उस थाट के अनेक जन्य रागों में दोनों निषादों का प्रयोग अनिवार्य है। यथा खमाज, देश, तिलककामोद, झिंझोटी, तिलंग इत्यादि।

(घ) काफ़ी थाट में भी केवल कोमल 'ग नि' को ग्रहण किया गया है जब कि उसके अनेक जन्य रागों में कोमल 'ग नि' के अतिरिक्त शुद्ध 'गनि' का भी विपुल प्रयोग मिलता है।

(ङ) बिलावल थाट के जन्य राग अल्हैया बिलावल का आज विपुल प्रचार है और उसमें दो निषाद का प्रयोग अनिवार्य है। बिलावल के प्रायः अन्य सभी प्रकारों में भी शुद्ध निषाद् के साथ-साथ कोमल निषाद् का न्यूनाधिक प्रयोग मिलता है। किन्तु बिलावल थाट में कोमल निषाद को कोई स्थान नहीं है।

स्वयं पं० भातखण्डेजी के कहे हुए नियमानुसार थाट के सप्त स्वरों में से सभी का ग्रहण करके संपूर्ण, किसी एक का त्याग करके षाडव और किसी दो का त्याग करके औडव आदि जातियों के रागरूप बनाए जा सकते हैं, किन्तु थाट के अतिरिक्त कोई नया स्वर जन्य रागों में समाविष्ट करने का कोई नियम नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि जहां-जहां जिन-जिन रागों में थाट में समाविष्ट स्वरों के अतिरिक्त जिन-जिन अन्य स्वरों का प्रयोग विहित है, उनके लिए उनके थाट के नियमान्तर्गत कोई विधि नहीं है। यदि यह कहा जाए कि थाट में जो स्वर नहीं है, वह यदि जन्य रागों में है तो उसे आगन्तुक स्वर के रूप में समाविष्ट कर लिया जाए, तब ऐसी अवस्था में थाट की नियम-व्यवस्था कैसे रहेगी? अर्थात् यदि किसी भी थाट में कोई भी स्वर ऊपर से समाविष्ट करने की छूट हो तो फिर पृथक्-पृथक् थाटों के अस्तित्व का नियमन कैसे होगा? उदाहरण के लिए—बिलावल में तीव्र मध्यम का समावेश करने से कल्याण थाट अथवा कल्याण में शुद्ध मध्यम का ग्रहण करने से बिलावल थाट, तद्वत् पूर्वी में शुद्ध मध्यम का ग्रहण करने से भैरव थाट और भैरव में तीव्र मध्यम का समावेश करने से पूर्वी थाट, उसी प्रकार खमाज में शुद्ध निषाद जोड़ देने से बिलावल और बिलावल में कोमल निषाद जोड़ देने से खमाज थाट का निर्माण होने लगेगा। ऐसी अवस्था में थाटों के पृथक्-पृथक् स्वरूप का नियामक कौन सा तत्त्व रहेगा?

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि पं० भातखण्डे के कहे हुए दसों थाटों में अनियमितता, अपूर्णता और असमंजसता के दोष विद्यमान हैं। उनके जन्य जनक भाव में भी उन्हीं दोषों का दर्शन होता है।

हम जानते हैं कि थाट को जनक का स्थान दिया गया है और रागों को उन जनक थाटों से जन्य माना गया है। यहां प्रश्न यही होता है कि जो गुण बीज में नहीं है, वह फल में कहां से आया, जो स्वर जनक थाट ही में नहीं हैं ऐसे स्वरों का प्रयोग उसके जन्य रागों में कैसे समीचीन हो सकता है? यह तो अपने ही हाथों 'मूले कुठाराघातः' जैसा अन्याय नहीं हो रहा है?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जैसे सितार में 'चलथाट' 'अचलथाट', ये नाम पर्दे बांधने की व्यवस्था-विशेष के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं वैसे ही राग वादन के सौकर्य के लिए राग की स्वरावलि के अनुसार पर्दों को खिसकाने की जो क्रिया की जाती है, उसे भी थाट मिलाना कहते हैं। इसीलिए सितार-वादक राग की फ़र्माइश पूछने के पहले यह पूछते हैं "कौन सा थाट मिलाएं ?" इस प्रकार वादन सौकर्य के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुआ 'थाट' शब्द राग वर्गीकरण में स्थान पा गया है। वादन विधि के प्रसंग में इस शब्द का केवल एक स्थूल स्वरावली से तात्पर्य था, किन्तु राग वर्गीकरण में इसके साथ जनक जन्य-भाव का अर्थ भी संबद्ध हो गया, यद्यपि इसका स्वरूप स्थूल स्वरावलि-विशेष ही बना रहा।

इस प्रकार हमने रागों के स्थूल स्वर रूप से सम्बद्ध मेल और थाट पद्धति को आलोचनात्मक दृष्टि से देखा। मेल पद्धति में केवल गणित पर आधृत यान्त्रिक रचना, स्वरों की वैकल्पिक संज्ञाओं को अव्यवस्था और रक्ति के प्रति दुर्लक्ष्य हमने देखा। साथ ही मेलकुलोत्पन्न थाट पद्धति की अपूर्णता, असमंजसता, अनियमितता भी हमने देखी।

उपसंहार

रागवर्गीकरण के प्रस्तुत प्रकरण में हमने मतंग-शार्ङ्गदेव के ग्रामराग-देशीराग-वर्गीकरण से ले कर वर्तमान युग की थाट पद्धति तक का विवेचनात्मक दर्शन किया। इस विवेचना से ग्राम-राग-वर्गीकरण की आज के लक्ष्य के प्रसंग में जटिलता, राग-रागिणी-वर्गीकरण की पौराणिकता, मेल-पद्धति की यान्त्रिकता एवं असमंजसता तथा थाट-पद्धति की अपूर्णता का हमने अनुभव किया।

राग-वर्गीकरण की इन पद्धतियों के सम्यक् अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आज के लक्ष्यगत रागों के वर्गीकरण के लिए एक पूर्ण, समंजस, सुसंगत और शास्त्रीय नूतन वर्गीकरण-पद्धति की अनिवार्य आवश्यकता है। जैसे स्वरशास्त्र की गुत्थियां सुलझाने के लिए हमें भरत की शरण लेनी पड़ी है, इसी प्रकार इस अपेक्षित नूतन राग-वर्गीकरण पद्धति के लिए भी भरत की ही शरण लेना आवश्यक है। तदनुसार भरत की ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति पर आधृत नूतन वर्गीकरण हम 'प्रणव-भारती' के द्वितीय भाग में प्रस्तुत करेंगे। तद्वत् राग-रागिणी-वर्गीकरण के आधारभूत वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार आधुनिक लक्ष्यगत रागों का एक नूतन राग-रागिणी-वर्गीकरण भी हम प्रस्तुत करेंगे जिससे जनमानस में घुली हुई इस पद्धति की ठोस रूप से स्थापना हो सकेगी और उसे कोरी कपोल-कल्पना समझ कर उसका उपहास करने की प्रवृत्ति का अन्त हो सकेगा। इस प्रकार रागों के स्वर-रूप और भाव-रूप के समन्वय से राग-रागिणी-वर्गीकरण और मुख्यतः स्वर-रूप के आधार पर ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति से वर्गीकरण—इन दो नवीन वर्गीकरण-प्रणालियों में ग्राम-राग-वर्गीकरण से लेकर थाट-पद्धति तक की सभी प्रणालियों के ग्राह्य तत्वों का समावेश और उनमें निहित कठिनायों अथवा असमंजसताओं का परिहार हो सकेगा। रागों के आभ्यन्तर भाव-पक्ष और बाह्य स्वर-पक्ष दोनों के सर्वांगीण विचार से जो नूतन वर्गीकरण प्रस्तुत होगा वह महर्षि भरत की कृपा से निश्चय ही हमारी अद्वितीय राग-पद्धति को नवीन गौरवमय आलोक में उद्भासित करेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग-वर्गीकरण का परिशिष्ट

भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों के राग-वर्गीकरण की तालिकाएं

तालिका (क) मतंग

ग्रामराग (पांच गीतियों के अन्तर्गत)

१. शुद्धा अथवा-चोक्षा गीति—षड्जग्रामान्तर्गत राग—शुद्धसाधारित, शुद्धकैशिकमध्यम।

मध्यमग्रामान्तर्गत राग—षाडव, शुद्धकैशिक।

टिप्पणी—इन चार शुद्ध रागों के अतिरिक्त मतंग ने 'पञ्चम' को भी इसी श्रेणी में गिनाई की है, किन्तु उसका लक्षण नहीं दिया है। अतः यह कहना कठिन है कि वे 'पञ्चम' को किस ग्राम का राग मानते थे। शार्ङ्गदेव ने इसे मध्यमग्राम में रखा है।

२. भिन्ना गीति—षड्ज० भिन्नषड्ज, भिन्नकैशिकमध्यम।

मध्यम०—भिन्नकैशिक, भिन्नतान।

३. गौड़ी गीति—षड्ज०—गौड़पञ्चम, गौड़कैशिकमध्यम।

मध्यम०—गौड़कैशिक।

४. राग गीति—षड्ज०—टक्कराग, सौवीरक, बोट्टराग, टक्ककैशिक, वेसरषाडव। मध्यम०—हिन्दोल, मालवपञ्चम, मालवकैशिक।

५. साधारणी गीति—षड्ज० शक, ककुभ, रूपसाधारित, रेवगुप्त। मध्यम०—हर्मणिपञ्चम, गान्धारपञ्चम, नर्त। कुल ग्रामराग २७ जिनमें से १५ मध्यमग्राम के, १२ षड्जग्राम के।

भाषा-विभाषा आदि

भाषा चतुर्विध—१. मूलभाषा, २. संकीर्ण भाषा, ३. देशज भाषा, ४. छायामात्राश्रया भाषा। ये चार प्रकार की भाषा गिनाने के बाद मतंग ने कहा है :—

पूर्वं ग्रामद्वयं प्रोक्तं ग्रामरागास्तदुद्भवाः।
ग्रामरागोद्भवा भाषा भाषाभ्यश्च विभाषिकाः।।
विभाषाभ्यश्च संजातास्तथा चान्तरभाषिकाः।।

अर्थात् पूर्वोक्त ग्रामद्वय से भाषा उत्पन्न होती है, भाषा से विभाषा और विभाषा से अन्तरभाषा उत्पन्न होती हैं। इसके पश्चात् ही मतंग ने ग्रामरागों के अन्तर्गत निम्नलिखित भाषा गिनाई हैं :—

टक्कराग की भाषाएं—१. श्रवणा २. श्रवणोद्भवा ३. वेरञ्जिका ४. छेवाटी ५. मालववेसरिका ६. गुर्जरी ७. सौराष्ट्री ८. सैन्धवी ९. वेसरी १०. पञ्चमा ११. रविचन्द्रा १२. अम्बाहोरी १३. ललिता १४. कोलाहली १५. गान्धारपञ्चमी १६. मध्यमग्रामदेशा।

मालवकैशिक की भाषाएं—१. शुद्धा २. आद्यवेसरिका ३. हर्षपुरी ४. माङ्गाली ५. सैन्धवी ६. आभीरी ७. खञ्जरी ८. गुञ्जरी।

ककुभ की भाषाएं—१. काम्बोजा २. मध्यमग्रामिका ३. सालवाहनिका ४. भागवर्धनी ५. मुहरी ६. शकमिश्रिता ७. भिन्नपञ्चमी।

हिन्दोलक की भाषाएं—१. वेसरा २. मञ्जरी ३. छेवाटी ४. षड्जमध्यमा ५. मधुरी।

पञ्चम की भाषाएं—१. आभीरी २. भाविनी ३. माङ्गाली ४. सैन्धवी ५. गूर्जरी ६. दाक्षिणात्या ७. आन्ध्री ८. अन्नोद्भवा ९. श्रावणी १०. कैशिकी।

भिन्नषड्ज की भाषाएं—१. विशुद्धा २. दक्षिणा ३. गान्धारी ४. श्रीकण्ठी ५. पौराली ६. माङ्गाली ७. सैन्धवी ८. कालिन्दी ९. पुलिन्दी।

सौवीरक की भाषाएं—१. सौवीरी २. वेगमध्यमा ३. साधारिता ४. गान्धारी ५. सैन्धविकी।

भिन्नपञ्चम की भाषाएं—१. शुद्धा २. भिन्ना ३. वाराही ४. धैवतभूषिता ५. वराटी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मालवपञ्चम की भाषा—१. भाविनी २. लोकभाविनी।

वोट्टराग की भाषा—१. मंगली।

टक्ककैशिक की भाषा—१. वेगमध्यमा २. मालवा ३. भिन्नवालीका (? यहां पर पाठ खण्डित है।)

वेसरषाडव की भाषा—१. द्राविडी २. वाह्यषाडनदा।

भिन्नतान की भाषा—१. तानोद्भवा

गान्धार पञ्चम की भाषा—१. गान्धारी (? पाठ खण्डित है)

रेवगुप्त की भाषा—१. लोकरञ्जिका।

पञ्चमषाडव की भाषा—१. शकाख्या।

इस प्रकार मतंग ने प्रायः ७७ भाषाओं का नामोल्लेख किया है और प्रायः सभी के लक्षण भी अल्प स्वर-विस्तार सहित दिये हैं। इन्हीं भाषाओं को उन्होंने 'विभाषा द्वारा भूषित' बताया है। पृथक् रूप से विभाषा का स्पष्ट निरूपण वर्तमान खण्डित उपलब्ध पाठ में नहीं है। यथा:—

लक्ष्यलक्षणसंयुक्ताः प्रस्तारेण समन्विताः।
उक्ता भाषा समीचीना विभाषाभिर्विभूषिताः॥

इस भाषा-निरूपण के बाद मतंग पृथक् रूप से देशी रागों के वर्णन की प्रतिज्ञा करते हैं, किन्तु वह अंश आज अत्यन्त खण्डित रूप में उपलब्ध है, केवल कुछेक नाम इस प्रकरण में मिलते हैं। यथा—कच्छेल्ली, माङ्गाली, हम्माणिका, पुलिन्दिका, कर्णाटी।

तालिका (ख) शार्ङ्गदेव

ग्रामराग (पांच गीतियों के अन्तर्गत)

१ शुद्धा गीति—षड्ज०—शुद्धकैशिकमध्यम, शुद्धसाधारित, षड्जग्राम। मध्यम०—पञ्चम, मध्यमग्राम, षाडव, शुद्धकैशिक।

२. भिन्ना गीति—षड्ज०—(भिन्न) कैशिकमध्यम, भिन्नषड्ज मध्यम०—(भिन्न) तान, (भिन्न) कैशिक, भिन्नपञ्चम।

३. गौड़ी गीति—षड्ज०—गौड़कैशिकमध्यम, गौड़पञ्चम। मध्यम० गौड़कैशिक।

४. वेसरा गीति—षड्ज०—टक्क, वेसरषाडव, सौवीर। मध्यम०—बोट्ट, मालवकैशिक, मालवपञ्चम। द्वैग्रामिक–टक्ककैशिक, हिन्दोल।

५. साधारणी गीति—षड्ज०-रूपसाधार (साधारित) शक, भम्माणपञ्चम। मध्यम०—नर्त, गान्धारपञ्चम, षड्जकैशिक। द्वैग्रामिक—ककुभ।

इस प्रकार ग्रामराग कुल ३० कहे हैं।

उपराग—(आठ) शकतिलक, टक्कसैन्धव, कोकिलापञ्चम, रेवगुप्त, पञ्चमषाडव, भावनापञ्चम, नागगान्धार, नागपञ्चम।

श्रीराग, नट्ट, बङ्गाल (द्विवचन रख कर बङ्गाल राग के दो रूप कहे हैं), भास, मध्यमषाडव, रक्तहंस, कोल्लहास, प्रसव, भैरव, ध्वनि, मेघ, सोम, कामोद (यहां भी द्विवचन रखा है), आम्रपञ्चम, कन्दर्प, देशाख्य, कैशिककुभ, नट्टनारायण। ये २० राग उपरागों से पृथक् कहे हैं और इनका किसी गीति के साथ भी संबन्ध नहीं जोड़ा गया है।

भाषाओं के जनक राग (याष्टिक मत से)—सौवीर, ककुभ, टक्क, पञ्चम, भिन्नपञ्चम, टक्ककैशिक, हिन्दोल, बोट्ट, मालवकैशिक, गान्धारपञ्चम, भिन्नषड्ज, वेसरषाडव, मालवपञ्चम, तान, पञ्चमषाडव। कुल १५। इनकी भाषाएं क्रमशः इस प्रकार गिनाई हैं:—

सौवीर—१. सौवीरी २. वेगमध्यमा ३. साधारिता ४. गान्धारी।

ककुभ—१. भिन्नपञ्चमी २. काम्भोजी ३. मध्यमग्रामा, ४. रगन्ती ५ मधुरी ६. शकमिश्रा। इन भाषाओं के अतिरिक्त इस के अन्तर्गत ये विभाषा भी कही हैं—१. भोगवर्धनी २. आभीरिका ३. मधुकरी।

अन्तर भाषा—१. शालवाहनिका।

टक्क-भाषा—१. त्रवणा २. त्रवणोद्भवा ३. वैरञ्जी ४. मध्यमग्रामदेहा, ५. मालववेसरी ६. छेवाटी ७. सैन्धवी ८. कोलाहला ९. पञ्चमलक्षिता १०. सौराष्ट्री ११. पञ्चमी १२. वेंगरञ्जी १३. गान्धारपञ्चमी १४. मालवी १५ तानवलिता १६. ललिता १७. रविचन्द्रिका, १८. ताना १९. अम्बाहेरिका २०. वेसरी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विभाषा—१. देवारवर्धनी २. आन्ध्री ३. गुर्जरी ४. भावनी।

पञ्चम—भाषा १. कैशिकी २. त्रावणी ३. तानोद्भवा ४. आभीरी ५. गुर्जरी ६. सैन्धवी ७. दाक्षिणात्या ८. आन्ध्री ९. माङ्गली १०. भावनी। विभाषा—१. भम्मणी २. आन्धालिका।

भिन्नपञ्चम—भाषा—१. धैवतभूषिता २. शुद्धभिन्ना ३. वाराटी ४. विशाला विभाषा—१. कौशली।

टक्ककैशिक—भाषा—१. मालवा २. भिन्नवलिता। विभाषा—द्राविडी।

प्रेङ्खक—भाषा—१. वेसरी २. चूतमञ्जरी ३. षड्जमध्यमा ४. मधुरी ५. भिन्नपौराली ६. गौड़ी ७. मालववेसरी ८. छेवाटी ९. पिञ्जरी।

बोह—भाषा - माङ्गली।

मालवकैशिक—भाषा—१. बाङ्गाली २. माङ्गली ३. हर्षपुरी ४. मालववेसरी ५. खञ्जनी ६. गुर्जरी ७. गौड़ी ८. पौराली ९. अर्धवेसरी १०. शुद्धा ११. मालवरूपा १२. सैन्धवी १३. आभीरिका। विभाषा—१. काम्भोजी २. देवारवर्धनी।

गान्धारपञ्चम—भाषा—गान्धारी।

भिन्नषड्ज—भाषा—१. गान्धारवल्ली २. कच्छेल्ली ३. स्वरवल्ली ४. निषादिनी ५. त्रवणा ६. मध्यमा ७. शुद्धा ८. दाक्षिणात्या ९. पुलिन्दका १०. तुम्बुरा ११. षड्जभाषा १२. कालिन्दी १३. ललिता १४. श्रीकण्ठिका १५. बाङ्गाली १६. गान्धारी १७. सैन्धवी। विभाषा—१. पौराली २. मालवा ३. कालिन्दी ४. देवारवर्धनी।

वेसरषाडव—भाषा—१. नाद्या २. बाह्यषाडवा। विभाषा—१. पार्वती २. श्रीकण्ठी।

मालवपञ्चम—भाषा—१. वेदवती २. भावनी ३. विभावनी।

तान—भाषा—१. तानोद्भवा।

पञ्चमषाडव—भाषा—१. पोता।

रेवगुप्त—भाषा—१. शका। विभाषा—१. पल्लवी।

अन्तरभाषा—१. भासवलिता २. किरणावली ३. शकवलिता।

कुल ९६ भाषा, २० विभाषा और ४ अन्तरभाषा।

ऊपर उद्धृत भाषा नामों में कई स्थलों पर पुनरुक्ति दिखाई देती है। इस नाम-साम्य-जनित पुनरुक्ति के लिए शार्ङ्गदेव ने कहा है कि लक्ष्य में भिन्नता होने पर भी कई भाषाओं में नाम-साम्य है। यथा :—

नामसाम्यं तु कासांचिद् भिन्नानामपि लक्ष्यतः॥

(स. र. २।१।४७)

देशीराग

१. **रागाङ्ग**—(पूर्वप्रसिद्ध नाम)—१. शंकराभरण २. घण्टारव ३. हंसक ४. दीपक ५. रीति ६. कर्णाटिका ७. लाटी ८. पाञ्चालो। ('अधुना' प्रसिद्ध नाम) १. मध्यमादि २. मालवश्री ३. तोडी ४. वङ्गाल ५. भैरव ३. वराटी ७ गुर्जरी ८. गौड ९. कोलाहल १०. वसन्तक ११. धन्यासी १२ देशी १३. देशाख्या।

२. **भाषाङ्ग**—(पूर्व प्रसिद्ध नाम)—१. गाम्भीरी २. वेहारी ३. श्वसिता ४. उत्पली ५. गोली ६. नादान्तरी ७. नीलोत्पली ८. छाया ९. तरङ्गिणी १० गान्धारगतिका ११. वेरञ्जी। ('अधुना' प्रसिद्ध नाम)—१. डोम्बक्री २ सावेरी ३. वेलावली ४. प्रथममञ्जरी ५. आदिकामोदिका ६. नागध्वनि ७. शुद्धवराटिका ८ नट्टा ९. कर्णाटवङ्गाल।

क्रियाङ्ग—(पूर्वप्रसिद्ध नाम) १. भावक्री २. स्वभावक्री ३. शिवक्री ४. मकरक्री ५. ५ त्रिनेत्रक्री ६. कुमुदक्री ७. दनुक्री ८. ओजक्री ९. इन्द्रक्री १०. नागकृति ११. धन्यकृति १२. विजयक्री। ('अधुना' प्रसिद्ध नाम)—१ रामक्री २. गौडक्री ३. देवक्री।

उपाङ्ग—(पूर्वप्रसिद्ध नाम) १. पूर्णाटी २. देवाल ३. गुरुञ्जिका। (अधुना' प्रसिद्ध नाम) १. कौन्तली २ द्राविड़ी ३. सैन्धवी ४. उपस्थानवराटिका ५. हस्तस्वरवराटी ६. प्रतापवराटिका (ये 'तुरुष्क तोडी' की छः छाया हैं) ७. महाराष्ट्री ८. सौराष्ट्री ९. दक्षिणा १० द्राविड़ी (ये चार 'गुर्जरी' हैं) ११. भुञ्जिका १२. स्तम्भतीर्थिका १३. वेलावली (दो प्रकार की – द्विवचन में कही है।) १५. भैरवी १६. कामोदा १७. सिंहली १८. छायानट्टा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१६. रामकृति २०. भल्लातिका २१. मल्हारी २२. मल्हार २३. गौडक २४. कर्णाट २५. देशवाल २६. तुरुष्क २७. द्राविड़।

३४ पूर्वप्रसिद्ध और ५२ अधुना प्रसिद्ध राग—यों कुल मिला कर ८६ 'देशी' राग शार्ङ्गदेव ने कहे हैं। पूर्वोक्त ग्रामराग, भाषा, विभाषा आदि कुल मिला कर २६४ राग शार्ङ्गदेव ने गिनाए हैं।

तालिका (ग) नारद

१. रागों के प्रयोगकाल के अनुसार विभाजन

सूर्यांश राग—(विशेषतः प्रातःकाल में प्रयोक्तव्य)—

१. गान्धार २. देवगान्धार ३. धन्नासी ४. सैन्धवी ५. नारायणी ६. गुर्जरी ७. बङ्गाल ८. पटमञ्जरी ९. ललिता १०. आन्दोलश्रीका ११. सौराष्ट्रेय १२. जयसाक्षिक १३. महार १४. सामवेदी १५. वसन्त १६. शुद्धभैरव १७. वेलावली १८. भूपाल १९. सोमराग।

(मध्याह्न में प्रयोक्तव्य राग)—१. शंकराभरण २. वलहंस ३. देशी ४. मनोहरी ५. सावेरी ६. दोम्बुली ७. काम्भोजी ८. गोपिकाम्भोजी ९. कैशिकी १०. मधुमाधवी ११. बहुलीद्वय ११ मुखारी १२. मङ्गलकौशिका।

चन्द्रमांश राग—(सायंकाल में प्रयोक्तव्य)— १. शुद्धनाट २. सालङ्ग ३. नाटो ४. शुद्धवराटिका ५. गौल ६. मालवगौड ७. श्रीराम ८. आहरी ९. रामकृति १०. रञ्जी ११ छाया १२. सर्ववराटिका १३. वराटिका १४. द्रावडिका १५. देशी १६. नागवराटिका १७. कर्णाटहयगौडी।

२. रागों की संपूर्णत्वादि अवस्था के अनुसार विभाजन—

संपूर्ण राग—१. देशाक्षी २. मध्यमादि ३. वसन्त-भैरवी ४. शुद्धभैरवी ५. मालवी ६. नाटराग ७. मुखहारी ८. आहरी ९. वलहंस १०. शुद्ध वसन्त ११. शुद्धरामक्रिया १२. शुद्ध वराटिका।

षाडव राग—१. देवगान्धार २. नीलाम्बरी ३. श्रीराग ४. शुद्धबहुली ५. शुद्धगौल ६. ललित ७. मालवश्री ८. भूपाल ९. षडनञ्जी १०. गुण्डक्री ११. कुरञ्जी।

औडव राग—१. धन्यासी २. सावेरी ३. गुर्जरी ४. मधुमाधवी ५. मेघरञ्जी ६. वेलावली ७. रामकृति ८. नारायणी।

३. लिंग के अनुसार राग-विभाजन

पुलिङ्ग राग—१. बङ्गाल २. सोमराग ३. श्रीराग ४ भूपाली ५. छायागौड ६. शुद्धहिन्दोलिका ७. आन्दोली ८. दोम्बुली ९. कर्णाट १०. गौड ११. फडमञ्जी १२. शुद्ध-नाटी १३. मालवगौलक १४. छायानाटी १५. कोलाहल १६. सौराष्ट्री १७. वसन्त १८. शुद्धसारंग १९. भैरवी २०. रागध्वनि।※

स्त्री राग—१. तुण्डी २. तुरुष्कतुण्डी ३. मल्हारी ४. माहुरी ५. पौरालिकी ६. काम्भारी ७. भल्लाती ८. सैन्धवी ९. सालङ्गाख्या १०. गान्धारी ११. देवक्री १२. देशिनी १३. वेलावली १४. बहुली १५. गुण्डक्री १६. घूर्जरी १७. वराटी १८. द्राविडी १९. हंसी २०. गौडी २१. नारायणी २२. आहरी २३. मेघरञ्जी २४. मिश्रनाटा।

नपुंसक राग—१. कैशिको २. ललित ३. धन्नाशी ४. कुरञ्जिका ५. सौराष्ट्री ६. द्रावडी ७. शुद्धा ८. नागव-राटिका ९. कौमोदकी १०. रामक्री ११. सावेरी १२. बल-हंस १३. सामवेदी १४. शंकराभरण।

४. रागाङ्ग राग—१. मध्यमादि २. मालवश्री ३. श्रीका ४. जयसाक्षिका ५. वराटी ६. घूर्जरी ७. गौड ८. कोलाहल ९. वसन्त १०. धनाश्री ११. देश १२. देशाख्या १३. बङ्गाल।

५. पुरुष रागों के साथ स्त्री-रागिणियों का सम्बन्ध

(प्रथम मत)—१. भूपाल २. भैरव ३. श्रीराग ४. फडमञ्जरी ५. वसन्त ६. मालवी ७. नाट ८. बङ्गाल। ये आठ पुरुषराग और इनकी स्त्रियां इस प्रकार कही हैं :—

भूपाल की स्त्रियाँ—१. वेलावली २. मल्हारी ३. बहुली।

भैरव की स्त्रियाँ—१. देवक्रिया २. पौराली ३. काम्भारी।

※ पुल्लिंग रागों के अन्तर्गत अनेक स्त्रीलिंगवाची नामों का संग्रह किया गया है यह विशेष ध्यान देने की बात है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पडमञ्जरी की स्त्रियाँ—१. श्रीरागपति २. काम्भोजी। ३. भल्लाती ४. कुरञ्जिका ५. देशी ६. मनोहरी। ७. तुण्डी।

नाट की स्त्रियाँ—१. सारङ्गनाट २. आहरी।

बङ्गाल की स्त्रियाँ—१. नारायणी २. गान्धारी ३. रञ्जी।

वसन्त की स्त्रियाँ—१. वराटी २. द्रावडी ३. हंसी।

मालव की स्त्रियाँ—१. गुण्डक्रिया २. घूर्जरी ३. गौडी।

(दूसरे मत से)—छः पुरुषराग और प्रत्येक की स्त्रियां—

१. श्रीराग—१. गौडी २. कोलाहली ३. द्रावली ४. आन्दोलिकी ५. माधवी ६. देवगान्धारी।

२. पञ्चम—१. शुद्धनाटा २. सावेरी ३. सैन्धवी ४. मालती ६. कौमोदकी।

३. मेघराग—१. सौराष्ट्री २. काम्भीरी ३. बङ्गाली ४. मधुमाधवी ५. देवक्री ६. भूपाली।

४. नाटनारायण—१. वल्लभा २. माधवी ३. विदग्धा ४. अभिसारिका ५ त्रिवेणी ६. मेघरञ्जी।

वसन्त और नाटनारायण की स्त्रियों के नाम उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि आगे पाठ खण्डित है।

तालिका (घ) संगीतोपनिषत्सारोद्धार (वाचनाचार्य सुधाकलश)

छः पुरुष राग और प्रत्येक की छः भाषाः—

१. श्रीराग—गौडी, कोलाहला, आन्धाली, द्रविड, मालवकैशिकी, देवगान्धारी।

२. वसन्त—आन्दोला, कैशिकी, प्रथममञ्जरी, गुण्डगिरी, देवशाखा, रामगिरी।

३. भैरव—भैरवी, गुर्जरी, वेलावुली, कर्णाटी, रक्तहंसा, भाषा।

४. पञ्चम—त्रिगणा, स्तम्भतीर्थी, आभीरी, ककुभा, वइराडी, सामेरी।

५. मेघराग—बङ्गाला, मधुरा, कामोदा, चोक्षसाटिका, देवगिरी, देवाला।

६. नट्टनारायण—तोटिका, नट्टा, डुम्बी, मल्लारी, सिन्धुमल्लारी।

तालिका (ङ) संगीतदामोदर (शुभंकर)

छः पुरुष राग और प्रत्येक की पांच स्त्रियांः—

१. भैरव—भैरवी, कौशिकी, भाषा, वेलावरी बङ्गाली।

२. वसन्त—आन्दोलिता, देशाख्या, लोला, प्रथम, मञ्जरी, मन्दारी।

३. मालवकैशिक—गौडी, गुण्डगिरी, वराडी, क्षमावती, कर्णाटी।

४. श्रीराग—गान्धारी, देवगान्धारी, मालवश्री, सावेरी, रामकिरी।

५. मेघ—ललिता, मालसी, गौरी, लाटी, देवकिरी।

६. नटनारायण—तारामणि, आभारी, कामोदी, गुर्जरी, ककुभा।

तालिका (च) रसकौमुदी (श्रीकण्ठ)

११ मेल और उनके अन्तर्गत २५ पुरुषराग तथा १३ स्त्री रागिणी—

१. मुखारिका मेल—मुखारी (स्त्री०)

२. मालवगौडमेल—पुरुष०—मालवगौड, पञ्चम, भैरव, बङ्गाल, ललित, कर्णाट। स्त्री० सौराष्ट्री, गुर्जरी, मह्लारी, वहुली, पाली, गौडी।

३. श्रीरामेल—पु०—श्रीराग, देवगान्धार, स्त्री० मालवश्री, धन्यासी, भैरवी।

४. विशुद्धनट्टमेल—पु०—शुद्धनट्ट।

५. कर्णाटगौडमेल—पु०—कर्णाटगौड, सामन्त, शुद्धवंगाल, घण्टारव, स्त्री० तोडी।

६. वसन्तरामेल—पु० वसन्त—भूपाली।

७. केदाररागमेल—पु० केदार, नट्टनारायण, शंकराभरण। स्त्री० वेलावली।

८. मल्हारमेल—पु० मल्हार, गौडमल्हार, स्त्री० कामोदी।

९. पूर्णदेशाक्षिकामेल—स्त्री० देशाक्षिका।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०. कल्याणमेल—पु० कल्याण, कामोद, हमीर।

११. सारंगरागमेल—पु० सारंग।

तालिका (छ) रागमाला (पुण्डरीक विट्ठल)

छः पुरुषराग, प्रत्येक की पांच स्त्रियां और पांच पुत्र :

१. शुद्धभैरव—स्त्री—धन्यासी, भैरवी, सैन्धवी, मारवी, आसावरी। पुत्र—भैरव, शुद्धललित, पञ्चम, परज, बङ्गाल।

२. हिन्दोल—स्त्री—भूपाली, वराटी, तोडी, प्रथममञ्जरी, तुरुष्कतोडिका। पुत्र—वसन्त, शुद्धबङ्गाल, श्याम, सामन्तक, कामोद।

३. देशिकार—स्त्री—रामक्री, बहुली, देशी, श्री, गुर्जरी। पुत्र—ललित, विभास, सारंग, त्रिवण, कल्याण।

४. श्रीराग—स्त्री—गौडी, पाडी, गुणकरी, नादरामक्रिया, गुण्डक्री। पुत्र—टक्क, देवगान्धार, मालव, शुद्धगौडक, कर्णाटबङ्गाल।

५. शुद्धनाट—स्त्री—मालवश्री, देशाक्षी, देवक्री, मधुमाधवी, आहेरी। पुत्र—जिजावन्त, सालंग, नाट, कर्णाटक, छायानाट, हमीरनाट।

६. नटनारायण—वेलावली, काम्बोजी, सावेरी, सुहवी, सौराष्ट्री। पुत्र—मल्हार, गौड, केदार, शंकराभरण, विहागड़ा।

तालिका (ज) संगीतदर्पण (दामोदर पण्डित)

संगीतदर्पण में 'शिवमत 'हनुमन्मत' तथा 'रागार्णव मत' के नाम से तीन पृथक् तालिकाएं राग-रागिणी की दी गई हैं और इन तीन तालिकाओं के बाद राग-रागिणियों के ध्यान तथा विवरण हनुमन्मत के अनुसार दिए हैं और इस मत में समाविष्ट रागों के अतिरिक्त भी कुछेक स्त्री-पुरुष राग कहे हैं जो संभवतः लेखक को स्वयं मान्य रहे होंगे। ये सभी नामावलियां नीचे प्रस्तुत हैं।

१. शिवमत

छः पुरुष तथा प्रत्येक की छः-छः स्त्रियां।

श्रीराग—मालश्री, त्रिवेणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी।

वसन्त—देशी, देवगिरि, वराटी, तोडिका, ललिता, हिन्दोली।

भैरव—भैरवी, गुर्जरी, रामकिरी, गुणकिरी, बंगाली, सैन्धवी।

पञ्चम—विभाषा, भूपाली, कर्णाटी, बडहंसिका, मालश्री, पटमंजरी।

मेघराग—मल्लारी, सोरठी, सावेरी, कौशिकी, गान्धारी, हरश्रृङ्गारा।

नट्टनारायण—कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी, नट्टहम्वीरा।

२. हनुमन्मत

छः पुरुष राग तथा प्रत्येक की पांच-पांच रागिणी।

भैरव—मध्यमादि, भैरवी, बङ्गाली, वराटी, सैन्धवी।

कौशिक—तोडी, खम्भावती, गौरी, गुणक्री, ककुभा।

हिन्दोल—वेलावली, रामकिरी, देशाख्या, पटमंजरी, ललिता।

दीपक—केदारी, कानडा, देशी, कामोदी, नाटिका।

श्रीराग—वासन्ती, मालवी, मालवश्री, धनासिका, आसावरी।

मेघराग—मल्लारी, देशकारी, भूपाली, गुर्जरी, टंका।

इस तालिका में समाविष्ट पुरुष-स्त्री-रागों के अतिरिक्त निम्नलिखित नाम के पुरुष-स्त्री रागों का भी ग्रन्थाकार ने विवरण दिया है किन्तु इनका परस्पर संबंध नहीं जोड़ा है अर्थात् यह नहीं कहा है कि किस राग की कौन-सी भार्या है। ये नाम इस प्रकार हैं :—

पुरुष राग—कल्याणनाट, पंचम, शंकराभरण, बड़हंस, विभास।

स्त्री रागिणी—सारङ्गनट्टा, देवगिरि, सोरठी, त्रिवणा, पहाड़ी, रेवा, कुडाई, आभीरी।

३. रागार्णव मत

छः राग तथा प्रत्येक के आश्रित पांच-पांच राग (रागिणी नहीं) *।

---

* यह ध्यान देने की बात है कि अधिकांश आश्रित रागों के नाम स्त्रीलिङ्गवाची है। फिर भी उन्हें स्त्री न कह कर पुरुष ही कहा गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भैरव—बङ्गाली, मध्यमादि, गुणकिरी, वसन्तक, घनाश्री।

पञ्चम—ललिता, गुजरी, देशी, वराडी, रामकृत्।

नाट—नट्टनारायण, गान्धार, सालग, केदार, कर्णाट।

मल्लार—मेघमल्लारिका, मालकौशिक, पठमञ्जरी, आसावरी। (यहां पांच के स्थान पर चार ही नाम दिए हैं)।

गौड—हिन्दोल, त्रिवण, आन्धारी, गौरी, पठहंसिका।

देशाख्य—भूपाली, कुड़ायी, कामोदी, नाटिका, वेलावली।

तालिका (झ) रागतरङ्गिणी (लोचन)

संस्थान-पद्धति

संस्थान	जन्य-राग-नाम
१. भैरवी	(१) भैरवी, नीलांबरी
२. टोडी	(२) टोडी
३. गौरी	(२७) गौरी, मालवः, श्री गौरी, चेतीगौरी, पहाडीगौरी, देशीटोडी, देशकारः, गौडः, त्रिवणः, मूलतानी घनाश्रीः, वसंतकः, गौरा, भैरवः, विभासः, रामकली, गुर्जरी, बहुली, रेवा, आटियारः, षट्रागः, मालश्रीः, पंचमः, जयतश्रीः, आसावरी, देवगान्धारः, सिंधी आसावरी, गुणकरी।
४. कर्णाटः	(२०) कर्णाटः, कानरः, देशी, वागीश्वरी कानरः, खमाइची, सोरहः, परजः, मारुः, जैजयंती, ककुभः, कामोदः, कामोदी, केदारी, गौरः, मालकौशिक, हिंडोलः, सुहाराई, अडानः, गारेकानरः, श्रीः।
५. केदारः	(१३) केदारः, केदारनाटकः, अहीरनाटः, खंभावती, शंकराभरणः विहागरा, हंमीरः, श्यामः, छायानट्टः, भूपाली, भीमपलासिका, कौशिकः, मारूः।
६. ईमनः	(४) ईमनः, शुद्धकल्याणः, पूरिया, जयकल्याणः,
७. सारंगः	(५) सारंगः, पटमंजरी, वृन्दावनी, सामन्तः, बडहंसकः,
८. मेघः	(१०) मेघः, मल्लारः, गौडसारंगः, नाटः, वेलावली, अलहिया, शुद्ध सूरवः, देशाखः, शुद्धनाटः।
९. घनाश्रीः	(२) घनाश्रीः, ललितः।
१०. पूर्वी	(१) पूर्वी।
११. मुखारी	(१) मुखारी।
१२. दीपकः	(१) दीपकः।

टिप्पणी—लोचन की संस्थान-पद्धति संभवतः उनकी अपनी ही उद्भावना है। और उसके कोई अनुयायी ग्रन्थ अभी तक प्रकाश में नहीं आए हैं। इस पद्धति का विवेचन 'प्रणव भारती' (राग शास्त्र) में किया जायगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तालिका (ञ) रामामात्य के मेल तथा जन्य राग

मेल-नाम तथा क्रमांक	रामामात्योक्त स्वर-रूप	हिन्दुस्तानी स्वर-नामों के अनुसार स्वर-रूप	जन्य राग
१. मुखारी	सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सां (भरतोक्त शुद्ध स्वरावली)	सा – रि् – रि – म – प – ध् – ध – सां	१. मुखारी।
२. मालवगौड़	सा – रि – च्यु. म. गां. – म – प – ध – च्यु. प. नि. – सां	सा – रि् – ग – म – प – ध् – नि – सां	१. मालवगौड़ २. ललिता ३. बौली ४. सौराष्ट्र ५. गुर्जरी ६. मेचबौली ७. फलमंजरी ८. गुंडक्री ९. सिंधुरामक्री १०. छायागौळ ११. कुरंजी १२. कंनड-बंगाल १३. मंगलकैशिक १४. मलहरी।
३. श्रीराग	सा – पंच. रि. – सा. गां. – म – प – पंच. ध – कै. नि. – सां	सा – रि – ग् – म – प – ध – नि् – सां	१. श्रीराग २. भैरवी ३. गौळी ४. धन्यासी ५. शुद्ध-भैरवी ६. वेलावली ७. मालवश्री ८. शंकराभरण ९. आंधाली १०. देवगान्धार ११. मध्यमादि।
४. सारंगनाट	सा – पंच. रि. – च्यु. म. गां. – म – प – पंच. ध. – च्यु. ष. नि. – सां	सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सां	१ सारंगनाट २. सावेरी ३. सालगभैरवी ४. नाट-नारायणी ५. शुद्धवसन्त ६. पूर्वगौड़ ७. कुन्तलवराळी ८ भिन्नषड्ज ९. नारायणी।
५. हिंदोल	सा – पंच. रि. – सा. गां – म – प – ध – कै. नि. – सां	सा – रि – ग् – म – प – ध् – नि् – सां	१. हिंदोल २. मार्गहिंदोल ३. भूपाल।
६. शुद्धरामक्रिया	सा – रि – च्यु. म. गां – च्यु पं. म. प – ध – च्यु. ष. नि्. सां	सा – रि् – ग – म् – प – ध् – नि – सां	१. शुद्धरामक्रिया २. बौळी ३. आर्द्रदेशी ४. दीपक
७. देशाक्षी	सा – पट्. रि. – च्यु. म. गां. – म – प – पंच. ध – च्यु. ष. नि – सां	सा – ग् – ग – म – प – ध – नि – सां	१. देशाक्षी
८. कंनडगौळ	सा – पट्. रि – च्यु. म. गां. – म – प – पंच. ध. कै. नि. – सां	सा – ग् – ग – म – प – ध – नि् – सां	१. कंनडगौळ २. घंटारव ३. शुद्धबंगाल ४. छायानट ५. तुरुष्कतोडी ६. नागध्वनि ७. देवक्रिया
९. शुद्धनाट	सा – पट्. रि. – च्यु. म. गां. – म – पं – पट्. ध. – च्यु. ष. नि. – सां	सा – ग् – ग – म – प – नि् – नि – सां	१. शुद्धनाट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०. अहीरी	सा – पंच. रि. – सा. गां. – म – प – ध – च्यु. ष. नि. – सां	सा – रि – ग् – म – प – ध् – नि – सां	१. अहीरी
११. नादरामक्रिया	सा – रि – सा. गां. – म – प – ध – च्यु. ष. नि. – सां	सा – रि् – ग् – म – प – ध् – नि – सां	१. नादरामक्रिया
१२. शुद्धवराळी	सा – रि – ग – च्यु. पं. म. – प – ध – च्यु. ष. नि. सां	सा – रि् – रि – म् – प – ध् – नि – सां	१. शुद्धवराळी
१३. रीतिगौळ	सा – रि – ग – म – प – पंच. ध. – कै. नि. – सां –	सा – रि् – रि – म – प – ध – नि् – सां	१. रीतिगौळ
१४. वसंतभैरवी	सा – रि – च्यु. म. गां – म – प – ध – कै. नि. – सां	सा – रि् – ग – म – प – ध् – नि् – सां	१. वसंतभैरवी
१५. केदारगौळ	सा – पंच. रि. – च्यु. म. गां. – म – प – पंच. ध – च्यु. ष. नि. (कै.नि.?)	सा – रि – ग – म – प – ध – नि्	१. केदारगौळ
१६. हेज्जुजी	सा – रि – अं. गा. – म – प – ध – का. नि. – सां	सा – रि् – ग – म – प – ध् – नि – सां	१. हेज्जुजी
१७. सामवराळी	सा – रि – ग – म – प – ध – का. नि. – सां	सा – रि् – रि – म – प – ध् – नि – सां	१. सामवराळी
१८. रेवगुप्ति	सा – रि – अं. गां. – म – प – ध – नि – सां	सा – रि् – ग – म – प – ध् – ध – सां	१. रेवगुप्ति
१९. सामंत	सा – षट्. रि. – अं. गां. – म – प – पट्. ध – का. नि. – सां	सा – ग् – ग – म – प – नि् – नि – सां	१. सामंत
२०. कांभोजी	सा – पंच. रि. – अं. गां. – म – प – पंच. ध. – का. नि. – सां	सा – रि – ग – म – प – ध – नि – सां	१. कांभोजी

टिप्पणी—प्रथम पन्द्रह मेलों में च्युतषड्जनिषाद तथा काकली निषाद को एवं च्युतमध्यमगान्धार तथा अन्तर गान्धार को एकरूप माना गया है। और अन्तिम पांच मेलों में इन्हें भिन्न मान कर वैकल्पिक मेल प्रस्तुत किये हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तालिका (ट) रागविबोध (सोमनाथ)

२३. मेल-नाम तथा प्रत्येक के जन्य राग

१. मुखारी	१. मुखारी २. तुरुष्कतोडी
२. रेवगुप्ति	१. रेवगुप्ति
३. सामवराली	१. सामवराली २. वसन्तवराली
४. तोड़ी	१. तोड़ी
५ नादरामक्री	१. नादरामक्री
६. भैरव	१. भैरव २ पौरविका
७. वसन्त	१. वसन्त २ टक्क ३. हिजेज ४. हिंदोल
८. वसन्तभैरवी	१ वसन्तभैरवी २ मारविका
९. मालवगौड	१. मालवगौड २ चेत्तीगौड़ ३ पूर्वी ४. पाडी ५ देवगान्धार ६. गोण्डक्रिया ७. कुरञ्जी ८. वहुली ९. रामक्री १०. पावक ११ आसावरी १२. पञ्चम १३. वङ्गाल १४ शुद्धललित १५ गुर्जरी १६. परज १७ शुद्धगौड ।
१०. रीतिगौड	१. रीतिगौड
११ आभीर	१. आभीर
१२. हम्मीर	१ हम्मीर २. विहङ्गड ३ केदार
१३ शुद्धवराटी	१ शुद्धवराटी
१४. शुद्धरामक्री	१ शुद्धरामक्री २ ललित ३. जैताश्री (देशकार) ४. आवणी ५. देशी ।
१५ श्रीराग	१. श्रीराग २ मालवश्री ३. धन्याशिका ४ भैरवी ५. धवला ६ सैन्धवी ।
१६. कल्याण	१. कल्याण ।
१७ काम्बोदी	१. काम्बोदी २ देवक्री ।
१८. मल्लारी	१. मल्लारी २. नट्टमल्लारी ३. पूर्वगौड ४. भूपाली ५. गौड ६ शंकराभरण ७. नटनारायण ८. नारायणगौड ९. केदार (द्वितीय) १०. सालङ्ग (ङ्ग ?) नाट ११. वेलावली १२ मध्यमादि १३ सावेरी १४ सौराष्ट्री ।
१९. सामन्त	१. सामन्त ।
२०. कर्णाटगौड	१. कर्णाटगौड २. घण्टारव ३. नागध्वनि ४. शुद्धवङ्गाल ५. वर्णनाट इराक्र (तुरुष्कतोडी)।
२१. देशाक्षी	१. देशाक्षी ।
२२. शुद्धनाट	१. शुद्धनाट ।
२३. सारङ्ग	१. सारङ्ग ।

टिप्पणी—सोमनाथ के 'रागविबोध' की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि मेल पद्धति को ग्रहण करते हुए भी उन्होंने कुछेक जन्य रागों के पुरुष-स्त्री के रूप में 'देवतामय' ध्यान भी दिए हैं।

(ठ) सद्रागचन्द्रोदय, रागमंजरी (पुण्डरीक विट्ठल)

पुण्डरीक विट्ठल की 'रागमाला' में राग-रागिणी-वर्गीकरण का जिस प्रकार उल्लेख मिलता है वह हम ऊपर तालिका (छ) में देख चुके हैं। अपने दो अन्य ग्रन्थों में यानी 'सद्रागचन्द्रोदय' और 'रागमंजरी' में उन्होंने मेल-पद्धति के अनुसार राग वर्गीकरण किया है। 'सद्रागचन्द्रोदय' में प्रायः रामामात्य का ही अनुसरण करते हुए एक-दो परिवर्तनों के साथ रामामात्य के ही २० मेल ग्रहण किये हैं और 'रागमञ्जरी' में किंचित् परिवर्तन से केवल १५ मेल ग्रहण किये हैं। एक ही ग्रन्थकार द्वारा अपने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न रीति से राग-वर्गीकरण प्रस्तुत करना इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि उस काल में स्वर-नामों की ही भांति ही मेल या 'राग' के बारे में भी ग्रन्थकार के मनमाने निरूपण को पूरा अवकाश था। यहां इन दो ग्रन्थों की मेल-राग-तालिका प्रस्तुत करने से कोई विशेष प्रयोजन नहीं सिद्ध होगा। अतः हम इस विषय के विस्तृत निरूपण को 'प्रणव भारती' (राग शास्त्र) में समाविष्ट करने की दृष्टि से यहीं छोड़ देते हैं।

तालिका (ड) चतुर्दण्डिप्रकाशिका (व्यंकटमखी)

व्यंकटमखी ने शुद्ध विकृत कुल १२ स्वर स्वीकार कर के अष्टक का 'पूर्वांग' और 'उत्तरांग' में विभाजन किया है। प्रत्येक 'अंग' में से चार-चार स्वरों का ग्रहण करके गणित-पद्धति से ३६ पूर्वमेल (शुद्धमध्यमवाले) और ३६ उत्तरमेल (तीव्र मध्यम वाले) ग्रहण कर के कुल ७२ मेलों की गणितसिद्ध रचना की है। इन मेलों में से केवल १९ को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही रागजनक माना गया है। शेष सब विवादी-दोष युक्त होने से अनुपयोगी माने गए हैं।

व्यंगकटमखी के पूर्वांग और उत्तरांग के स्वर इस प्रकार हैं:—

पूर्वांग—षड्ज, शुद्ध ऋषभ, शुद्धगान्धार, साधारण गान्धार, अन्तर गान्धार, शुद्ध मध्यम अथवा वराली (तीव्र) मध्यम।

उत्तरांग—पञ्चम, शुद्ध धैवत, शुद्ध निषाद, कैशिक निषाद, काकली निषाद, तार षड्ज।

छः—छः स्वरों के इन समूहों में से चार-चार का ग्रहण कर के व्यंकटमखी ने छः स्वर-समूह पूर्वांग के और छः उत्तरांग के बनाए हैं। पूर्वांग के एक-एक समूह के साथ उत्तरांग के एक छहों समूहों की जोड़ कर ६ × ६ = ३६ पूर्व मेल शुद्ध म० के और ३६ उत्तर मेल तीव्र मः के इस प्रकार कुल ७२ मेल की रचना की है। पूर्वांग-उत्तरांग के ये स्वर-समूह व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञाओं के अनुसार निम्नलिखित हैं:—

पूर्वाङ्ग		उत्तराङ्ग	
व्यंकटमखी की स्वर संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	व्यंकटमखी की स्वरसंज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा
स र ग म (मि)	स — रि॒ — रि — म (म)	प — ध — न — (सां)	प — ध॒ — ध (सां)
स र गि म (मि)	स — रि॒ — ग॒ — म (म)	प — ध — नि — (सां)	प — ध॒ — नि॒ (सां)
स र गु म (मि)	स — रि॒ — ग — म (म)	प — ध — नु — (सां)	प — ध॒ — नि (सां)
स रि गि म (मि)	स — रि — ग॒ — म (म)	प — धि — नि — (सां)	प — ध — नि॒ (सां)
स रि गु म (मि)	स — रि — ग — म (म)	प — धि — नु — (सां)	प — ध — नि (सां)
स रु गु म (मि)	स — ग॒ — ग — म (म)	प — धु — नु — (सां)	प — नि॒ — नि (सां)

७२ मेल-सारिणी

(३६ पूर्व मेलों की स्वरावली दिखा कर उत्तर मेलों के नाममात्र का उल्लेख कर दिया गया है क्योंकि उनमें शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम के प्रयोग के सिवाय कोई अन्तर नहीं है।)

समूह १

क्रमांक	(पूर्व मेल शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
१	कनकांगी	स र ग म प ध न (सं)	स रि॒ रि म प ध॒ ध (सं)	सालग	३७
२	रत्नांगी	स र ग म प ध नि (सं)	स रि॒ रि म प ध॒ नि॒ (सं)	जलार्णव	३८
३	गानमूर्त्ति	स र ग म प ध नु (सं)	स रि॒ रि म प ध॒ नि (सं)	झलवराडी	३९
४	वनस्पति	स र ग म प धि नि (सं)	स रि॒ रि म प ध नि॒ (सं)	नवनीतम्	४०
५	मानवती	स र ग म प धि नु (सं)	स रि॒ रि म प ध नि (सं)	पावनी	४१
६	तानरूपि	स र ग म प धु नु (सं)	स रि॒ रि म प नि॒ नि (सं)	रघुप्रिया	४२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समूह २

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
७	सेनावती	स र गि म प ध न (सं)	स रि॒ ग॒ म प ध॒ ध (सं)	गावाम्बोधि	४३
८	हनुमत् तोडी	स र गि म प ध नि (सं	स रि॒ ग॒ म प ध॒ नि॒ (सं)	भवप्रिया	४४
९	धेनुक	स र गि म प ध नु (सं	स रि॒ ग॒ म प ध॒ नि (सं)	शुभपन्तुवराड़ी	४५
१०	नाटक्रिया	स र गि म प धि नि (सं	स रि॒ ग॒ म प ध नि॒ (सं)	षड्विधमार्गिणी	४६
११	कोकिलप्रिया	रा र गि म प धि नु (सं)	स रि॒ ग॒ म प ध नि (सं)	सुवर्णांगी	४७
१२	रूपावली	स र गि म प धु नु (सं)	स रि॒ ग॒ म प नि॒ नि (सं)	दिव्यमणि	४८

समूह ३

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
१३	गायकप्रिया	स र गु म प ध न (सं)	स रि॒ ग म प ध॒ ध (सं)	धवलाम्बरी	४९
१४	वकुलाभरण	स र गु म प ध नि (सं)	स रि॒ ग म प ध॒ नि॒ (सं)	रामनारायणी	५०
१५	मायामालवगौड़	स र गु म प ध नु (सं)	स रि॒ ग म प ध॒ नि (सं)	कामवर्धनी	५१
१६	चक्रवाक	स र गु म प धि नि (सं	स रि॒ ग म प ध नि॒ (सं)	रामप्रिया	५२
१७	सूर्यकान्त	स र गु म प धि नु (सं)	स रि॒ ग म प ध नि (सं)	गमनश्रम	५३
१८	हाटकाम्बरी	स र गु म प धु नु (सं)	स रि॒ ग म प नि॒ नि (सं)	विश्वम्भरी	५४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समूह ४

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
१९	झंकारध्वनि	स रि गि म प ध न (सं)	स रि ग्‌ म प ध्‌ ध (सं)	श्यामलाङ्गी	५५
२०	नटभैरवी	स रि गि म प ध नि (सं)	स रि ग्‌ म प ध्‌ नि्‌ (सं)	षण्मुखप्रिया	५६
२१	कीरवाणी	स रि गि म प ध नु (सं)	स रि ग्‌ म प ध्‌ नि (सं)	सिंहेन्द्रमध्यम	५७
२२	खरहरप्रिया	स रि गि म प धि नि (सं)	स रि ग्‌ म प ध नि्‌ (सं)	हेमवती	५८
२३	गौरीमनोहरी	स रि गि म प धि नु (सं)	स रि ग्‌ म प ध नि (सं)	धर्मवती	५९
२४	वरुणप्रिया	स रि गि म प धु नु (सं)	स रि ग्‌ म प नि्‌ नि (सं)	नीतिमती	६०

समूह ५

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानी स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
२५	माररञ्जनी	स रि गु म प ध न (सं)	स रि ग म प ध्‌ ध (सं)	कान्तामणि	६१
२६	चारुकेशी	स रि गु म प ध नि (सं)	स रि ग म प ध्‌ नि्‌ (सं)	ऋषभप्रिया	६२
२७	सरसांगी	स रि गु म प ध नु (सं)	स रि ग म प ध्‌ नि (सं)	लताङ्गी	६३
२८	हरिकाम्भोजी	स रि गु म प धि नि (सं)	स रि ग म प ध नि्‌ (सं)	वाचस्पति	६४
२९	धीरशंकराभरण	स रि गु म प धि नु (सं)	स रि ग म प ध नि (सं)	मेचकल्याणी	६५
३०	नागानन्दिनी	स रि गु म प धु नु (सं)	स रि ग म प नि्‌ नि (सं)	चित्राम्बरी	६६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समूह ६

क्रमांक	पूर्वमेल (शुद्ध म)	व्यंकटमखी की स्वर-संज्ञा	हिन्दुस्तानो स्वर-संज्ञा	उत्तरमेल (तीव्र म)	क्रमांक
३१	यागप्रिया	स रु गु म प घ न (सं)	स ग् ग म प धृ ध (सं)	सुचरित्र	६७
३२	रागवर्धनी	स रु गु म प घ नि (सं)	स ग् ग म प ध् नि् (सं)	ज्योतिस्वरूपिणी	६८
३३	गांगेयभूषणी	स रु गु म प घ नु (सं)	स ग् ग म प ध नि (सं)	धातुवर्धनी	६९
३४	वागवीश्वरी	स रु गु म प धि नि (सं)	स ग् ग म प ध नि् (सं)	नासिकाभूषणी	७०
३५	शूलिनी	स रु गु म प धि नु (सं)	स ग् ग म प ध नि (सं)	कोसल	७१
३६	चलनाट	स रु गु म प धु नु (सं)	स ग् ग म प नि् नि (सं)	रसिकप्रिया	७२

व्यंकटमखी के जनक मेल तथा जन्य राग

जनक मेल	जन्यराग
१. मुखारी	१. मुखारी
२. सामवराली	१. सामवराली
३. भूपाल	१. भूपाल २. भिन्नषड्ज
४. वसन्तभैरवी	१. वसन्तभैरवी
५. गौळ	१ गौळ २. गुण्डक्रिया ३. सालंगनाट ४. नादरामक्रिया ५ ललिता ६. पाडी ७. गुर्जेरी ८. बहुली ९. मल्लहरी १०. सावेरी ११. छायागौळ १२. पूर्वगौळ १३. कर्णाटक १४. वङ्गाल १५. सौराष्ट्र
६ आहरी	१. आभेरी २. हिंदोलवसन्त
७. भैरवी	१. भैरवी २. हिन्दोल ३. आहीरी ४. घंटारव ५. रीतिगौळ ।
८. श्रीराग	१. श्री २ सालगभैरवी ३. धन्यासी ४. मालवश्री ५. देवगान्धार ६. आन्धाली ७. वेलावली ८. कंनडगौळ ।
९. हेजुज्जी	१. हेजुज्जी २. रेवगुप्ती
१०. कांभोजी	१. कांभोजी २ केदारगौळ ३. नारायणगौळ
११. शंकराभरण	१. शंकराभरण २. आरभी ३. नागध्वनि ४. साम ५. शुद्धवसन्त ६. नारायणदेशाक्षी ७. नारायणी ।
१२. सामन्त	१. सामन्त
१३. देशाक्षी	१. देशाक्षी
१४. नाट	१. नाट
१५. शुद्धवराळी	१. शुद्धवराळी
१६. पंतुवराळी	१, पंतवराळी
१७. शुद्धरामक्रिय।	१. शुद्धरामक्रिया
१८. सिंहरव	१. सिंहरव
१९. कल्याणी	१. कल्याण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय खंड

क्रियात्मक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डूंड पत्रिखी

कल्याणी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोमल आसावरी

आरोह-अवरोह—सारि्मप ध्सां, रि्'ऽनि्ध्ऽप ध्ऽमग्रि्सा ।

जाति—औडव-वक्र-सम्पूर्ण ।

ग्रह—षड्ज ।

अंश—ऋषभ, धैवत ; उपांश—गान्धार, निषाद ।

न्यास—पंचम ।

अपन्यास—मध्यम ।

विन्यास—षड्ज ।

स्वर-संगति—ध्–म, रि्'–नि् ।

मुख्य अंग—रि्म पध्ऽ मग् रि् ।

समय—प्रातःकाल ।

प्रकृति—मृदु गंभीर ।

विशेष विवरण

कोमल आसावरी में ऋषभ, गान्धार, धैवत, और निषाद कोमल लगते हैं, मध्यम शुद्ध लगता है। यों देखने से इसके स्वर भैरवी के-से प्रतीत होते हैं, किन्तु भैरवी के और इसके चलन में महद् अन्तर है। इसके आरोह में गान्धार तथा निषाद वर्ज्य हैं, और अवरोह में पञ्चम वक्र रहता है। यथा—सा रि् म प ध् सां, सां रि्' नि् ध्ऽप ध्ऽम ग् रि्ऽ सा। आसावरी के अंग को दिखाने के लिए सा रि् म प नि्ध्ऽप म प नि्ध्ऽप, रि्म प नि् ध् ऽ प, मप सां नि् ध् ऽ प, म प ध् सां रि्' नि् ध्ऽप,—इस प्रकार पञ्चम पर न्यास करते हुए स्वर-रचना रखी जाती है। और कोमल आसावरी की स्थापना दिखाने के लिये, अवरोह में पञ्चम का समूचा त्याग करते हुए—ध् ऽ म, ध्ऽप ध् ऽ म, म प ध् प ध् ऽ म, रि् म प ध् ऽ म, म प नि् ध् ऽ म—ऐसे स्वर-प्रयोग किये जाते हैं। और अन्त में ध् ऽ म ग् रि् ऽ सा, यों ऋषभ पर थोड़ा सा रुक कर 'सा' पर पूर्ण न्यास करते हैं। जैसे पञ्चम के बाद अवरोह करते समय पञ्चम का त्याग करके 'ध्मग् रि् सा' करते हैं, तद्वत् षड्ज से नीचे उतरते समय, षड्ज का त्याग करके 'रि्'ऽनि् ध् प' किया जाता है। 'रि्' ऽनि् ध् म' और ध्ऽम ग् रि् ये दोनों स्वर-क्रियाएँ एक दूसरे का जवाब है। और वे इस राग की रागवाची होकर इसके आविर्भाव के लिए अनिवार्य हैं।

इस राग को गाते समय यदि तानपूरे का पञ्चम का तार मध्यम में मिला लिया जाय, तो वह राग के रागत्व में और रस की निष्पत्ति में सहायक होगा। वह मध्यम कोमल ऋषम से सप्त-श्रुति संवाद करेगा, और कोमल धैवत से षट् श्रुति संवाद करेगा। इस प्रकार मध्यम में मिला हुआ तार उपर्युक्त स्वर-संवाद के कारण राग के माधुर्य और रसको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बढ़ाने में प्रबल योग देगा। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि इस राग में मध्यम पर्याप्त बलवान् स्वर है। इसलिए भी पञ्चम के स्थान पर मध्यम रखने की सूचना हम ने दी है। जिस मात्रा में पञ्चम की आवश्यकता है, उतनी मात्रा में पञ्चम तानपूरे के जोड़ के तारों से सुनायी देता ही है।

षड्ज इसका ग्रह-स्वर है, ऋषभ-धैवत अंश, गान्धार-निषाद उपांश स्वर हैं। पञ्चम न्यास, मध्यम अपन्यास और षड्ज विन्यास है। पञ्चम की अपेक्षा मध्यम का बहुत्व है। 'रि्-नि्' और 'ध्-म' ये स्वर-संगतियाँ हैं।

इसकी गति, पञ्चम पर न्यास, स्वरों के उच्चार, 'रि्-नि', 'ध्-म' की स्वर-संगतियाँ, इन सबको देखते हुए यह रागिनी कोमल, कान्त, मधुर और गंभीर हैं, आत्म-कथन को प्रकट करने वाली और स्नेह-सिक्त है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग कोमल आसावरी

मुक्त आलाप

(१) सा, रि॒ ऽ ध॒ ऽ सा, सा ऽ रि॒ नि॒ ऽ नि॒ ध॒ ऽ सा, ध॒ सा ऽ रि॒ नि॒ ध॒ सा, म प ध॒ ऽ नि॒ ध॒ ऽ सा,
सा ऽ ध॒ ध॒ प म प ध॒ सा, ध॒ ध॒ प म प ध॒ म प ध॒ नि॒ ध॒ सा, रि॒ नि॒ ध॒ म प ध॒
सा, रि॒ नि॒ ध॒ म ऽ म प ध॒ नि॒ ध॒ म प ध॒ सा।

(२) सा ऽ रि॒ नि॒ ध॒ सा, सा ऽ सा रि॒ नि॒ ध॒ सा, म प ऽ प ध॒ ध॒ साऽ
सा रि॒ नि॒ ध॒ सा, सा ऽ नि॒ रि॒ ऽ नि॒ ऽ नि॒ ध॒ सा, प प म प नि॒ नि॒ ध॒ ऽ सा सा नि॒
सा ग॒ ग॒ रि॒ ऽ रि॒ नि॒ ऽ नि॒ ध॒ ऽ सा, सा ऽ नि॒ नि॒ ऽ ध॒ ध॒ ऽ म म प ध॒ सा, म ऽ प ध॒ ऽ प ऽ ध॒ नि॒ ऽ
नि॒ ध॒ सा, म प प ध॒ ध॒ नि॒ ऽ नि॒ ध॒ ऽ सा, प म ध॒ नि॒ नि॒ ध॒ ऽ म प ध॒ सा सानि॒ ऽ नि॒ ध॒ ऽ रि॒
नि॒ ध॒ ऽ सा, म प ध॒ म नि॒ ऽ नि॒ ध॒ ऽ म प ध॒ सा सानि॒ ऽ नि॒ ध॒, ध॒ सारि॒ग॒ ग॒ रि॒ ऽ रि॒ नि॒ ऽ नि॒ ध॒ ऽ सा,
म प ऽ म प ध॒ ऽ प ध॒ नि॒ नि॒ ध॒ ऽ ध॒ सा ऽ नि॒ सारि॒ऽसा रि॒ग॒ग॒ रि॒ ऽ रि॒ नि॒ ऽ नि॒ ध॒ ऽ सा।

(३) सा ऽ नि॒ रि॒, सानि॒ रि, नि॒ ध॒ रि॒, रि॒नि॒ध॒ रि॒,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग़ ग़ ग़ ग़ ग़ ग़ सासा ग़ ध़ध़ नि़नि़ ग़
सारि़ ऽ नि़रि ऽ ध़रि ऽ, रि़सारि़ ऽ रि़नि़रि़ ऽ रि़नि़ध़रि़ ऽ, रि़रि़सानि़रि़ ऽ नि़नि़ध़ सासानि़रि़ ऽ

सासा नि़नि़ नि़ग़ सा नि़नि़ ध़ध़ ग़ नि़ ध़
रि़रि़सा सासानि़ रि़ ऽ रि़रि़सा सासानि़ नि़नि़ध़रि़ ∿∿ ध़ ∿∿ सा ।

ग़ नि़ ग़ नि़ ध़ ग़ सासा ग़
(४) साऽसारि़ ऽ, ध़ सा ऽ सा रि़, म़ प़ ध़ ऽ सा ऽ सारि़, रि़रि़सानि़सा ऽ सारि़, ध़ ध़ प़मप़ ऽ

नि़ सासा ग़ ध़
पध़ ऽ रि़रि़सानि़सा ऽ सारि़, नि़ध़ ∿∿ सा ।

ग़ म ग़ ग़ सा सा
(५) सा रि़ ∿∿ म, सा ऽ रि़ ∿∿ म, सा ऽ सारि़ ∿∿ म, म ऽ मग़ ऽ ग़रि़ ऽ म, म ऽ मग़ग़ ऽ

सा ध़ सा
ग़रि़रि़ ऽ म, सारि़—रिम ऽ मग़ग़ ऽ ग़रि़रि़ ऽ म, ध़सा—सारि़—रिम़ ऽ मग़ग़ ऽ ग़रि़रि़ ऽ म, मग़ ऽ ग़रि़ ऽ सा ।

म म प म
(६) सारि़मपध़ ऽ म, सारि़मप ऽ प ध़ ऽ म, म प ध़ प ध़ ऽ म, म प प ध़ ऽ म, ध़ध़ मप ऽ प ध़ ऽ म, सारि़

सा रि़ म प प म मम रि़
रि़म मप पध़ ऽ म, सारि़रि़—सारि़म ऽ रि़मम—रि़मप ऽ मपप—मपध़ ऽ म, ध़ध़प—प ऽ नि़ध़ध़ ऽ म, पपम—म ऽ

म
ध़ध़प—प ऽ नि़ध़ध़ ऽ म, रि़सासा ऽ ग़रि़रि़ ऽ पमम ऽ ध़पप ऽ नि़ध़ध़ ऽ म, रि़सासा—गरि़रि़ ऽ ग़रि़रि़—पमम ऽ

साम ग़
पमम—ध़पप ऽ ध़पप—नि़ध़ध़ ऽ म, रि़सासा ऽ ग़रि़रि़ ऽ प म म ऽ ध़ प प ऽ नि़ ध़ ध़ ऽ म, म ग़ रि़ ऽ सा ।

ग़ रि़ ग़ग़ ग़ मम ग़ग़ ग़ पप
(७) सारि़म, म ऽ म ग़ ऽ ग़ रि़ ऽ म, सारि़ ऽ सा रि़ म, म म ग़ रि़ ऽ म, प प म म म ग़ रि़ ऽ म, ध़ ध़ प

मम ग़ग़ ग़ म सा रि़ म प
प प म म म ग़ रि़ ऽ म, मग़रि़ ऽ सा । सा ऽ रि़ म ऽ प ध़ ऽ ध़ म ऽ म ग़ ऽ ग़ रि़ ऽ म, सा रि़ म प ध़ ऽ ध़ म ऽ

म ग़ ऽ ग़ रि़ ऽ म, म प ध़ ऽ नि़ ध़ ऽ म ग़ रि़ ऽ सा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा ऋि म नि़ नि़ नि़ नि़
(८) सा ऋि म प ध़ ∿∿ ∿∿, ध़ म म ध़ ∿∿ ∿∿, प ध़ म ध़ ∿∿ ∿∿, ध़ प ध़ म ध़

नि़ नि़ नि़
∿∿ ∿∿, म प ध़ म ध़ ∿∿, ऋि म ऽ म प ऽ म ध़ ∿∿ ∿∿, म प ध़ नि़ ध ∿∿, नि़ ध ऽ ध़ म ऽ

प नि़ ध़ ∿∿, म प ध़ ऽ म ग़ ऋि ऽ सा।

नि़ म प ध़ नि़ सा ऋि म नि़ नि़ ध़ ध़ नि़
(९) साऋि म प ध़ ऽ सां, सा ऋि म प ध़ सां, सा ऋि म प ध़ ऽ सां, सां ऽ ध़ ऽ ऽ सां, म प ध़ ऽ सां, ध़ प ध़

नि़ म प नि़
म प ध़ ऽ सां, ध़ ध र—प ऽ नि़ नि ध—ध़ ऽ सां, ध़ म ऽ ध़ प ऽ सां, ऋि म प ध़ ∿∿ सां, सां ऽ नि़ ऋि ऽनि़ ध़ऽप,

नि़ ध़ ऽ प, सां ध़ ऽ प, म प ध़ नि़ ध़ ∿∿ म ग़ ऋि ∿∿ ∿∿ सा।

नि़ गं॑ नि़ गं॑ म प
(१०) सा ऋि म प ध़ ∿∿ सां, ध़ सां ऽ सां ऋिं ऽ ऋिं ऋिं सां—सां ऽ नि़ ऋि, ध़ ध़ प—प नि़ नि़ ध़—ध़ ऽ

नि़ गं॑ म प ध़ गं॑ नि़ प ध़ सां
ररिं सां—सा ऽ नि़ ऋिं, मा पध़ ध़सां सांऋिं ∿∿ ध़ ऽ प, पध़ धसां सांऋिं ऋिं मं ऽ मं गं ऽ गंऋिंऽऋिं नि़ ऽ नि़ ध़ ऽ

नि़ ध ध़ नि़
प, ध़ मधप सां ऽ ध़ ऽ प, मे प ध़ ऽ म ग़—ऋि ऽ सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुक्त तानें

सारि्मप धध्मग्रि्सा, रि्मपध् मपध्ध् मग्रि्सा, मपध् मपध् मपध्ध् मग्रि्सा, रि्मपध् मपमपध्ध् मग्रि्सा, सारि्रि् रि्मम मपप पध्ध् मग्रि्सा, ग्रि्रि् पमम ध्पप पध्ध् मग्रि्सा, सारि्मरि् रि्मपम मपध्ध् मग्रि्सा, सारि्सारि् रि्मरि्म मपमप पध्पध् मग्रि्सा, सारि्सा सारि्सा रि्मरि् रि्मरि् मपम मपम मपध्ध् मग्रि्सा। सारि्मप ध्ध्मप नि्नि्ध्ध् मग्रि्सा, मपध् मऽपमप निनि्ध्ध् मग्रि्सा, नि्ध्ध नि्ध्ध नि्नि्ध्ध् मग्रि्सा, रि्सासा ग्रि्रि् पमम ध्पप नि्ध्ध ध्मम ध्पनि्नि्ध्ध् मग्रि्सानि्सा। सारि् रि्म मप पध् ध्नि ध्ध् मग्रि्सा, सारि रि्सा रि्ममरि् मपपम पनि्ध्ध् ध्निधध् मग्रि्सा। सारि्सा सारि्सा सा.रि्सारि्, रि्मरि् रि्मरि् रि्मरि्म, मपम मपम मपमप, पध्प पध्म पध्पध्, मपमप पनि्ध्ध् मग्रि्सा। सारि्मप ध्सांसांनि्ध्ध् मग्रि्सा, सांनि्ध्ध मग्रि्सा, पम ध्प नि्ध् सांसा.ऽनि् ध्पमग्रि्सा, रि्मपध् मपध्सां सांनिध्ध् मग्रि्सा, रि्मपध्मप मपध्सां सांनि्ध्ध् मग्रि्सा। सारि्मप नि्नि्ध्प मपध्सां सांनि्ध्ध मग्रि्सा सारि्मम रि्मपप मपध्ध् पध्सांसां पध्मप सांसांऽनि् ध्ध्मग् रि्सानि्सा। रि्साग्रि् पमध्प ध्मध्प सांनि्सांसां रिं'रिं'नि्ध् मग्रि्सा, ध्ध्सांसां रिं'रिं'नि्ध् मग्रि्सा, ममपप ध्ध्सांसां रिं'रिं'नि्ध् मग्रि्सा, सासा रि्रि् मम पप ध्ध् सांसां रिं'रिं'नि्ध् मग्रि्सा। ध्ध्ध् सांसांसां रिं'रिं' नि्ध्मगरि्सा, ममम पपप ध्ध्ध सांसांसां रिं'रिं' नि्ध्मग्रि्सा, सासासा रि्रि्रि् ममम पपप ध्ध्ध् सांसांसां रिं'रिं' नि्ध्मग्रि्सा। सासासा रि्रि्रि्, रि्रि्रि् ममम, ममम पपप, पपप ध्ध्ध्, ध्ध्ध् सांसांसां, सांसांसां रिं'रिं'रिं' नि्धमग्रि्सा, सारि्मप ध्सांरिं'रिं' नि्ध्मगरि्सा। ध्ऽसांऽऽसां रिं'रिं' नि्ध्मग्रि्सा रि्ऽमऽऽम ध्ऽसांऽऽसां रिं'रिं' नि्ध्मग्रि्सा, रि्मपध् सांरिं' रिं'नि्ध्म मगरि्सा। सारि्सारि् रि्मरि्म मपमप पध्पध् ध्सांध्सां सांरिं'सांरिं' रिं'रिं'नि्ध् मग्रि्सा। सारि्सारि् रि्मरि्म, रि्मरि्म मपमप, मपमप पध्पध् ध्सांध्सां सांरिं'सांरिं' रिं'रिं'नि्ध् मग्रि्सा। सारि्मप ध्ध्मग्रि्सा, रि्मपध नि्नि्ध्ध् मग्रि्सा, मपध्सां रिं'रिं' नि्ध् मग्रि्सा, सारि् मपध्सां रिं'मंमंग् रिं'रिं'नि्ध् मग्रि्सा, मंमंगं' गं'गं'रिं' रिं'रिं'नि् नि्नि्ध ध्ध्मग्रि्सानि्सा। सारि् रि्म मप पध् ध्सां सांरिं' रिं'मं मंगं' गं'रिं' रिं'नि् नि्ध ध्म मग् ग्रि् रि्सानि्सा। सारि् रि्म मग् ग्रि् रि्सा, रि्म मप पम मग् गरि्, मप पध् ध्सां सांनि् निध् ध्म, ध्सां सांरिं' रिं'मं मंगं' गं'रिं' रिं'नि् नि्ध् ध्म मग् ग्रि् रि्सा नि्सा। सारि्मप ध्सां सांरिं'मंपं ध्'ध्' मंगं'रिं'सां नि्नि्ध्ध मग्रि्सा। साध्ऽध् मग्रि्सा, ध्रिं'ऽरिं' नि्ध्मग्रि्सा, रिं'मंऽमं गं'रिं'नि्ध् मग्रि्सा नि्सा। रि्मऽम मध्ऽध् ध्सांऽसां रिं'मंऽमं रिं'मंमंगं' रिं'नि्ध्म मग्रि्सा। सारि्मरि् रि्मपम मपध्म पध्सांध् ध्सांरिं'सां सांरिं'गं'रिं' गं'रिं'नि्ध् मग्रि्सा। रि्रि्रि् ममम ग्रि्, ममम नि्नि्नि् ध्म, ध्ध्ध् रिं'रिं'रिं' निं'ध्, रिं'रिं'रिं' मंमंमं गं'रिं', गं'रिं' नि्ध् मग्रि्सा। सांसांऽरिं' नि्ध्मग्रि्सा, ध्रिं'ऽरिं' नि्ध्मग्रि्सा, रिं'मंऽमं गं'रिं'नि्ध् मग्रि्सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग कोमल आसावरी

विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—एरी बीर बामनवा सगुन विचारो
कब घर आवे पिया मोरा री।

अन्तरा—काग उड़ावत मोरी बैंया थक गईं री
नैना झरत सावन ज्यों नीर।
तन की बिथा मोरे भई रे पंछी आहें लगत ज्यों तीर री॥

स्थाई

०		९		११	
				प-ऽधू म--पध सां	सां नि॒ ध॒ रे॒ ध॒ म प
				एऽऽ• •ऽऽ• री •	• बी • र
×		०		५	
मनि॒ नि॒ नि॒ ध॒ – ध॒ ध॒	ध॒ प प म – म म	ग॒–मग॒–रे॒–ग॒रे॒–	सा – म प	नि॒ नि॒ नि॒ध॒ – ध॒ ध॒	म प – प ध॒नि॒– –
वा ऽ • •	ऽ • • •	•ऽ •• ऽ•ऽ ••	• ऽ म न	वा• ऽ • •	• ऽ • • • ऽ ऽ
०		९		११	
नि॒ नि॒ नि॒ध॒ – ध॒ ध॒	प प धम – म म	मग॒ – रे॒ ग॒रे॒ - -	सा – – –	– सा – – रे॒ रे॒ म	– प धम प
• • ऽ • •	• • ऽ • •	•• ऽ • ••ऽ ऽ	• ऽ ऽ ऽ	ऽ स ऽ ऽ • गु •	ऽ न • • बि
×		०		५	
नि॒ नि॒ नि॒ध॒ – ध॒ ध॒	प – प ध॒नि॒ – –	नि॒ नि॒ नि॒ध॒ – ध॒ ध॒	ध॒ म म म	म प – – –	ध॒पपम- प--ध ध॒प- -
चा • ऽ • •	• ऽ • • • ऽ ऽ	रो • • •	• • • क	व ऽ ऽ ऽ	•• ••ऽ •ऽऽ• घ•ऽऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

०		९		११	
म म		सा ग॒ ग॒		नि॒ सां	सां नि॒
म ग॒ ग॒ ग॒	रि॒ - सा सा --नि॒	ग॒ रि॒ रि॒ रि॒ -- सा	ग॒ रि॒ रि॒ नि॒	सा - सा -	रि॒ ध॒ म प
र ० ० ०	आ ऽ वे पि ऽ ऽ ०	या ० ० ० ० ऽऽ ०	मो ० ० ०	वा ऽ री ऽ	० बी ० र

अंतरा

०		९		११	
नि	नि॒ नि॒	नि	सं नि॒		
सा -- साध॒	ध॒ - ध॒ ध॒	ध॒ - - - प	पनि ध॒ ध॒ ध॒	प - - -	पप-- -पध॒-- ध॒प
का ऽ ऽ ० ०	० ऽ ग उ	डा ऽ ऽ ऽ ०	व ० ० ० ०	त ऽ ऽ ऽ	ऽऽ ऽ ००ऽ ऽ री०

×		०		५	
नि॒ नि॒					
नि॒ध॒ - ध॒ ध॒	प -- प -- ध॒	ध॒ नि॒	--- ध॒प	मग॒ रि॒ म -	म ---
नै० ऽ ० ०	यां ऽ ऽ थ ऽ ऽ ०	क ० ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ग०	ईं० ० ० ऽ	री ऽ ऽ ऽ

०		९		११	
	प प प	म म	ग॒ ग॒		
ध॒म - -	म - म म	म ग॒ ग॒ ग॒	ग॒ रि॒ रि॒ रि॒	सा ---	नि॒सा ---
नै० ऽ ऽ	ना ऽ, ० ०	झ ०	र ० ० ०	त ऽ ऽ ऽ	० ० ऽ ऽ ऽ

×		०		५	
			ध॒ म		
सा - रि॒ -	रि॒ म --	प -- ध॒नि॒ --	नि॒ नि॒ध॒ --ध॒ ध॒म --	म मग॒ --ग॒	सा ---
सा ऽ थ ऽ	न ऽ ऽ	ज्यों ऽ ऽ ० । ० ऽ ऽ ऽ	नी ०० ऽऽ ० ००ऽऽ	० ००ऽऽ ०	र ऽ ऽ ऽ

०		६		११	
	नि॒ नि॒	ध॒			
म - प -	नि॒ ध॒ ध॒ ध॒	सां - - -	नि॒सां - सं गं रिं नि॒	नि॒ सां - -	नि॒सां ---
त ऽ नं ऽ	की ० ० वि	था ऽ ऽ ऽ	० ० ऽ मो ० ० ऽ	रे ० ऽ ऽ	० ० ऽ ऽ ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×		०		५		
नि़ध़् नि़ध़्	सां- -रिं॒गं॒- -	रिं॒ गं॒गं॒रिं- -रिं॒रिं॒नि॒- -	नि़ नि़ध़् - - प -	ध़् - म -	- - पम प
भ ० ई ०	रे ऽ ऽ ० ० ऽ ऽ	पं ० ० ऽ ऽ ० ० ० ऽऽ	छी ० ० ऽ ऽ ० ऽ	आ ऽ हैं ऽ	ऽ ऽ ल० ग

०		६		११		
नि़ नि़ नि़ध़् ध़् ध़्	सां - - - नि़	नि़ रिं - -	रिं नि़ध़्मग़रि़ - -	सा - सां -	रिं नि़ ध़्मप
त ० ० ०	ज्यों ऽ ऽ ऽ ०	० ० ऽ ऽ	ती० ० ० ० ० ऽऽ	र ऽ री ऽ	० बी ० ०र

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग कोमल आसावरी

त्रिताल

गीत

स्थायी—बढ़ैया, लावो लावो रे, आज सुगढ़ घड़ पलना।

अन्तरा—रतन जतन सों जटित हिंडोलना।
हलरावत जसोदा नन्द की ललना॥

स्थायी

×				५				०				१३			
											प	पध्	म	ध् प	सां
											ब	ढै०	०	या	०
ध्	–	प	ध् प	ध्	म	पध्	नि्	ध्	–	म	ग् रि	–	रि	सा	–
ला	ऽ	वो	ला	०	वो	रे०	०	ला	ऽ	वो	ला	ऽ	वो	रे	ऽ
सा	सां	सां	सां	सांरिं	नि्	सां	सां रिं	नि् ध्	नि् ध्	प	प	पध्	म	ध् प	सां
आ	०	ज	सु	ग०	ड़	घ	ड़	प	ल	ना	ब	ढै०	०	या	०

अंतरा

×				५				०				१३			
								म	म	प	प	नि्ध्	ध्	ध्	म
								र	त	न	ज	त०	न	सों	०
प	ध्	सां	सां	सांरिं	नि्	सां	–	–	मम	–प	–प	नि्ध्	ध्	ध	म
ज	टि	त	हिं	डो०	ल	ना	ऽ	ऽ	रत	ऽन	ऽज	त०	न	सों	०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
										गं					
–	पधृ	–सां	–सां	सांरें	नि	सां	–	–	सांसां	–रें	गं	रें	रें	सां	सां
ऽ	जटि	ऽत	ऽहिं	डो•	ल	ना	ऽ	ऽ	हल	ऽरा	•	व	त	ब	सु
			सां			निरें		नि	नि						
सां	रेंनि	–	नि	सां	सांनि	सां	रेंनि	धृ	धृ	प					
दा	••	ऽ	नं	•	द•	की	••	ल	ल	ना					

मुखड़े के प्रकार

×			५				०				१३				
			प--धृ	नि	धृ	–	म--प	धृ	प	–ब	पधृ	म	धृ प	सां	
			लाऽऽ०		वो	ऽ	लाऽऽ०	•	वो	ऽब	दै•	•	या	•	
			–	धृप	धृम	प	–	धृप	धृम	प	–	–प	धृम	पसां	
			ऽ	ला•	••	वो	ऽ	ला•	••	वो	ऽ	ऽब	दै•	या•	
			सारे	मप	धृ	–	मप	धृसां	रें	–प	पधृ	म	धृ प	सां	
			ला०	••	वो	ऽ	ला०	••	वो	ऽब	दै•	•	या	•	
			सारे	रेम	मप	पधृ	–	मप	पधृ	धृसां	सांरें	–प	धृम	पसां	
			ला•	••	वो•	••	ऽ	ला•	••	••	••	ऽब	दै•	या•	
			रेंरें	रें,नि	निनि,	धृधृ	धृ,म	मम	गगृ	रेरे	सासा	–प	धृम	पसां	
			ला•	•,वो	••	ला•	•वो	••	ला•	वो•	••	ऽब	दै•	या•	
			मप	धृसां	सांगं	गंरें	निनि	निधृ	धृम	मगृ	गरे	सा,प	धृम	पसां	
			ला•	••	••	वो•	••	ला•	••	वो•	••	•,ब	दै•	या•	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×			५				०				१३			
			सारि॒	रि॒म	-	मप	पध॒	-	पध॒	ध॒सां	-	-प	ध॒म	पसां
			ला॰	बो॰	ऽ	ला॰	बो॰	ऽ	ला॰	बो॰	ऽ	ऽव	दै॰	या॰

तानें

	×			५				०				१३			
१)								सारि॒	मप	ध॒ध॒	मग॒	रि॒सा	-व	दै	या
२)				सारि॒	मप	ध॒ध॒	मग॒	रि॒सा,	ध॒ध॒	मग॒	रि॒सा	प ध॒म	-प	ध॒म	पसां
												हो॰	ऽव	दै॰	या
३)				ध॒ध॒	मग	रि॒सा,	ध॒ध॒	मग॒	रि॒सा,	ध॒ध॒	मग॒	रि॒सा	ऽव	दै	या
४)				सारि॒	मप	ध॒ध॒	मग॒	रि॒सा	ध॒ध॒	-ध॒	मग॒	रि॒सा	ऽव	"	"
५)				सासा	सा,रि॒	रि॒रि॒	मम	म,प	पप,	ध॒ध॒	मग॒	रि॒सा	"	"	"
६)				सारि॒	रि॒सा,	साम	मरि॒,	रि॒प	पम,	ध॒ध॒	मग॒	रि॒सा	"	"	"
७)				सारि॒	सारि॒	रि॒म	रि॒म	मप	मप	पध॒	पध॒	ध॒म	"	"	"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	×				५				०				१३			
८)					साम	मरि्	– रि्	रि्प	पम	– म	मध्	धृप	– प	ऽव	दै	या
६)					सारि्	मप	धसां	रिं'रिं'	निध्	मग्	रि्सा	प	सां	ऽव	,,	,,
१०)					सारि्	मरि्	रि्म	पम	मप	धृप	पध्	पम	पध्	पव	,,	,,
११)					धनि्	निध्	नि्नि्	धृम	धृम	मग्	गृरि्	रि्सा	रिंनि्	सा व	,,	,,
१२)					सारि्	मप	नि्नि्	ध्,नि्	निध्	नि्नि्	धृधृ	मग्	रि्सा	ऽव	,,	,,
१३)					सासा	सा रि्,	रि्रि्,	मम	म, प	पप,	धृध्,	ध्, सां	सांसां,	रिं'रिं'	नि्नि्	धृध
	मग्	रि्सा,	सासा	सा, प	पप,	सां	सासा	सा,प	पप,	सां	सासा	सा, प	पप	सां, व	दै	या
१४)					सारि्	म, सा	मम	रि् –	–	रि्म	प, रि्	पप	म –	–	मप	धृम
	नि्नि्	धृध्	मग्	रि्सा,	नि्नि्	धृध	मग्	रि्सा,	नि्नि	धृधृ	मग्	रि्सा,	धृम	ऽव	दै	या
१५)	–	–	सारि्	रि्म	मप	पध्	धृम	मग्	गृरि्	रि्सा	सारि्	रि्म	मप	पध्	धृसां	सांनि्
	नि्ध	धृम	मग्	गृरि्	रि्सा	सारि्	रि्म	मप	पध्	धसां	सांरिं'	रिं'मं	मंगं'	गं'रिं'	रिं'नि	निध्
	धृम	मग्	गृरि्	रि्सा	सारि्	रि्म	मप	पध्	धृसां	–	धृसां	–	धृसां	– व	दै	था
१६)					सारि्	मरि्	रि्म	पम	मप	धृप	पध्	सांध्	धृसां	रिं'सां	सांरिं'	गं'रिं'
	नि्ध्	मग्	रि्सा	सांरिं'	गं'रिं'	नि्ध्	मग्	रि्सा	सांरिं'	गं'रिं'	नि्ध	मग्	रि्सा	– व	दै	या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

	×				५				०				१३			
१७)					सारि्	रि्, रि्	मम	मप	प, प	ध्ध्	ध्सां	सां, सां	रिं'रिं'	रिं'ग्'	ग्',ग्'	रिं'रिं'
	रिं'नि्	नि्,नि्	ध्ध्	धम	म, म	ग्ग्	ग्रि्	रि्,रि्	सासा	सारि्	रि्,रि्	म म	मप	प, प	ध्ध्	सां
										व ०	०, दै	० ०	या	०, ०	० ०	०
	–	सारि्	रि्, रि्	मम	मप	प, प	ध्ध्	सां	–	सारि्	रि्, रि्	मम	मप	प, प	ध्ध्	सां
	ऽ	व ०	० दै	० ०	या ०	०, ०	० ०	०	ऽ	व ०	०, दै	० ०	या०	०, ०	० ०	०
१८)				सारि्	मप	ध्	–	–	ध्ध	मग्	रि्सा	रि्म	पध्	सां	–	–
	रिं'रिं'	नि्ध्	मग्	रि्सा	मप	ध्सां	रिं'	–	–	गं्रिं'	नि्ध्	मग्	रि्सा	– ब	दै	या
१९)					सारि्	मप	ध् –	– ध	–	ध्	–	ध्ध्	मग्	रि्सा	रि्म	पध्
	सां	– सां	–	सां	–	रिं'रिं'	नि्ध्	मग्	रि्सा	मप	ध्सां	रिं'	- रिं'	–	रिं'	–
	रिं'नि्	ध्म	मग्	रि्सा	रिं'नि्	ध्म	मग्	रि्सा	रिं'नि्	ध्म	मग्	रि्सा	–	- ब	दै	या

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग देशी (देशी तोड़ी)

आरोह-अवरोह—सा रिंमप निं्सां, पधृप रिग् रि ऽ सा।

जाति—औडव-वक्र सम्पूर्ण।

ग्रह—ऋषभ।

अंश—पूर्वाङ्ग में गांधार; उत्तरांग में धैवत।

न्यास—पञ्चम।

अपन्यास—गान्धार।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य-अंग—पधृप रिग् रि ऽ सा, अथवा रिग् ऽ सा रि ऽ नि् सा। (सा, नि् ऊपर)

समय—प्रातःकाल द्वितीय प्रहर।

रस-भाव—शृंगार, मधुर-भाव।

विशेष-विवरण

देशी एक बहुत प्रचलित है और मधुर राग है। इसे देशी या देशी तोड़ी ऐसे भिन्न-भिन्न नामों से पहिचानते हैं। प्रचार में इसके कई रूप पाये जाते हैं। एक रूप, जिसमें 'गृधृनि्' कोमल लगते हैं; दूसरा रूप जिसमें 'ग् नि्' कोमल और दो धैवत लगते हैं और तीसरा रूप जिसमें 'ग् नि्' कोमल और 'ध' शुद्ध लगता है। पहले रूप के आरोह में सारंग और अवरोह में आसावरी की छाया का आभास होता है। दूसरे रूप के आरोह में सारंग और अवरोह में काफ़ी तथा आसवारी की मिश्र छाया दिखाई देती है। और तीसरे रूप में आरोह में सारंग और अवरोह में काफ़ी की छाया दिखाई देती है। किन्तु इन तीनों ही रूपों में देशी का अलग व्यक्तित्व दिखाने के लिये जो अंग समान रूप से पाया जाता है, वह यों है—

सा रि मप नि् सां, पधृ प रि् ग् ऽ रिऽसा

'पधप' करते समय धैवत शुद्ध बरतें या कोमल, यह ऊपर बताये हुए अंगों पर निर्भर है। फिर भी अन्य रागों से बचने के लिये और 'देशी' की स्थापना के लिए 'पधप' या 'पधृप रिग् ऽ रि सा' यह अंग अनिवार्य है, बल्कि वही इस राग की जान है। कुछ लोग 'पधप रिग् सारि नि् सा', भी करते हैं। किन्तु 'सा रि नि् सा' वाला अंग अनिवार्य नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्णाटक संगीत में जो राग शुद्ध देशी के नाम से प्रचलित है, उसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—सा रि म प ध् नि् सां, सां नि् ध् प म ग् रि सा। स्वर-दृष्टि से यह आसावरी अंग के हमारे देशी के सन्निकट है, किन्तु हमारे देशी में 'प ध् प रि ग' यह जो अनिवार्य अंग है, वह इसमें नहीं है।

आजकल तो यह राग देशी के नाम से ही अधिकतर प्रचलित है। देशी-तोड़ी नाम का व्यवहार अब कहीं कहीं अत्यल्प मात्रा में रह गया है। गुर्जरी तोड़ी, पंचम की तोड़ी (मियाँ की तोड़ी), बिलासखानी तोड़ी, भूपाल तोड़ी, लक्ष्मी तोड़ी, आदि जो तोड़ी के प्रकार हैं, उन सब में 'रि् ग् रि् सा' यह स्वर-विधान समान रूप से पाया जाता है। किन्तु इस देशी-तोड़ी में 'रि् ग् रि् सा' के बजाय शुद्ध ऋषभ के साथ "रि ग् रि सा" पाया जाता है। इसलिए यह कह सकते हैं कि जैसे भूपाल तोड़ी में सा रि् ग् प ध् सां, प ध् प रि् ग् रि् सा किया जाता है, उसी का जवाब देशी में अन्य स्वरों में यों है :—सा रि म प नि् सां, प ध् प रि ग् रि ऽ सा। और शायद इसलिए देशी के साथ तोड़ी नाम का प्रयोग किया होगा।

इसका आरोहावरोह यों है—सा रि म प नि् सां, प ध् प रि ग् रि ऽ सा। तान लेते समय नि् सा रि म प नि् सां, यों भी जा सकते हैं। प ध् प रि ग् रि सा, यह रागवाची स्वर क्रिया है।

इसकी आलापचारी 'सा' दिखाने के बाद 'रि' से आरम्भ होती है। यथा :—रि म प, रि म प ध म प, रि म प नि् सां, रिं ग्ं सां रिं नि् सां, प ध म प, रि ग् सा रि नि् सा। तानें भी बहुधा ऋषभ से ही आरम्भ होती हैं; यद्यपि कभी-कभी निषाद से भी उठती हैं। तब भी ऋषभ इसका ग्रह है, पूर्वांग में गान्धार, और उत्तरांग में धैवत अंश-स्वर है। पञ्चम न्यास है, गान्धार पर अपन्यास होता है। यथा :—प ऽ रि ग्, रि म प रि ग्, प ध् प रि ग्, प ध म प रि ग्, रि म प ध् म प रि ग्, नि् सा रि म प ध् म प रि ग्—इत्यादि। भूल से भी ऋषभ पर न्यास न किया जाय। अन्यथा तत्काल वहाँ काफ़ी का दर्शन होगा।

यह राग प्रातर्गेय है : कुछ गुणीजन इसे काफ़ी का प्रातर्गेय रूप मानते हैं। यह सर्वप्रिय और तत्काल छा जानेवाला राग है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग देशी

मुक्त आलाप

रि नि़ प नि़ सा
(१) सा, नि़ ऽ सां ऽ प़, ध़ ऽ प़, ध़म़ ऽ ध़प़ ऽ सा ऽ नि़ सा ; सा ऽ रि रिसानि़ सा ऽ प़ ध़ ऽ प़,

प़ नि़ म़ प़ सा नि़ प़ म़ सा नि़
ध़ध़प़म़प़ सा ऽ नि़ सा —, रिसारि सा ऽ, ध़प़ध़ प़ ऽ सा ऽ नि़ सा, रि रि ऽ सानि़ रि सा ऽ ध़ ध़ ऽ प़म़ ध़प़ ऽ नि़ ऽ सा।

❀ सा नि़ ❀ सा नि़ नि़ सा ❀ सा
(२ रि ऽऽग़ रि सा, सारि ग़ ऽऽ रि ऽऽ ग़ रि सा, रिरिसा सा ऽ ग़ग़रि रि ऽ ग़ ऽ ऽ रि ऽ ऽ ग़ रि

नि़ म़ ध़ नि़ सा ❀ सा नि़
ऽ सा, ध़ध़प़ प़ ऽ सासानि़ नि़ ऽ रिरिसा सा ऽ ग़ग़रि रि ऽ ग़ ऽऽ रिऽऽग़ रि ऽ सा।

❀ सा सा सा ❀ सा
(३) सारिग़ऽऽ रिऽऽग़ रिरि ऽ सा, रिरिसानि़ सारि ग़ ऽऽ रिऽऽग़ रिरि ऽ सा, रिनि़ ऽ रिसा ऽ ग़रि ग़

❀ सा ❀ सा सा
ऽऽ रिऽऽग़ रिरि ऽ सा, सासानि़ प़नि़ रिरिसानि़ सा ग़ग़रिसारि ग़ऽऽ रिऽऽग़ रिरि ऽ सा, प़म़ध़प़ सानि़ रिसा ग़ रि

❀ सा सा रि नि़
ग़ ऽऽ रिऽऽग़ रि रि ऽ सा, सारिमप ग़ऽऽ रिऽऽग़ रिरि ऽ सा नि़ सा।

सा रि म म
(४) सा रि म प ग़ ऽऽ रिग़ ऽ सारि ऽ नि़ सा ऽ, रिससा मरिरि पमम धपप ग़ ऽ ऽ रिग़ ऽ सारिऽ

नि़ सा, ध़प़प़ सानि़नि़ रिसासा मरिरि पमम धपप ग ऽ ऽ रिग़ ऽ ऽ सारि ऽ ऽ नि़ सा।

❀ इस प्रकार के चिह्नित स्वरों का केवल छूने भर के लिए प्रयोग किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रि म प म रि ग् म प म म सा रि म
(५) सा रि म प ऽ पग् ऽ ऽ रिग्, सा रि म प ऽ ग् ऽ ऽ रिग्, सारि रिम मप ग् ऽ ऽ

सा प़ नि़ सा रि म म
रिग् ऽ ऽ, प़ सा सारिरिममर ग् ऽ ऽ रिग् ऽ ऽ, मरिरि ऽ पमम ऽ धपप ऽ ग् ऽ ऽ रिग् ऽऽ, सारिमरि ऽ

ध ध
रिमपम ऽ मपधप ऽ ग् ऽऽ रिग् ऽऽ, सारिमरि—रिमपम—मपधप ग् ऽऽ रिग् ऽ ऽ, सारिसा—रिमरि—

ध
मपमपधप ग् ऽ रिग् ऽ ऽ, रिमपध्मप ग् ऽ ऽ रिग् ऽ ऽ सारि ऽ नि़सा।

रि म प म म प म ❀ ❀ ❀
(६) सा रि म प ऽ ध्मप ग्, रि म प ऽऽ म ध्मप ग, प ऽ ऽ ध् म ऽ ऽ प ध्मप ग्,

म सा रि म
सा—रिमप प़ सा ऽ रिमप ऽ ध्मप ग्, पपम ध्ध्प ऽ मप ध्मप ग्, गग्रि—रि ऽ पपम—म ऽ ध्ध्प—प ऽ

नि़ सा रि म सा रि म प
ध्मप ग्, रिरिसा—सा ऽ ग्ग्रि—रि ऽ पपम—म ऽ ध्ध्प—प ऽ ध्मप ग्, सा रि म प ऽ रिग् ऽ

सारि ऽ नि़ सा ऽ।

प प
(७) सारिमप सांऽऽप पध्मप रिग् ऽ सारि ऽ नि़सा, रिसा मरि पम धप सांऽऽप पध्मप रिग् ऽ

प
सारि ऽ नि़सा, पमम धपप सांऽऽपध्प रिग्, मरिरि पमम धपप सांऽऽपध्प रिग्, रिसासा मरिरि पमम धपप सां ऽ ऽ पध्प

रिग् ऽ सारि ऽ नि़सा।

म प ध
(८) सा रि म प सां ऽ निसां, धम ऽ धप ऽ सां ऽ निसां, मरि ऽ पम ऽ धप ऽ सां निसां, रिसा

❀ ❀ ❀
मरि ऽ पम धप ऽ सां निसां, मपनिसांऽऽनिसां, धधपमप सां निसां, रिममरि ऽ रिपपम ऽ मधधप ऽ सां ऽ निसां,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारिमपसां ऽ नि़सां, सारिसा रिमरि मपम पधप सां ऽ नि़सां, सारिं नि़सां पधप, रिमपधमप रिग़ ऽ

सारि ऽ नि़ सा।

(९) सा रि म पसां ऽ नि़सां, सा रि म प सां ऽ नि़सां, रिसा मरि पम धप सां ऽ नि़सां,

रि़सा ऽ मरि ऽ पम ऽ धप ऽ सां ऽ नि़सां, रिसासा मरिरि पमम धपप सां ऽ नि़सं, सा ऽ सारि ऽ

रि ऽ रिम म ऽ मप ऽ प ऽ पसां ऽ नि़सां, सारिरिसा रिममरि मपपम पधधप सां ऽ निसां, रिरिसानि़सा

ममरिसारि पपमरिम धधपमप सां ऽ नि़सां, सां ऽ रिंग़ ऽ रिंरिं ऽ सां, रिंरिंसांनि़सां ऽ पधप रिग़ ऽ

सारि ऽ नि़ सा।

(१०) नि़ सारिमपनि़सांरिंग़ं ~~ रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां ऽ नि़सां, रिंरिंसांनि़सांरिंग़ं ~~

रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां ऽ नि़सां, सांसांनि़पनि़ ऽ रिंरिंसांनि़सां ऽ रिंग़ं ~~ रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां,

धधपमप ऽ सांसांनि़पनि़ ऽ रिंरिंसांनि़सां ऽ रिंग़ं ~~ रिं ऽऽ गं रिंरिं ऽ सां, सांनि़नि़ रिंसांसां ग़ं ~~

रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां, पमम धपप सांनि़नि़ रिंसांसां ग़ं ~~ रिं ऽऽ ग़ं रिंरिं ऽ सां, मरिरि पमम धपप

सांनि़नि़ रिंसांसां गं ~~ रिंऽऽगं रिंरिं ऽ सां, सारिरि रिमम मपप पसांसां सांरिंरिं गं ~~

* विहित स्वरों का धक्के के साथ उच्चारण करना है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रि'ऽऽगं रि'रि' ऽ सा, सारिसारि रिमरिम मपमप पसांनिसां सांरि'सांरि' गं ~ रि'ऽऽगं रि'रि' ऽ सां ऽ निसां,

सांरि'सांरि' ऽ निसांनिसां ऽ पधपध ऽ मपमप ऽ रिग़्रिग़् ऽ सारिसारि ऽ नि़सानि़सा ।

(१०) नि़सारिमपनिसांरि' ग़' ~ रि' मं' पं' ऽ धंमंपं गं ऽ, सां रि' मं पं ऽ धंमंपं गं,

सांरि'पं रि'गं ऽ सांरि' ऽ निसां, रि'मंपंधंमंपं रि'गं ऽ सां रि' ऽ सां, धम धप सांनि' रि'सां मंरि' पंमं धंपं

ऽ धंमंपं ग़' ऽऽ रि'ग़' ऽ रि' ऽ सां, धपधमप ऽ रि'सांरि'निसां ऽ ग़'रि'ग़'सांरि' ऽ धंपंधंमंपं ऽ ग़' ~ रि'ग़' ऽ

सांरि' ऽ निसां ऽ पध ऽ मप ऽ रिग़् ऽ सारि ऽ नि़सा ।

(११) सारिमपनिसां—रि'मंपंधंमंपं रि'ऽऽग़' रि' ऽ सां, रि'ऽऽग़' रि'रि' ऽ सां, निऽऽसां सांसांऽऽप,

पऽऽध धध ऽ म, मऽऽप पप ऽ रि, रिऽऽग़् रिरि ऽ सा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुक्त तानें

नि् सारिम पधमप रिग्रिसा, रिमपधमप रिग्रिसानि् सा, रिमरिम पधपधमप रिग्रिसानि् सा, रिसामरि पमधप पधमप रिग्रिसा । पधमप सारिनि् सा रिग्रिग् सारिनि् सा । रिमपध रिमरिम पधमप रिग्रिसा, रिमरि मपम पधपधमप रिग्रिसा, । सारिसारि रिमरिम पधपधमप रिग्रिसा । सारिसा सारिसा रिमरि रिमरि मपम मपम पधपधमप रिग्रिसा । रिसाऽसा मरिपमधपमप रिग्रिसा । नि् सारिम पधमप मधमप रिग्रिसा । सारिरिसा रिममरि मपपम पधमप रिग्रिसा । सारिरि सारिरि सारि, रिमम रिमम रिम, मपप मपप मप पधमप रिग्रिसा । पधमप सारिनि् सा पधमप रिग्रिसा । नि् सरिग्रिसा रिमपधमप रिग्रिसा, पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा । नि् सानि् सा सारिसारि रिमरिम मपमप पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा । सारिसारि नि् सानि् सा, रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा, मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा, पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा, निसांनिसां पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा । रिग्ग् रिग्ग् रिग्रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा, मपप मपप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा, पधध पधध पध मपप मपप मप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा । निसांसां निसांसां निसां पधध पधध पध, मपप मपप मप, रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा, नि् सारिमपसांनिसां पधमप रिग्रिसा । रिग्रिसा पधमप रिग्रिसा, रिं ग्ं रिं सां सांरिं निसां पधमप रिग्रिसा । नि् सारिमपसांऽसां पधमप रिग्रिसा, रिसासा मरिरि पमम धपप सांनि् रिंसांऽसां पधमप रिग्रिसानि् सा । रिसासा मरिरि पमम धपप धपधप रिग्रिसा, रिसासा मरिरि पमम धपप सांनिरिंसां पमधप रिग्रिसा । रिनि् रिसा रिग्रिसा, सानि् रिसा मरिपम रिग्रिसा, सानि् रिसा मरिपम धपमप रिग्रिसा, सानि् रिसा मरिपम धपसांनिरिंसांनिसां पधमप रिग्रिसा । रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा, मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा, पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा, निसांनिसां पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा, रिं ग्ं रिं ग्ं सांरिं सांरिं निसांनिसां पधपध मपमप रिग्रिग् सारिसारि नि् सानि् सा । साऽऽसा पऽऽप पधमप रिग्रिसा, साऽऽसा पऽऽप सांऽऽसां पधमप रिग्रिसा । सापऽप रिग्रिसा, परिंऽरिं सांरिं निसां पधमप रिग्रिसा, सापऽप पसांऽसां रिं ग्ंऽग्ं सांरिं निसां पधमप रिग्रिसा । धपप धपप धपधपमप रिग्रिसा, रिंसांसां रिंसांसां रिंसां रिंसांनिसां, धपप धपप धप धपमप रिग्रिसा, ग्ंरिंरिं ग्ंरिंरिं ग्ंरिं ग्ंरिंग्ंरिं सांरिं निसां, रिंसांसां रिंसांसां रिंसांरिंसां रिंसां सांरिं निसां पधमप, धपप धपप धपधप मप रिग्रिसा । रिग्रिसा पधमप रिं ग्ं रिं सां पधमप रिग्रिसा । रिऽऽम धपमप रिग्रिसा, पऽऽनि् रिंसांनिसां पधमप रिग्रिसा, रिंऽऽमं धंपंमंपं रिं ग्ं रिं सां सांरिं निसां पधमप रिग्रिसा, रिं ग्ं ग्ं रिं सांरिं रिंसां निसांसांनि् पधधप मपपम रिग्ग्रि सारिसारि नि् सानि् सा । नि् सारिमपनि् निसांरिंमं पंधंमंपं रिं ग्ं रिं सां पधमप रिग्रिसा । रिऽमऽ पऽऽम रिग्रिसा, पऽनिऽ रिंऽऽरिं सांरिं निसां पधमप रिग्रिसा, रिंऽमंऽ पंऽऽमं; रिं ग्ं रिं सां, पधमप रिग्रिसा । रिमरि रिमरि रिम रिम, मपम मपम मप मप, पधप पधप पधमप, निसांनि् निसांनि् निसां निसां, रिं ग्ं रिं रिं ग्ं रिं रिं ग्ं रिं ग्ं, सांरिं सांरिं निसां निसां पध पध मप मप रिग् रिग् सारि सारि नि् सा नि् सा । नि् सारिग्रि सारिमपम रिग्रि सारिसा, रिमपधप मपनिसांनि् पधप मपम, मपनिसांनि् पनिसांरिंसां निसांनि् पधप, पनिसांरिंसां निसांरिंग्ंरिं सांरिंसां निसांनि्, पधप मपम रिग्रि सारिसा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग देशी

ख्याल

विलम्बित एकताल

गीत

स्थायी—म्हारे डेरे आजो-आजो जी महाराजा जेठा,
म्हारे डेरे आ, हूँ तो थारी टेळ (टहल) करेग्या जेठा म्हारे......।

अन्तरा—अगली बात तुम् हम से न बोलो,
सदारंग बीन बजाजो जेठा म्हारे......॥

स्थाई

०		९		११	
				रि	
				प – ग् –	रिग् · रिसा
				म्हा ऽ रे ऽ	०० डेरे

×		०		५	
		सा	म		
सारि – रि नि्	नि् सा – –	ग् – – – रि रि ·	रिप म · · प प ·	– – मपनि्सां –	– प प ध्
आ ० ऽ · ० ०	जो ० ऽ ऽ	आ ऽ ऽ ऽ ० · ऽ	जो ० ० ऽ ऽ ० जो ०	ऽ ऽ ० ० ० ० ऽ	ऽ ० म हा

०		९		११	
		सा	म प	ध म	
प म प धमप –	म ग् रि ग्	रिरि – सा –	– सा रि म	प – ध मप ग् –	रि ग् रि सा
रा ० ० ० ० ० ऽ	जा ० ० ०	जे ० ऽ ठा ऽ	ऽ म्हा ० ०	० ऽ ० ०० रे ऽ	० ० डे रे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×		०		५	
			प		
सारि – रि नि़	नि़ सा – –	नि़सा – – –	– धम धप सांनि़	नि़ सां – – रिं	सांनि़ – सां नि़सां
आ ० ऽ ० ०	जो ० ऽ ऽ	० ० ऽ ऽ ऽ	ऽ हूँ० तो० था०	री ० ऽ ऽ०	टे० ऽ० ० ०

०		९		११	
			रि	म प	
प प ध़ प	म प – ध़ मप ग़	रि ग़ रिरि –	सा –, सा	रि म प – ध़ मप	ग – रिग़ रिसा
० ल ० क	रे ० ऽ ० ०० शा	० ० जे० ऽ	ठा ऽ ऽ, म्हा	० ० ०ऽ० ००	रे ऽ ०० डेरे

अन्तरा

×		०		५	
				प	
			– धप धम धप	सां – – –	नि़सां – – सांरिं
			ऽ अ० ग० ली०	वा ऽ ऽ ऽ	०० ऽ ऽ त०

०		६		११	
नि़ सां – –	नि़सां सां सां सां	सां रिं गं़ - - रिं गं़	रिं रिं - - - सां -	- - रिं रिं - सांनि़ - सां	नि़ सां प ध
तु ० ऽ ऽ	०० मू ह म	से ० ० ऽ ऽ ० ०	० ० ऽ ऽ ऽ ना ऽ	ऽऽ ० ० ऽ बो ० ऽ ०	० ० ० ०

×		०		५	
		सा			
प – – –	– म प – ध मप	ग़ – रि रि म	– – धम धप	नि़ – सां –	प – प ध़
लो ऽ ऽ ऽ	ऽ ० ० ऽ ० स०	दा ऽ० ० ०	ऽ ऽ रं० ग०	बी ऽ ० ऽ	० ऽ न ब

०		६		११	
				ध	
पमप – ध़ मप	म ग़ रि ग़	रिरि – सा –	- रिसासा - मरिरि - पमम -	धपप - मप ग़ -	रि ग़ – रि सा
जा ० ० ऽ ० ० ०	जो ० ० ०	जे ० ऽ ठा ऽ	ऽ म्हा ० ० ऽ ० ० ० ऽ ० ० ० ऽ	० ० ० ऽ ० ० रे ऽ	० ० ऽ डे

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

राग देसी

त्रिताल

गीत

स्थायी—साँची कहो तुम साँची, प्यारे रब नूँ भावे,
अब तुम लो मन में जाँची ॥

अन्तरा—साँच को साँच में, झूठ ना समावे ।
कहत अदारंग, साँच को नहीं आँची ॥

स्थायी

X				५				०				१३			
								ध	म	(ध)प	रि	ग॒	रि	सा	
								साँ	ची	क	हो	०	तु	म	
रि	–	–	नि॒	सा	–	रि	म	प	ध	म	(ध)प	रि	ग॒	रि	सा
साँ	ऽ	ऽ	•	ची	ऽ	ए	•	•	साँ	ची	क	हो	०	तु	म
रि	–	–	नि॒	सा	–	–	–	–	रि	(प)म	प	–	रि	म	प
साँ	ऽ	ऽ	•	ची	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	प्या	०	रे	ऽ	र	ब	नूँ
–	धप	मप	धप	ग॒	–	रि	नि॒	सा	निसा	–रि	म	प	–	(ध)म	प
ऽ	मा•	••	••	वे	ऽ	•	•	•	अब	ऽतु	म	लो		म	न
पनि॒	सां	प	ध	म	प	रि	म	प							
मैं•	•	जाँ	•	•	•	ची	•	•							

अन्तरा

×			५					०				१३			
			(ध) म	–	(नि॒) प	–	प	स	–	–	–	–	–	नि॒सां	सां
			साँ	ऽ	च	ऽ	को	सां	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	• •	च
सां	–	–	(सां) नि॒	प	सां	–	नि॒	रिं	–	–	सां	सांरिं	गं॒	(सां) रिं	–
में	ऽ	ऽ	झू	ठ	ना	ऽ	•	•	ऽ	ऽ	•	• •	•	स	ऽ
सां	–	–	रिं	नि॒सां	–	प	ध	प	–	–	ध	म	प	मप	धप
मा	ऽ	ऽ	•	• •	ऽ	•	•	वे	ऽ	ऽ	क	ह	त	अ •	• •
ग॒	–	(सा) रि	–	–	–	सा	–	सा	गं॒	–	(सां) रिं	–	सां	–	रिं
दा	ऽ	रं	ऽ	ऽ	ऽ	ग	ऽ	साँ	•	ऽ	च	ऽ	को	ऽ	न
नि॒	सां	प	ध	म	प	रि	म	प	ध	म	(ध) प	रि	ग॒	रि	सा
हीं	•	आँ	•	•	•	ची	•	•	साँ	ची	क	हो	•	तु	म

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानें

×			५				०				१२			
१)	नि़सा	रिम	पध़	मप	रिग़	सा २	नि़सा	–	सौं	ची	क	हो	०	तु	म
२) रिसा	सा, म	रिरि	पम	म, ध	मप	रिग़	सारि	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३) सारि	सा, रि	मरि	मप	म, प	ध़प	रिग़	सारि	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४) सारि	सा रिसा	रिम	रि मरि	मप	म पम	पध़	मप	रिग	सारि	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,
५) पध	प, प	धप	मप	म, म	पम	रिम	पध़	मप	रिग़	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
६) सारि	सारि	रिम	रिम	मप	मप	पध़	मप	रिग़	सारि	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,
७) सारि	रि मरि	रिम	प पम	मप	प ध़प	पध़	मप	रिग़	सारि	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,
८) रिसा	नि़सा	मरि	सरि	पम	रिम	पध़	मप	रिग़	सारि	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,
९) सारि	सा रि, रि	मम	रि मप	म प, प	ध़ध़	पध़	मप	रिग़	सारि	नि़सा	,,	,,	,,	,,	,,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
१०) गुगु्	रि,रि	रिसा	धध्	प,प	पम	धप	पम	रिग्	रिसा	नि्सा	,,	,,	,,	,,	,,
११) नि्सा	रिम	पनि्	सां	पध्	मप	रिग्	सारि	नि्सा	सां	ची	क	हो	•	तु	म
१२) सारि	मप	नि्सां	–	पध	मप	रिग्	सारि	नि्सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१३) रिसा	मरि	पम	ध।	सांनि्	रिंसां	–प	धप	रिग्	रिसा	नि्सा	,,	,,	,,	,,	,,
१४) सारि	मप	नि्सां	रिंगं	सांरिं	नि्सां	पध्	मप	रिग्	सारि	नि्सा	,,	,,	,,	,,	,,
१५) रिंगं	रिं,सां	रिंसां	नि्सां	पध्	प,म	पम	रिग्	रि,सा	रिसा	नि्सा	क	हो	•	तु	म
१६) नि्सा	रिग्	रिसा	रिम	पध	पम	पनि्	सांरिं	नि्सां	पध्	मप	रिग्	सारि	नि्सा	तु	म
१७) रिग्	रि,सा	रिसा	पध	प,म	पम	रिंगं	रिं,सां	रिंसां	पध्	प,म	पम	रिग्	रिसा	,,	,,
१८) रिम	पध्	मप	पनि्	सांरिं	नि्सां	रिंमं	पंधं्	मंपं	रिंगं	सांरिं	नि्सां	पध	मप	रिग्	सारि
नि्सा	क	हो	•	तु	म	क	हो	•	तु	म	क	हो	•	तु	म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
१९) सारि	सा,रि	मरि	मप	म, प	धप	नि॒सां	नि॒, सां	रिं'सां	रिं'मं	रिं', मं	पंमं	पंधं	पं, मं	पंमं	रिं'गं॒
रिं'सां	रिं'सां	नि॒'सां	नृ	धूप,	मप	मरि	गृरि,	सारि	सानि॒	सा –	क	हो	०	तु	म
२०) रिरि	सा रि	सासा	मम	रिम	रिरि	पप	मप	मम	धध।	पध	पप	सांसां	नि॒सां	नि॒नि॒	रिं'रिं'
सांरिं'	सांसां	ग॒'गं'	रिं'ग॒'	रिं'सां	रिं'रिं'	सांरिं'	नि॒	सांसां	नि॒सां	नि॒प	धध	पध	पम	पप	मप
मरि	ग॒ग॒	रिग॒	रिसा	नि॒॒सा	साँ	चीं	साँ	ची	साँ	ची	क	हो	०	तु	म
२१) रिं'गं'	रिं',सां	रिं'सां	सांरिं'	सां,नि॒	सांनि॒	नि॒सां	नि॒,प	धप	पध	प,म	पम	मप	म,रि	ग॒रि	सारि
सा,नि॒	सानि॒	सारि	मप	नि॒सां	सारि	मप	नि॒सां	सा:रि	मप	नि॒सां	क	हो	०	तु	म
२२) रिसा	सा,म	रिरि	पम	मध	पप	सांनि॒	नि॒,रिं'	सांसां	मंगं॒	ग॒',ग॒'	रिं'रिं'	रिं'सां	सां,ध	प प	पम
म,म	ग॒ ग॒	ग॒रि	रि,रि	सा सा	साँ	ची	क	हो	०	तु	म	तु	म	तु	म
२३) रिं'गं'	रिं'ग॒'	सांरिं'	सांरिं'	नि॒सां	नि॒सां	पध	पध	मप	मप	रिग॒	रिग॒	सारि	नि॒॒सा	तु	म

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
२४) रि'ग्'	रि'सां	सांरि'	सांनि्	नि्सां	नि्प	पध	पम	रिग्	रिसा	नि्सा	क	हो	•	तु	म
२५) नि्सां	नि्सां	--	पध	पध		मप	मर	–	रिग्	रिग्	–	सारि	सारि	–	नि्सा
नि्सा	साँ	ची	क	हो	•	•	क	ह	•	•	क	हो	•	तु	म
२६) रिग्	रि,सा	रिसा	मप	म,रि	ग्रि	सारि	सा,प	धप	मप	म,रि	ग्रि	सारि	सा,नि्	सांनि्	पध
प,म	पम	रग्	रि,सा	रिसा	रि'ग्'	रि',सां	रि'सां	नि्सां	नि्,प	धप	मप	म,रि	गरि	सा रि	सा–
रिम	पनि्	सां	रिम	पनि्	सां	रिम	पनि्	सां	साँ	ची	क	हो	०	तु	म
२७) सारि	सा,सा	रिसा	रिम	रि, रि	मरि	मर	म, म	पम	प ध	प, प	धप	नि्सां	नि्,नि्	सांनि्	सांरि'
सां,सां	रि'सां	रि'गं्	रि रि'	गं्रि'	सांरि'	सां,सां	रि'सां	नि्सां	नि्,नि्	सांनि्	प ध	प, प	वप	मप	म,म
पम	रिग्	रि,रि	ग्रि	सा रि	सा,सा	रिसा	नि्सा	–	साँ	ची	क	हो	•	तु	म
२८) सारि	सारि	रिम	रिम	मप	मप	पध	पध	मप	मप	पसां	नि्सां	पध	पध	मप	मप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

×				५				०				१३			
परि'	सारि'	नि्सां	नि्सां	पध	पध	मप	मप	पगं	रि'गं॒	सांरि'	सांरि'	नि्सां	नि्सां	पध	पध
मप	मप	रिग॒	रिग॒	रि	सारि	नि॒सा	नि॒सा	–	साँ	ची	क	हो	०	तु	म
२१) सारि	सारि	नि॒सा	नि॒सा	रिग॒	रिग॒	सारि	सारि	नि॒सा	नि॒सा	मप	मप	रिग॒	रिग॒	सारि	सारि
नि॒सा	नि॒सा	पध	पध	मप	मप	रिग॒	रिग	सारि	सारि	नि॒सा	नि॒सा	नि्सां	नि्सां	पध	पध
मप	मप	रिग॒	रिग॒	सारि	सारि	नि॒सा	नि॒सा	सांरि'	सांरि'	नि्सां	नि्सां	पध	पध	मप	मप
ग॒	रिग॒	सारि	सारि	नि॒सा	नि॒सा	रिम	पध	मप	साँ	चीं	क	हो	०	तु	म

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग गुर्जरी तोड़ी

आरोह-अवरोह—नि रि ग म ध नि सां, सां नि ध म ग रि ग रि सा।

जाति—षाडव-षाडव।

ग्रह—ऋषभ। द्रष्टव्य-विशेष विवरण।

अंश—पूर्वाङ्ग में गांधार अंश; उत्तरांग में धैवत उपांश।

न्यास—गांधार।

अपन्यास—धैवत।

विन्यास—षड्ज।

रि म
मुख्य-अंग—रि ग ऽ ऽ रि ग रि ऽ सा।

समय—प्रातःकाल सूर्योदय के बाद नौ बजे से ग्यारह बजे तक।

प्रकृति—करुण; असह्य विरह की अपार वेदना।

विशेष विवरण

यह एक बड़ी करुणामय रागिणी है। इसमें ऋषभ, गान्धार, धैवत अति कोमल, निषाद शुद्ध और मध्यम तीव्रतर लगता है। पञ्चम का समूचा त्याग है। इस रागिणी में असह्य विरह की अपार वेदना भरी पड़ी है।

इसके आरोह-अवरोह की सामान्य परिपाटी यों हैं:—

नि रि ग म ध नि सां   सां नि ध म ग रि ग रि सा

रि म
फिर भी 'सा, रि ग रि ग रि सा'—यह इस रागिणी कि प्राण-क्रिया है। द्रुत तानों में नि रि ग म ध नि सां नि ध म म ग रि ग रि सा यों जाते हैं। क्योंकि 'नि-सा-रि-ग' में सब निकट के स्वर होने के कारण उन्हें विलम्बित गति में तो सुविधा से लिया जा सकता है, किन्तु द्रुत गति में वह नितान्त कष्ट साध्य होने के साथ साथ अनावश्यक भी है। इसी लिये तानों में लक्ष्य 'नि रि ग म ध नि' ही है। इस प्रकार तानों में आरम्भक स्वर भले ही निषाद है, किन्तु रागिनी का मुख्य अङ्ग निषाद से शुरू नहीं होता। आलाप में जब 'सा' पर मिलते हैं, तब प्रायः 'म ध सा' या 'ध सा' ही जाते हैं। किन्तु जब ध नि सा, ध नि सा रि, ध नि सा रि ग, इस प्रकार की विधि की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाती है तब आरोह में निषाद प्रयुक्त होता है। आरोह में निषाद वर्ज्य नहीं है, किन्तु राग की रचना में 'म॒ ध॒ सां' और 'म॒ ध॒ नि सां' विभिन्न अंग से प्रयुक्त होते हैं।

'सां रे॒ ग॒' यों लेकर गान्धार पर ठहरिए और ठहरकर 'रे॒ ग॒ रे॒ सा' कहकर नीचे उतरिये; केवल इतने ही स्वरों में तोड़ी दीख जायगी; क्योंकि तोड़ी की प्राण–क्रिया यही है। जितने प्रकार की तोड़ी हैं, प्रायः सभी पूर्वाङ्ग में ही दिखाई देती हैं। इस प्रकार यह असंदिग्ध सत्य है कि यह राग पूर्वाङ्गवाची ही है। फिर भी न जाने क्यों पण्डित भातखण्डे ने इसे उत्तरांग–प्रधान माना है, जो लक्ष्य के विरुद्ध है।

आजकल 'मियाँ की तोड़ी' के नाम से जो राग प्रसिद्ध है, वह इस गुर्जरी तोड़ी के अवरोह में केवल पञ्चम का अल्प-प्रयोग करने से ही बनता है; इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। मियाँ की तोड़ी में भी बार-बार तोड़ी के आविर्भाव के लिए पञ्चम का त्याग दिखाना ही पड़ता है, केवल कहीं कहीं पञ्चम दिखाकर उसे मियाँ की तोड़ी कहा जाता है।

गुर्जरी तोड़ी का गुर्जर जाति से या गुर्जर राष्ट्र से सम्बन्ध जोड़ा जाता है। जैसे 'मुल्तानी' मुलतान से, 'भूपाली' भूपाल से 'बरारी' बरार से, और 'बंगाली' बंगाल से सम्बधित कही जाती है, वैसे ही गुर्जरी तोड़ी का सम्बन्ध गुर्जरों से, गुर्जरराष्ट्र (गुजरात) से लगाया जाता है।

इसका ग्रह-स्वर निर्धारित करते समय यह स्मरणीय है कि तोड़ी की स्थापना किन स्वरों से होती है। रागारम्भ में तो 'सा, ध॒ सा, म॒ ध॒ सा' इत्यादि स्वर-प्रयोग किये जाते हैं; किन्तु तोड़ी का अपना स्वरूप (रे॒) रे॒ ग॒ ऽ रे॒ ऽ सा करने पर ही निखरता है। इस प्रकार सामान्य आरम्भ षड्ज से होने पर भी इस राग के मुख्य अंग या प्राण-क्रिया का आरम्भक स्वर ऋषभ ही है। इसलिए ऋषभ को इसका ग्रहस्वर मानना उचित है। 'सा' पर कुछ ठहरकर यदि '(रे॒) रे॒ ग॒ ऽ रे॒ ऽ सा' कहा जायगा, तो तोड़ी तत्काल दिखाई देगी। इस दृष्टि से भी ऋषभ ही इसका ग्रह-स्वर है। पूर्वांग में गान्धार अंश और न्यास है। एवं उत्तरांग में धैवत उपांश और अपन्यास है।

इस राग में आलाप करते समय सभी स्वरों पर ठहर सकते हैं और आलाप के विस्तार को बढ़ा सकते हैं। किस स्वर पर कितना ठहरा जाय और कैसे ठहरा जाय यह सब गुरुमुख से ज्ञात होगा। इसके मन्द्र-निषाद और मध्य मध्यम पर समझकर यथाविधि न्यास करने से अपार निराशा और करुणा निदर्शित होती है।

रस दृष्टि से इस रागिणी में आलाप ही किये जाय, तानों का समूचा त्याग किया जाय, यह नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि यह रागिणी करुणा-भरी है। आजकल सामान्य परिपाटी ऐसी बन गयी है कि प्रत्येक राग में तैयारी दिखाने के लिए तान प्रयोग आवश्यक-सा माना जाता है। इसलिए इसमें भी खूब तानें ली जाती हैं। इसका आरोह-अवरोह सीधा होने के कारण इसमें तान का विस्तार सरल रहता है; इसलिए भी प्रायः सभी इसमें कसकर तानें लेते रहते हैं। हमें भी लेनी पड़ती हैं। किन्तु हमारे मत से इस करुण-रस-वाहिनी रागिनी में तानें न लेना ही समुचित है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस राग की स्वरावलि बहुत ही कठिन है। 'निसारि्ग' ये निकटतम स्वर होने के कारण, 'रि् – ग् – ध्' अति कोमल और मध्यम तीव्रतर रहने से तथा पञ्चम का त्याग होने से नये सीखनेवालों के लिये इस स्वरावलि का उच्चार दुष्कर और नितान्त कष्टसाध्य है। पण्डित भातखण्डे ने न जाने क्या समझकर प्रथमवर्ष के पाठ्यक्रम में 'तोड़ी' को प्राथमिक शिक्षण में ही स्थान दे दिया है, जो शिक्षण-शास्त्रकी वैज्ञानिक पद्धति के सर्वथा प्रतिकूल है; और किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

गुरु के पास बैठकर जो तोड़ी सीखें हों; अपने शिष्यों को सिखा कर जिन्होंने अनुभव लिया हो, वे ही इसकी कष्ट-साध्यता को समझ सकते हैं। पाठ्यक्रम को निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है कि विद्यार्थियोंकी ग्रहण-शक्ति को जो सरलता से सुलभ हो, सुविधा से साध्य हो, उसे ही प्राथमिक शिक्षण में स्थान दिया जाय।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग गुर्जरी तोड़ी

मुक्त आलाप

नि̮ नि̮ नि̮ नि̮ नि̮ नि̮ नि̮ नि̮ ध॒ ग
(१) सा, ध॒ सा, रि॒सा ध॒ ऽ सा, म॒ ध॒ सा, सा सा ऽ रि॒गा ध॒ ऽ म॒ ध॒ सा। सा रि॒

रि॒ म॒ ग॒ ग॒ ग॒ म॒ नि सा म॒ ध॒ सा रि॒
ग॒ ऽ रि॒ ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, सारि॒ ऽ सा, निसारि॒ग॒ ऽ सा, निसा सारि॒ रि॒ग॒ ऽ सा, ध॒ नि ऽ सारि॒ ऽ ग॒ ऽ सा,

रि॒ स ध॒ नि सा
ध॒निसारि॒ ग॒ ऽ सा, ध॒नि ऽ ध॒सा ऽ निरि॒ ऽ रि॒ ग॒ ऽ सा, ध॒नि निसा सारि॒ रि॒ग॒ ऽ सा, ध॒निसानि ऽ

निसारि॒सा ऽ सारि॒ग॒रि॒ ऽ ग॒ ऽ सा, ध॒ ऽ निसानि ऽ नि ऽ सारि॒सा ऽ सा ऽ रि॒ग॒रि॒ ऽ ग॒ ऽ सा, सारि॒ग॒ ऽ ऽ म॒

रि॒
रि॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा।

रि॒ ग॒ ग॒
(२) ध॒सा ऽ निरि॒ ऽ साग॒ ऽ सा, ध॒सानि ऽ निरि॒सा ऽ साग॒रि॒ ऽ सा, ध॒नि ऽ ध॒सा ऽ ध॒रि॒ ऽ

ध॒ग॒ ऽ रि॒ग॒ ऽ सा।

नि म॒ ध॒
(३) सा, ग॒रि॒सानिध॒ ऽ ध॒ ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, म॒ ध॒नि सारि॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, म॒ध॒ ऽ ध॒नि ऽ निसा ऽ

नि सा
सारि॒ ऽ रि॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, म॒ ऽ निध॒ ऽ सा ऽ, ध॒ ऽ सानि रि॒ ऽ, सा ऽ ग॒रि॒ ऽ ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, म॒नि ध॒सा निरि॒

साग॒ ऽ रि॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा, म॒निध॒सा ऽ ध॒सानिरि॒ ऽ साग॒रि॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा।

सा रि॒ ग॒ रि॒ रि॒ नि
(४) सा रि॒ ग॒ ऽ, ध॒ नि सा ग॒, ग॒रि॒सारि॒ग॒, रि॒ ग ऽ सा रि॒ ऽ सा ग॒, ग॒रि॒निध॒ ऽ ध॒ निसारि॒ग॒,

रि॒ म॒
नि ऽ सारि॒सा ग॒, रि॒ ऽ ग॒रि॒ ऽ सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रि॒

(५) सारि॒गरि॒ग॒ ऽ, साग॒रि॒ग॒ ऽ, सा ऽ ग॒रि॒ग॒ ऽ, नि॒सारि॒ग॒ ऽ, नि॒ ऽ सारि॒ग ऽ, ध॒ नि॒सारि॒ग॒,

ध॒ रि॒ म॒ रि॒

ध॒ ग॒ ऽ रि॒ ग॒ ऽ ध॒ ऽ ग॒रि॒ग ऽ रि॒ ग॒ ऽ रि॒सा ।

रि॒ सा रि॒ रि॒

(६) रि॒रि॒सानि॒सा ऽ रि॒ ग॒, ग॒ ग॒रि॒सारि॒ ऽ रि॒रि॒सानि॒सा ऽ रि॒ ग॒, सासानि॒ध॒नि॒ ऽ रि॒रि॒सानि॒सा ऽ

रि॒ रि॒ रि॒ सा सा नि॒ रि॒ रि॒ सा ध॒ नि॒

ग॒ग॒रि॒सारि॒ ऽ रि॒ ग॒, ग॒ ग॒रि॒—रि॒ ऽ ग॒ ऽ, रि॒ रि॒सा—सा ऽ, ग॒ ग॒रि॒—रि॒ ऽ ग॒ ऽ, सासानि॒—नि॒ ऽ रि॒रि॒सा—सा ऽ

सा म॒ नि॒ ध॒ नि॒ सा म॒ म॒

ग॒ग॒रि॒ रि॒ ऽ ग॒, नि॒नि॒ध॒—ध॒ ऽ सासानि॒—नि॒ रि॒रि॒सा—सा ऽ ग॒ग॒रि॒—रि॒ ऽ ग॒, रि॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा ।

रि॒ रि॒ रि॒ नि॒ ध॒

(७) सारि॒ ग॒ ऽ, ग॒रि॒ रि॒सा ऽ रि॒ ग॒, ग॒रि॒—रि॒सा ऽ रि॒नि॒नि॒ध॒ ऽ रि॒—ग॒, ग॒रि॒ रि॒नि॒ नि॒ध॒ ऽ

ध॒ नि॒ सा रि॒ सा सा रि॒ रि॒

ध॒नि॒ नि॒सा सारि॒ रि॒ ग॒, ग॒ ऽ ग॒रि॒ ऽ रि॒ ऽ रि॒सा ऽ रि॒ ग॒, रि॒ ऽ रि॒नि॒ ऽ नि॒ ऽ नि॒ध॒ ऽ रि॒ ग॒,

रि॒ रि॒ सा रि॒

ग ऽ ग॒रि॒ रि॒ ऽ रि॒नि॒ नि॒ ऽ नि॒ध॒ ऽ रि॒ ऽ रि॒नि॒ ऽ ग॒ ऽ ग॒रि॒ ऽ ग॒, सारि॒ग॒—ग॒रि॒ ऽ नि॒सारि॒—रि॒नि॒ ऽ रि॒ ग॒,

म॒

सारि॒ग॒—साग॒रि॒ ऽ नि॒सारि॒—नि॒रि॒नि॒ ऽ ध॒नि॒सा—ध॒नि॒ध॒ ऽ रि॒ग॒ ऽ, रि॒ ऽ ऽ सा ।

म॒ सा म॒ रि॒ सा

(८) सारि॒ग॒म॒ ∿∿ रि॒ग॒ ऽ म॒ग॒रि॒सा, ग॒ग॒रि॒—सारि॒ गम॒ ∿∿ रि॒ ग॒ ऽ म॒गरि॒ ऽ सा,

म॒ रि॒ सा म॒ रि॒ सा

गगरि॒सारि॒ म॒म॒ग॒रि॒ग॒ म॒ ∿∿ रि॒ ग॒ ऽ म॒ग॒रि॒ ऽ सा, ध॒नि॒सारि॒म॒ ऽ नि॒सारि॒ग॒म॒ ∿∿ रि॒ ग॒ ऽ म॒ग॒रि॒ ऽ सा,

म॒ सा

सा ऽ म॒ग॒रि॒सानि॒ध॒ म॒ ऽ म॒ ऽ रि॒ग॒ ऽ म॒ग॒रि॒ ऽ सा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा रि॒ ग॒ ग॒ ग॒ ग॒
(९) साऽरि॒ रि॒ऽग॒ ग॒ऽम॒ म॒, सारि॒ रि॒ग॒ गम॒ म॒, मम॒ रि॒गम॒ म॒, म॒ऽमग॒

रि॒ ग॒ ग॒ ग॒
ग॒ऽगरि॒ ग॒ म॒, सारि॒—गरि॒ ऽ रि॒गम॒—मग॒ ऽ म॒, सारि॒ऽसा रि॒ग॒ऽरि॒ गम॒ऽग॒ म॒, सारि॒ गरि॒ऽ

ग॒ ग॒ ग॒
रि॒गमग॒ ऽ म॒, सारि॒ गरि रि॒सा ऽ रि॒गमग॒—गरि॒ ऽ गरि॒मग॒ म॒, रि॒सासा गरि॒रि॒ मगग॒ म॒,

ग॒
रि॒सासा गरि॒रि॒ मगग॒ म॒, रि॒सासा गरि॒रि॒ ऽ गरि॒रि॒ मगग॒ ऽ मगग॒ धमम॒ ऽ मगग॒ गरि॒रि॒ ऽ

ग॒ म॒ रि॒
मगग॒ म॒ऽ, रि॒ ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा।

सा रि॒ ग॒ म॒
(१०) सा रि॒ ग॒ म॒ ध॒ ऽ ऽ सा, रि॒गमध॒ ऽ ऽ सा, ध॒नि॒सारि॒गम॒ ध॒ऽऽसा, ध॒नि॒ऽध॒सा ऽ

रि॒ ग॒ म॒ म॒
नि॒रि॒ऽसा ग॒ ऽ रि॒ म॒ ग॒ ध॒ ऽऽ सा, गरि॒ मग॒ धम॒ ध॒ ऽ ऽ सा, सारि॒ग॒ ऽ रि॒ग॒ऽरि॒ऽसा। सारि॒ऽ

रि॒ ग॒ ग॒ म॒ म॒ म॒ ध॒ म॒ ग॒ म॒ म॒ ध॒ म॒
रि॒ग॒ ऽ ग॒ म॒ ऽ म॒ ध॒ ऽ, सारि॒ग॒सा ऽ रि॒गमरि॒ऽगमधग॒ऽरि ग॒ म॒ ध॒ऽऽ, सा रि॒ ग॒ म॒ ध॒ ऽ ध॒ ऽ ध॒,

म॒ ध॒ म॒
नि॒सारि॒ग॒ ऽ रि॒ ग॒ म॒ ध॒, ध॒ ऽ म॒ ध॒ ऽ मगरि॒गमध॒ ऽ मगरि॒सारि॒गमध॒ ऽ मगरि॒सानि॒ध॒ ऽ ध॒,

म॒ म॒ म॒ म॒
ध॒ऽधमम॒ ध॒, धमम॒ मगग॒ ऽ मगग॒ धमम॒ ध॒, ध॒ऽधमम॒ मगग॒ गरि॒रि॒ रि॒नि॒नि॒ नि॒ध॒ध॒ ध॒,

म॒ म॒ ग॒
ध॒नि॒—नि॒ध॒ध॒ ऽ नि॒रि॒—रि॒नि॒नि॒ ऽ रि॒ग॒—गरि॒रि॒ ऽ गम॒—मग॒ग॒ ऽ मध॒—धमम॒ ध॒ ऽ ध॒ऽधमम॒ मध॒ऽ,

रि॒ ग॒ सा रि॒ ग॒ म॒ रि॒ सा
रि॒ग॒ गम॒ मध॒ ऽ, सारि॒रि॒ग॒ गम॒ मध॒, धममगरि॒ऽरि॒ ग॒ ऽ मगरि॒ऽसा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग़ म़ ध़ म़ सा ऱि ग़ म़ सां नि ग़ म़ सां
(११) सा ऱि ग़ म़ ध़, सा ऱि ग़ म़ ध़, सा ऱि ग़ म़ ध़, म़ध़नि ऽ ध़, गम़ म़ध़ ध़नि ऽ

नि ऱि ग़ सां नि सां नि सां
ध़; ऱिग़ गम़ ऽ म़ध़ ध़नि ऽ ध़, ध़ ऽ धम़म़ ध़नि ऽ ध़, ध़ ऽ धम़म़ म़गग़ ऽ गम़ म़ध़ ध़नि ऽ

नि म़ ध़ म़ ग़ म़ ध़ नि सां नि सां नि ध़ ध़ म़
ध़, ध़ ऽ ध़ म़ ग़ ऱि ग़ म़ ध़ नि ऽ ध़ ऽ, ध़ ऽ म़गऱिसा ऱिगम़ध़नि ऽ ध़, नि निध़ ध़ ऽ नि

सां नि ग़ ग़ ऱि म़ म़ ग़ म़ सां नि ग़
ऽ ध़ ऽ, म़ म़ग़ ग़ ऽ ध़ ध़म़ म़ ऽ निनिध ध़ ऽ नि ऽ ध़, निध़निम़ ऽ धम़धग़ ऽ म़गम़ऱि ऽ गऱिगसा ऽ ऱि

म़ ध़ नि सां नि सां नि ध़ म़
ग़ म़ ध़ नि ऽ ध़, निध़ निम़ ध़म़ ध़ग़ म़ग़ म़ऱि गऱि ग़सा गऱि म़ग़ ध़म़ निध़ नि ऽ ध़, निध ऽ धम़

ग़ ऱि सां नि म़ ग़ ऱि
ऽ म़ग़ ऽ गऱि ऽ ऱिसा ऽ नि ऽ ध़, ध़ ऽ म़ म़ ऽ ग़ ग़ ऽ ऱि ऽ ऱि ऽ सा ऽ।

❀ ❀ सा ऱि ग़ म़ ध़
(१२) साऱिगम़ ध़निसांऽनि ध़निध़ ऽ, निऱिगम़ ध़निरूसांऽनि ध़निध़ ऽ, सा ऱि ग़ म़ ध़ नि

❀ ध़ ❀ नि म़ ध़
सां ऽ नि ध़निध़, सां ऽऽ निसांऱिंसां ध़ ऽ सां ऽ नि ध़निध़, म़ ध़ सां ऽऽ ऱिंसांनि ध़निध़, सां ऽ निसां ऽ

नि ध़ ध़ म़ ❀ सा ❀ सा ❀
ध़ सां म़ सां ऽ नि ध़निध़, म़गऱि साऱिगम़ध़ ऽ सां ऽ नि ध़निध़, म़गऱिसा ऽ ऱिगम़ध़सांऽनि ध़निध़, सांऽऽम़

∿∿ ध़ सां ऽऽ म़ ∿∿ म़गऱिनि ∿∿ निसा सां ऽऽ म़ ∿∿ म़ध़सां ऽऽ म़ ∿∿ ध़निसां ऽऽ म़ ध़सां ऽ,

सा सां ऽ नि ध़निध़ ऽ, म़ध़म़ ऽऽ गम़ग़ ऽऽ ऱिग़ ऱि ऽ साऱिसा।

---

१. निषाद के प्रलम्बोच्चार में तार षड्ज का गुप्त स्पर्श है और बाद में धैवत के उच्चार के साथ पुनः निषाद का स्पर्श है। यह सूक्ष्म प्रयोग प्रत्यक्ष गुरुमुख से ही सीखा जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नि सां सा रि॒ ग॒ म॒ ध॒ नि
(१३) सां सां ऽ ध॒ नि रि॒ ऽ सां, सां ऽ निध॒म॒ग॒रि॒सा ऽ सा रि॒ ग॒ म॒ ध॒ सां, सां ऽऽ नि सां ऽऽ

ध॒ म॒ सा नि
ध॒ सां ऽऽ म॒ सां ऽऽ सा सां ऽऽ निसा ऽऽ सां; सां ऽ सांनिध॒ सां, सां ऽ निध॒म॒ सां, सां ऽ म॒ग॒रि॒ सां, सां ऽ ग॒रि॒सा

म॒ रि॒
सां; सां ऽ सांनि ऽ निध॒ ऽ ध॒म॒ ऽ म॒ग॒ ऽ ग॒रि॒ ऽ रि॒सा ऽ सां, निध॒म॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ ग॒ ऽ रि॒ ऽ सा।

नि रि॒
(१४) सां ऽ ध॒नि ध॒सां, म॒ध॒ म॒नि ध॒सां, रि॒म॒ ग॒ध॒ म॒नि ध॒सां, रि॒ग॒ रि॒म॒ ग॒ध॒ म॒नि ध॒सां, सारि॒ सा ग॒

सा ग॒ रि॒ म॒ ग॒ ध॒ म॒ ध॒
रि॒ म॒ ग॒ ध॒ म॒ नि ध॒ सां; सांनि सांनिध॒ ऽ निध॒ निध॒म॒ ऽ ध॒म॒ ध॒म॒ग॒ ऽ म॒ग॒ म॒ग॒रि॒ ऽ ग॒रि॒ ग॒रि॒सा ऽ सां, सांनिध॒म॒

ध॒ म॒ ग॒
ऽ निध॒म॒ग॒ ऽ ध॒म॒ग॒रि॒ ऽ म॒ग॒रि॒सा।

सा रि॒ ग॒ म॒ ध॒ नि
(१५) सा रि॒ ग॒ म॒ ध॒ नि सां ऽ निसां, रि॒सा ग॒रि॒ म॒ग॒ ध॒म॒ निध॒ सां ऽ निसां, रि॒रि॒सा ग॒ग॒रि॒

म॒म॒ग॒ ध॒ध॒म॒ निनिध॒ सां ऽ निसां, सारि॒रि॒ रि॒ग॒ग॒ ग॒म॒म॒ म॒ध॒ध॒ ध॒निनि सां ऽ निसां, रि॒सासा ग॒रि॒रि॒ म॒ग॒ग॒

ध॒म॒म॒ निध॒ध॒ सां ऽ निसां, रि॒सा—ग॒रि॒रि॒ ऽ ग॒रि॒—म॒ग॒ग॒ ऽ म॒ग॒—ध॒म॒म॒ ऽ ध॒म॒—निध॒ध॒ ऽ सां ऽ निसां,

सा रि॒ ग॒ म॒ ध॒
ग॒रि॒—रि॒सासा ऽ म॒ग॒—ग॒रि॒रि॒ ऽ ध॒म॒—म॒ग॒ग॒ ऽ निध॒—ध॒म॒म॒ ऽ सांनि—निध॒ध॒ ऽ सां ऽ निसां, सारि॒ग॒म॒ध॒निम॒ ऽ ऽ

नि म॒ ध॒ नि नि नि
ध॒सां ऽ निसां, सारि॒ग॒म॒रि॒ ऽ रि॒ग॒म॒ध॒ग॒ ऽ ग॒म॒ध॒निम॒ ऽ ध॒सां ऽ निसां, सां ऽ निसारि॒सांध॒ ऽ ध॒म॒म॒ ऽ ध॒सां ऽ

म॒
निसां, निध॒म॒ग॒रि॒ग॒ ऽ ध॒म॒ग॒रि॒सारि॒ ऽ रि॒ग॒ ऽ रि॒ ऽ ऽ सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रि॒ं रि॒ं

(१६) सारि॒गम॒ध॒नि सारिं ग॒ं ऽ रि॒ं ऽ ग॒ ऽ रि॒ं ऽ सा, सा ऽ रि॒ं ग॒ं ऽ रि॒ं ऽ सा, निसारि॒ंग॒ं ऽ

रि॒ंग॒ंरि॒ं ऽ सा, ध॒निसारि॒ंग॒ं ऽ ध॒ ऽ ऽ ग॒ं ऽ रि॒ं ऽ सा ; ध॒निध॒सा ऽ निसानिरि॒ं ऽ सारि॒ंसाग॒ं ऽ रि॒ं ऽ सा,

नि रि॒ं

रि॒ंरि॒ंसानिसारि॒ंग॒ं ऽ ऽ रि॒ंसानिध॒ ऽ सानिध॒म॒ ऽ ध॒सारि॒ं ग॒ं ऽ रि॒ं ऽ सा, सारि॒ं रि॒ंग॒ं ऽ निसा सारि॒ं ऽ

रि॒ं रि॒ं सा सा नि

ध॒नि निसा ऽ रि॒ं ग॒ं ऽ रि॒ं ऽ सा, सारि॒ं—रि॒ंग॒ं ऽ ग॒रि॒ं रि॒सा ऽ, निसासारि॒ं ऽ रि॒ंसा सानि ऽ, ध॒निनिसा ऽ

नि ध॒ सा ध॒ म॒ नि नि

सानि निध॒ ऽ, ध॒नि निसा सारि॒ं रि॒ंग॒ं ऽ रि॒ं ऽ सा, ग॒ंरि॒ं—रि॒ंसा ऽ सानि निध॒ ऽ निध॒ ध॒म॒ ऽ म॒ ध॒

रि॒ं नि ध॒ रि॒ं

सारि॒ं ग॒ं ऽ रि॒ं ऽ सा, रि॒ंरि॒ंसा निसानि ऽ सासानि ध॒निध॒ ऽ निनिध॒ म॒ध॒म॒ ऽ ध॒ सारि॒ं ग॒ं ऽ रि॒ं ऽ सा,

नि ऽ सानि ध॒ ऽ निध॒ म॒ ऽ ध॒म॒ ग॒ ऽ म॒ग॒ रि॒ ऽ ग॒रि॒ ऽ सा।

म॒ं रि॒ं म॒ं

(१७) सारि॒गम॒ध॒निसारि॒ंग॒ं ऽ रि॒ं ग॒ं ऽ रि॒ं सा, सारि॒गम॒ध॒निसा ऽ सा, रि॒गम॒ध॒निरि॒ं ऽ रि॒, गम॒ध॒नि

म॒ ग॒ रि॒

रि॒ंग॒ं ऽ ग॒, म॒ध॒निरि॒ंग॒ंम॒ं ऽ म॒, म॒ध॒सा ऽ निसा, सा ऽऽ रि॒ंसानिध॒ ऽ ध॒ ऽ ऽ निध॒म॒ग॒ ऽ म॒ ऽ ऽ ध॒म॒ग॒रि॒ ऽ ग॒ ऽ

म॒ग॒रि॒सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग गुर्जरी तोड़ी

मुक्त तानें

रिसानिध् सानिरिसा रिगरिसा, सारिगरि रिगरिसा, रिगरि रिगरि सारि सारिगरि रिगरिसा, निसारिग् रिगरिसा, ध् निसारि निसारिग् रिगरिसा, म् ध् निसा ध् निसारि निसारिग् रिगरिसा, निध् सानि रिसा गरि गगरिगरिगरिसा धम् निध् सानि रिसा रिगरिग रिगरिसा, म् ध् निसा सानिध् म् ध् निसारि गगरिसा। म् ध् निध् ध् निसानि निसारिसा रिगरिसा। सारिगरि गरिसारि रिगरिसा, निसारिसा सारिगरि गरिसारि रिगरिसा, ध् निसानि निसारिसा गरिसारि रिगरिसा, म् ध् निध् ध् निसानि निसारिसा सारिगरि गरिसारि रिगरिसा। गरिसारि रिसानिसा सारिगरि रिगरिसा, गरिसारि रिसानिसा सानिध् नि रिसानिसा गरिसारि रिगरिसा। गरिसारि रिसानिसा सानिध् नि निध् म् ध् सानिध् नि रिसानिसा रिगरिसा। रिगरि रिगरि सारि रिगरिसा, रिगरि रिगरि सारिसा सारिसा रिगरि रिगरि सारि रिगरिसा, रिगरि रिगरि सारिसा सारिसा निसानि निसानि रिगरि रिगरि सारि रिगरिसा, रिगरि रिगरि सारिसा सारिसा निसानि निसानि ध् निध् ध् निध् रिगरि रिगरि सारि रिगरिसा, रिगरि रिगरि सारिसा सारिसा निसानि निसानि ध् नि ध् ध् नि ध् म् ध् म् म् ध् म् रिगरि रिगरि सारि रिगरिसा। सारिगम् मगरिसा रिगरिग् मगरिसा, निरिगम् निऽऽम् मगरिसा, गरिगगरिसा, गरिरि गरि रि गरि गगरिसा मगरिसा, सारिगरि रिगमग रिगमग् मगरिसा। सारिसारि रिगरिग गमगम् रिगरिसा, ध् निध् नि निसानिसा सारिसारि रिगरिग गमगम् रिगरिसा। म् ध् म् ध् ध् नि ध् नि निसानिसा सारिसारि रिगरिग् गमगम् रिगरिसा। रिसानिसा गरिसारि मगरिग गमरिग रिगमग रिसानिसा। सारिगम् धधमगरिसा धधमगरिसा, गरिरि मगग् धमधध् मगरिसानिसा। रिगमधऽध् मधमगरिसा, रिरिरि गगग् मम्म् धधध् मगरिसा। सासा रिरि गग् मम् धध मगरिसानिसा। ध् ध् ध् गगग् रिसा, गरिरि मगग धम् धध् मगरिसानिसा। सारिगम् धमऽम् गमधध् मगरिसा, सारिगम् धरिऽरि रिगमध् मगरिसा। सारिरि सारिरि सारि,

सा रि ग्

रिगग् रिगग् रिग, गमम् गमम् गम, गमधध् मगरिसा। गगरि रिऽरि ममग् गऽग् धधम् मऽम् धधमगरिसा। ध् ध् ध् गगग् धधमगरिसा। सारिगम् धनिमध् मनिधम् मगरिसा। रिगमधनि मऽम् मनिधम् मगरिसा, निरिगम् धनिमध् मनिधम् मगरिसा। ध् निसारि गगरिसा, रिगमध् निनिधम् मनिधम् मगरिसा। म् ध् निसा ध् निसारि निसारिग् सारिगम् रिगमध् गमधनि मनिधम् मगरिसा। निनिनि ममम् निनिधनि धममगरिसा। निऽरिऽगऽमऽ निनिधम् मगरिसा। निऽमऽ निऽऽनि धनिधम् मगरिसा। सारिगग् रिगरिसा, रिगमम् गमगरि, गमधध् मधमग, मधनिनि धनिधम्, धनिसांसां निसांनिध्, मधनिनि धनिधम्, गमधध् मधमग, रिगमम् गमगरि सारिगग रिगरिसा[1]। गगरिग रेस

---

१. इसी तान को तार सप्तक में भी आगे बढ़ाया जा सकता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

म्म्ग्म्ग्रि् ध्ध्म्ध्म्ग् निनिध्निध्म् सा॰निसानिध् रि्'रि्'सारि्सा'नि गं'गं'रि्'गं'रि्'सां रि्'रि्'सारि्सानि सांसानिसांनिध् निनिधनिधम् धध्म्ध्म्ग म्म्ग्म्ग्रि् ग्ग्रि्ग्रि्सा, सारि्ग्म् ध्निसारि्' सानिध्म् म्ग्रि्सा। नि्रि्ग्म्ऽम् म्ग्रि्सा, रि्ग्म्ध्ऽध् ध्म्ग्रि्, ग्म्ध्निऽनि।निध्म्ग्, म्ध्निसाऽसां सानिध्म्, ध्निसारि्'ऽरि्' रि्'सानिध्, सानिध्म् निध्म्ग् ध्म्ग्रि म्ग्रि्सा रि्ग्रि्सा ध्निध्म् रि्'गं'रि्'सां सानिध्म् म्ग्रि्सा। सारि्ग्म् ध्निसारि् ग्'ग्'रि्'सां सानिध्म् म्ग्रि्सा। ग्'ग्'रि्'सां सानिध्म् म्ग्रि्सा ग्'ग्'ऽरि्' सानिध्म् म्ग्रि्सा, रि्'ग्'रि्ग्'ऽरि्' सानिध्म् म्ग्रि्सा। ग्ग्रि्सा निनिध्म् ग्'ग्'रि्'सां सानिध्म् म्ग्रि्सा। ग्रि्ग्ग्रि्सा निध्निनिध्म् ग्'रि्'ग्'ग्'रि्'सां सानिध्म् म्ग्रि्सा। ग्रि्रि् ग्ग्ग्रि्सा, निध्ध्निनिनिध्म्, ग्'रि्'रि्'गं'गं'गं'रि्'सां सानिध्म् म्ग्रि्सा। सारि्ग्म् म्ग्रि्सा म्ध्निसां सानिध्म् सारि्'ग्म्' म्'ग्'रि्'सा सानिध्म् म्ग्रि्सा। नि्रि्ग्म्ऽम् म्ग्रि्सा, म्ध्निसांऽसां सानिध्म्, निरि्'ग्म्'ऽम्' म्ग्रि्'सां सानिध्म् म्ग्रि्सा। म्ग्रि्सा सानिध्म् म्'ग्रि्'सां सानिध्म् म्ग्रि्सा। नि्रि्ग्म्ध्नि {निरि्'ग्म्' धं'ध्म्'ग्'रि्'सां सानिध्म् म्ग्रि्सा। नि्रि्ग्म्ध्'न निरि्'गं'म्'ध्'नि' सांनिध्म्' म्'ग्'रि्'सां सानिध्म् म्ग्रि्सा।

नोट :—ऊपर लिखी तानों में ही बीच-बीच में कहीं-कहीं निम्नलिखित ढंग से पंचम का प्रयोग करने से पंचम वाली तोड़ी (मियाँ की तोड़ी) का रूप बन सकेगा।

पम्पध्म्प रि्ग्रि्सानि्सा, पऽम्ध्ध्म्ग् रि्ग्रि्सा, म्पध्प म्पध्ध् म्ग्रि्सा। पम्ध्प निध्सानिध्प ग्म्ध्ध् म्ग्रि्सानि्सा। पम्ध्प निध्सानि रि्'सानिसां ध्पम्प म्पध्ध् म्ग्रि्ग्रि्सानि्सा। नि्रि्ग्म्ध्नि सारि्'सानिधम् म्पध्ध् म्ग्रि्ग्रि्सानि्सा। नि्रि्ग्म् ध्निसारि् ग्'ग्'रि्'सां सारि्'सानिध्प म्पध्ध्म्ग् रि्ग्रि्सा।

—

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग गुर्जरी तोड़ी

बड़ा ख्याल—तिलवाड़ा

गीत

स्थायी—अब मोरे राम राम रे (रब) राम, राम राम रे (रब) राम।

अन्तरा—निस दिन तिहारी टेर करत मनरंग हम चेरी तुम श्याम, राम॥

स्थाई

०			१३				
						सारि्सासा –	नि – ध् – नि
						अ ० ब ० ऽ	ऽ मो ऽ रे

×				५			
सा	निसा – – सा	सा – सा ध् –	– – नि ध्म्म्ग्	ग् रि् – – –	– – रि् ग्म्	ग् रि् – – –	सा – रि् सारि्
रा	० ० ऽ ऽ म	रा ऽ ० ० ऽ	ऽ ऽ ० म ० ० ०	रे ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ब ० ०	रा ऽ ऽ ऽ	० ऽ ० म ०

०			१३				
रि्ग् – –	– – ग् –	रि्ग्म्ध्	म् ध्म् म्ग् – रि्	ग् – म् रि्	– सा – सा	सारि्सासा –	नि – ध् – नि
रा ० ऽ ऽ	ऽ ऽ म ऽ	रा ० ० ०	म० ०० ऽ रे	ब ऽ ० रा	ऽ ० ऽ म	अ ० ब ० ऽ	ऽ मो ऽ रे

अन्तरा

०			१३				
						म् – म् ग् –	– म् ध् म्ध
						ऽ नि स ऽ	ऽ दि न ति०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५			
ध सां - - -	- - निसां -	सां - - -	निसां - - -	रिंसां निध - -	सां - नि रिं सांरिं	रिं गं - मं	गं गंरिं - -
हा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ • • ऽ	री ऽ ऽ ऽ	• • ऽ ऽ ऽ	टे • • • ऽ ऽ	• ऽ • र • •	क • ऽ •	र • • ऽ ऽ

०				१३			
सां - - -	सांसां - सांरिं -	नि नि - ध -	म॑ म॑ - ग -	म॑ - रि -	ग - - -	म॑ - ग -	- - म॑ ध
ऽ	• • ऽ • • ऽ	म ऽ न ऽ	रं ऽ ग ऽ	• ऽ • ऽ	• ऽ ऽ ऽ	ह ऽ म ऽ	ऽ ऽ चे •

×				५			
सां - - -	रिंसांसां नि सांरिं	सांनिनि ध - नि	धम॑म॑ ग - -	रिग म॑ध निध	धम॑म॑ ग रिगम॑	ग रि - - -	सा - रि सारि
री ऽ ऽ ऽ	• • • • तुम	श्या • • • ऽ •	म • • • ऽ ऽ	रा • • • • •	म • • • • ब •	रा ऽ ऽ ऽ	• ऽ • म •

आगे स्थाई की भाँति रहेगा ।

—————

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग गुर्जरी तोड़ी

त्रिताल

गीत

स्थायी—रंग जिन डारो, भीजे मोरी चुनरिया।

अन्तरा—लपक झपक गहि गहि यदु नंदन,
"प्रणवरंग" केसरिया, तुम हो नवल खेलरिया॥

स्थायी

×				५				०				१३			
											नि	ध॒	म॒	ग॒	रि
											रं	०	ग	जि	न
सा	–	रि॒	–	ग॒	–	म॒	–	ध॒	(ध॒)म॒	ध॒	नि	ध॒	म॒	ग॒	रि॒
डा	ऽ	०	ऽ	०	ऽ	०	ऽ	०	०	रो	रं	०	ग	जि	न
सासा	–	रि॒रि	–	ग॒ग॒	–	म॒म॒	–	ध॒	(ग॒)म॒	ध॒	नि	ध	म॒	ग॒	रि
डा०	ऽ	००	ऽ	००	००	००	ऽ	०	०	रो	रं	०	ग	जि	न
सा	ग॒	–	रि॒	नि	ध॒	म॒	ग॒	रि॒ग॒	ग॒म॒	म॒ध॒	ध॒नि	निध॒	ध॒म॒	म॒ग॒	ग॒रि॒
भी	जे	ऽ	मो	०	०	री	चु	न०	रि०	या०	रं०	००	ग०	जि०	न०

अन्तरा

×				५				०				१३			
म॒	म॒	ग॒	ग॒	म॒	म॒	ध॒	ध॒	(ध॒)म॒	ध॒	सां	सां	सां	सांनि	रिं॒	सां
ल	प	क	झ	प	क	ग	हि	ग	हि	य	यु	नं	००	द	न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
रि्सां	निध्	ध्	(ध) सां	–	सां	(गं) रि्	गं्	रिं्	सां	(नि) ध्	–	ध्	नि	म्	ध्
प्र०	ण०	व	रं	ऽ	ग	के	०	स	रि	या	ऽ	तु	म	हो	०
म्ध्	ध्सां	सांरिं्	रिं्गं्	रिं्	नि	ध्	म्	ग्	रि्	सा	नि	ध्	म्	ग्	रि्
न०	य०	ल०	खे०	ल	रि	या	०	०	०	०	रं	०	ग	जि	न

तानें

×				५				०				१३			
१)								सारि्	गग्	रि्सा	रं	ऽ	ग	जि	न
२)							सारि्	गम्	मग्	रि्सा	,,		,,		
३)						सारि्	गम्	धध्	मग्	रि्सा	,,		,,		
४)					सारि्	गम्	धनि	निध्	मग्	रि्सा	,,		,,		
५)				सारि्	गम्	धनि	सांनि	धम्	मग्	रि्सा	,,		,,		
६)			सारि्	गम्	धनि	सांरिं्	सांनि	धम्	मग्	रि्सा	,,		,,		
७)		सारि्	गम्	धनि	सांरिं्	गंरिं्	सांनि	धम्	मग्	रि्सा	,,		,,		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
८)	सारि्	गम्	धनि	सांरि्'	गंमं'	गंरि्'	सांनि	धम्	मग्	रि्सा	,,		,,		
९) सारि्	गरि्	रिग्	मग्	म्	धम्	मध्	निनि	धम्	मग्	रि्सा	,,		,,		
१०) सांनि	धनि	निध्	मध्	धम्	गम्	मग्	रिग्	गंरि्	गग्	रि्सा	,,		,,		
११) सारि	गग्	रि्ग	रि्सा	रि्ग्	मम्	गम्	गरि्	गम्	धध्	मध्	मग्	मध्	निनि	धनि	धम्
धनि	सांसां	निसां	निध्	निसां	रि्'रि्'	सांरि्'	सांनि	धनि	सांसां	निसां	निध्	मध्	निनि	धनि	धम्
गम्	धध्	मध्	मग्	रिग्	मम्	गम्	गरि्	सांनि	गग्	रि्सा	रं	ऽ	ग	जि	न
१२) गग्	रि्ग्	रि्सा,	मम्	गम्	गरि्,	धध	मध्	मग्,	निनि	धनि	धम्	सांसां	निसां	निध्,	गं'गं'
रिं'गं'	रि्सां,	रिं'रिं'	सांरिं'	सांनि,	सांसां	निसां	निध्,	निनि	धनि	धम्,	धध्	मध्	मग्	मम्	गम्
गरि्,	गग्	रिग्	रि्सा,	सारि्	गम्	धनि	सांनि	धम्	मग्	रि्सा	रं		ग	जि	न
१३)								सारि्	गम्	– म	मग्	रि्सा	रिग्	मध्	– ध्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
धम्	गर्	गम्	धनि	– नि	निध्	मग्	मध्	निसां	– सां	सांनि	धम्	धनि	सांरिं	– रिं	रिंसां
निध्	मध्	निसां	– सां	सांनि	धम्	गम्	धनि	– नि	निध	मग्	रिग्	मध्	– ध्	धम्	गरि्
सारि्	गम्	– म्	मग्	रिसा	ग् –	रिग्	– रि	सा –	ग् –	रिग्	– रि्	सा –	ग् –	रिग्	– रि्
					रं ऽ	ग जि	ऽ न	डा ऽ	रं ऽ	गजि	ऽ न	डा ऽ	रं ऽ	ग जि	ऽ न
१४)												गरि्	रिसा	मग्	गरि्
धम्	मग्	निध्	धम्	स न	निध्	रिंसां	स नि	गंरिं	रिंसां	रिंसां	सांनि	सांनि	निध्	निध्	धम्
धम्	मग्	मग्	गरि्	ग रि्	रि्, सा	– रि्	ग म्	ध् –	ध्, ध्	निध्	मग्	रि् –	रि्, ग	मग्	रिरि्
					रं	ऽ ग	जिन	डा ऽ	रो, रं	• ग	जिन	डा ऽ	रो, रं	• ग	जिन
१५) सारि्	गम्	मग्	रिसा	रिग्	मध	धम्	ग रि	ग म्	धनि	निध्	मग्	मध्	निसां	सांनि	धम्
धनि	सांरिं	रिंसां	निध्	मध्	निसां	सांनि	धम्	ग म्	धनि	निध	मग्	रिग्	मध्	धम्	गरि्
सारि्	गम्	मग्	रिसा	सारि्	ग म्	धनि	सां॰	सांनि	धम्	मग्	रिसा	नि	ध्	ध् मग्	– रि्
												रं	ऽ	ग जि	ऽ न
सा	–	सा	–	नि	ध्	ध् म्, ग्	– रि्	सा	–	सा	–	नि	्	मग	– रि
डा	ऽ	रो	ऽ	रं	ऽ	ग जि	– न	डा	ऽ	रो	ऽ	रं	ऽ	ग जि	ऽ न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				२				०				३			
१६) सारि्	गम्	धध्	मग्	रि्सा,	रि्ग्	मध्	निनि	धम्	गरि्,	गम्	धनि	सांसां	निध्	मग्,	मध्
निसां	रि्'रि्'	सांनि	धम्,	धनि	सारि्'	ग्'ग्'	रि्सां	निध्,	मध्	निसां	रि्'रि्'	सांनि	धम्,	गम्	धनि
सांसां	निध्	मग्,	रि्ग्	मध्	निनि	धम्	गरि्,	सारि्	गम्	धध्	मग्	रि्सा,	सारि्	गम्	धनि
सारि्'	ग्'ग्'	रि्सां	सांनि	धम्	मग्	रि्सा	सां	रि्ग्	–म्	ध्	–म्	–ग्	रि्	–ग्	–रि्
							रं	ग जि	ऽ न	डा	ऽ जि	ऽ न	डा	ऽ जि	ऽ न
१७) सारि्	गम्	गरि्	गरि्	रि्ग्	मध्	मग्	मग्,	गम्	धनि	धम्	धम्	मध्	निसां	निध्	निध्
धनि	सारि्'	सांनि	सांनि	सारि्'	ग्'ग्'	रि्'सां,	निसां	रि्'रि्'	सांनि,	धनि	सांसां	निध्	मध्	निनि	धम्
गम्,	धध्	मग्,	रि्ग्	मम्	गरि्,	सारि्	गग्	रि्सा,	सारि्	गम्	धनि	सां	रि्	ग्	रि्
									रं ०	० ०	० ०	० ऽ	ग	जि	न
१८) सारि्	गम्	गरि्,	रि्ग्	मध्	मग्,	गम्	धनि	धम्,	मध्	निसां	निध्,	धनि	सारि्'	सांनि,	निसां
रि्'सां	निध्,	धनि	सांनि	धम्,	मध्	नि ;	मग्,	गम्	धम्	गरि्,	रि्ग्	मग्	रि्सा,	सारि्	गम्
धनि	स –	– –	सारि्	गम्	धनि	सां –	– –	सारि्	गम्	धनि	सां –	– –	ग् –	रि्ग्	–रि्
													रं ऽ	ग जि	ऽ न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
१६) सारि	गम्	साम्	मृग्	रिसा,	रिग्	मृध्	रिध्	धम्	गरि,	गम्	धनि	गनि	निध्	मृग्,	मृध्
निस	मृसां	सांनि	धम्,	धनि	सांरिं	धरिं	रिंसां	निध्,	मृध्	निसां	मृसां	सांनि	धम्	गम्	धनि
गनि	निध्	मृग्,	रिग्	मृध	रिग्	धम्	गरि,	सारि	ग	साम्	मृग्	रिसा,	सारि	गम्	धनि
सांरिं	'मं'	मंगं	रिंसां	सांनि	धम्	मृग्	रिसा	नि	– ध्	ध्	– मृ	मृ	– ग्	ग्	– रि
								रं	ऽ ग	रं	ऽ ग	रं	ऽ ग	जि	ऽ न
२०) सारि	रि ग् सा	– ग्	गरि	रिसा,	रिग्	ग म् रि	– मृ	मृग्	गरि,	गम्	मृ ध् ग्	– ध्	धम्	मृग,	मृध्
ध् नि मृ	- नि	निध्	धम्,	धनि	नि सां ध्	– सां	सांनि	निध्,	निसां	सां रिं नि	– रिं	रिंसां	सांनि,	सांरिं	रिं गं सां
– गं	गंरिं	रिंसां,	रिंसां	सांनि,	स	निध्,	निध्	धम्,	ध	मृग्,	मृग्	गरि,	गरि	रिसा,	सारि
रिग्	गम्	मृध्	धनि	निसां	सांरिं	रिंगं	रिंसां	सांनि	निध्	धम्	मृग्	गरि	रिग्	गरि	गरि
														रंग	जिन
२१) सारि	रिग्	गरि	रिसा,	रिग्	गम्	मृग्	गरि,	गम्	मृध्	धम्	मृग्,	मृध्	धनि	निध्	धम्,
धनि	निसां	सांनि	निध्,	निसां	सां	रिंसां	सांनि,	सांरिं	रिंगं	गंरिं	रिंसां,	रिंगं	गंरिं,	सांरिं	रिंसां,
निसां	सांनि,	धनि	निध्,	मृध्	धम्,	गम्	मृग्,	रिग्	गरि,	सारि	रिसा	गरि	गरि	गरि	रिग्
												रंग	रंग	जिन	जिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग गुर्जरी तोड़ी

ध्रुवपद—सूलताल

गीत

अस्थायी—तेरे मन में केतो गुन रे
जेतो होइ, तेतो प्रकाश कर रे।।

अन्तरा—कहूँ तोसे बार बार मूरख मन रे।
जोई सुर आवे सोई रर रे।।

संचारी—खरज रिखब गान्धार मध्यम,
धैवत निषाद सुर को भर रे, भर रे, भर रे।

आभोग—कहे बैजू बावरे, सुनो हो गोपाल नायक
नाद-विद्या अथाह काहू सों न अर रे, न अर रे, न अर रे।

स्थायी

×		०		५		७		०	
सा	सा	(नि) ध्	ध्	नि	सा रि	(ग्) रि	ग्	–	–
ते	•	रे	•	म	न •	में	•	ऽ	ऽ
(ग्) म्	ध्	(ध्) म्	(म्) ग्	(ग्) रि	(रि) ग्	(ग्) रि	–	सा	–
के	•	तो	•	गु	न	रे	ऽ	•	ऽ
(ग्) सा	–	रि	(ग्) रि	ग्	ग्	ग्	म् ग्	(ध्) म्	ध्
जे	ऽ	तो	हो	•	इ	ते	• •	तो	•
म्	(नि) ध्	नि	ध्	(ध्) नि	(नि) ध्	(ग्) म्	(म्) ग्	(ग्) रि	सा
प्र	का	•	श	क	र	रे	•	•	•

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×		०		५		७		०	
ग् म्	म् रि्	ग्	ध् म्	नि ध्	नि म्	नि ध्	सां	–	–
क	हूँ	०	तो	०	०	से	०	ऽ	ऽ
सां ध्	सां	रि्'	रि्' ग्'	–	ग्'	म्' रि्'	ग्'	रि्'	सां
वा	०	०	०	ऽ	र	वा	०	०	र
सां	नि ध्	सां	नि	रि्'	सां	सां रि्'	ग्'	–	–
मू	०	र	ख	म	न	रे ०	०	ऽ	ऽ
म्' रि्'	–	रि्'	ग्'	रि्'	सां	सां	रि्' सां	ध्	–
जो	ऽ	ई	०	सु	र	आ	० ०	वे	ऽ
ध् म्	ध्	म्	ध	म् नि	ध्	म्	ग्	रि्	सा
सो	०	ई	०	र	र	रे	०	०	०

संचारी

×		०		५		७		०	
सा	सा	सा	रि्	रि्	रि्	ग्	–	–	ग्
ख	र	ज	रि	ख	ब	गा	ऽ	ऽ	न्वा
–	ग्	ग् म्	–	म्	म्	नि ध्	–	ध्	ध्
ऽ	र	म	ऽ	ध्य	म	धै	ऽ	व	त
ध् नि	नि	–	नि	सां	सां	ध्	सां	नि	रि्'
नि	षा	ऽ	द	धु	र	को	०	०	०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×		०		५		७		०	
सां	रे॒'	रे॒'	ग॒'	–	(सां)ग॒'	रे॒'	नि	ध॒	म॒ ध॒
●	●	●	●	ऽ	भ	र	रे	०	० ०
नि	ध॒	म॒	ग॒	रे॒ ग॒	म॒	ग॒	रे॒	–	सा
भ	र	रे	●	● ●	भ	र	रे	ऽ	०

आभोग

×		०		५		७		०	
सा	सां	–	सां	–	सां	रे॒'	ग॒'	रे॒'	सां
क	हे	ऽ	बै	ऽ	जू	बा	०	व	रे
रे॒' सां	(सां)ध॒	–	सां	–	रे॒'	(ग॒')सां	(ग॒')रे॒'	(रे॒')ग॒'	ग॒'
सु ●	नो	ऽ	हो	ऽ	गो	पा	०	०	ल
(म॒')रे॒' –	–	सां	सां	(नि)ध॒	नि	सां	रे॒'	ग॒'	ग'
ना ऽ	ऽ	य	क	ना	०	०	०	०	द
रे॒'	–	सां	–	(नि)ध॒	नि	(ध॒)रे॒'	सां	–	सां
वि	ऽ	द्या	ऽ	अ	०	०	था	ऽ	ह
म॒	ध॒	नि	सां	–	सां रे॒'	ग॒'	रे॒'	नि	ध॒
का	●	हू	सौं	ऽ	न ०	अ	र	रे	०
म॒ ध॒	नि	ध॒	म॒	ग॒	रे॒ ग॒	म॒	ग॒	रे॒	सा
न ●	अ	र	रे	०	न ०	अ	र	रे	०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग पूर्वी

रि॒ (grace note above the second ग in the avaroha)
आरोह-अवरोह—नि॒ रि॒ ग म॑ ध॒ नि सां, सां नि ध॒ प ऽ म॑ ग म ग ऽ म॑ ग रि॒ सा।

जाति—षाडव-वक्र सम्पूर्ण ।

ग्रह—निषाद ।

अंश— पूर्वाङ्ग में कोमल ऋषभ; उत्तरांग में कोमल धैवत उपांश ।

न्यास— गांधार ।

अपन्यास—पञ्चम ।

विन्यास—मध्य षड्ज ।

रि॒ (grace notes above the 2nd, 5th and last ग)
मुख्य-अंग—ग म ग, रि॒ गम ऽ ग, प ऽ म॑ ग म ग ।

समय—सायंकाल सूर्यास्त के समय ।

प्रकृति—द्रष्टव्य विशेष विवरण ।

विशेष विवरण

पूर्वी एक सायंगेय पूर्वाङ्ग-प्रधान राग है । इसमें 'रि॒-ध॒' कोमल, और दो मध्यम लगते हैं । सूर्यास्त के पूर्व, पूर्वी, पूरिया-धनाश्री आदि रागों में 'नि॒ रि॒ ग' इन स्वरों का अंग मुख्यतः प्रयुक्त होता है । सायंकाल में सूर्यास्त के पूर्व निसर्ग की अवस्था श्रान्त मालूम होती है, और 'रि॒-ध॒' कोमल के साथ तीव्रतर मध्यम के प्रयोग से वह अवस्था रागों के द्वारा अभिव्यक्त की जाती है । प्राकृतिक शैथिल्य इन स्वरों में प्रतिघोषित होता है । प्रातःकाल में प्राणिमात्र की जो उत्फुल्ल स्थिति होती है, सायंकाल में उससे विपरीत वातावरण रहता है । उसी का प्रतिबिम्ब तीव्रतर मध्यम और कोमल 'रि॒-ध॒' स्वरों के संयोग से निखर आता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस राग का आरोह-अवरोह निम्नोक्त है :—

नि रि ग म ध नि सां—सां नि ध प ऽ ऽ म ग म रि गे, म ग रि सा। इसका ग्रह-स्वर निषाद है, क्योंकि अलाप और तान का आरम्भ निषाद से होता है। पूर्वांग में कोमल ऋषभ और उत्तरांग में कोमल धैवत इसके अंश और उपांश स्वर हैं। न्यास गान्धार, अपन्यास पञ्चम और विन्यास मध्यषड्ज होगा। इसके अतिरिक्त पूरिया-धनाश्री से पूर्वी को पृथक् रखनेवाली शुद्ध मध्यम की एक विशेष क्रिया है, जो इसे वैशिष्ट्य प्रदान करती है। वह यों हैं, ग म रि ग, नि रि ग म रि ग, रि ग म प ऽ म ग म रि ग, प ध म प ऽ ऽ म ग म रि ग, इत्यादि। गुरुमुख से यह विशेष क्रिया गले में बिठा लेनी चाहिए। अन्यथा 'प म ग म ग' कहते समय विहाग या परज दीख जाने की संभावना है। 'प म ग म ग' कहते समय किन स्वरों के कण से बिहाग होगा, किनसे परज, किनसे पूर्वी, यह लेखन में समझाने पर भी कुछ अस्पष्ट रहने की संभावना है। (द्रष्टव्य 'परज' का विवरण)। इसलिये इन तीनों रागों की क्रियाएँ गुरु-मुख से सीख कर आत्मसात् करने से ही सम्पूर्णतः स्पष्ट होंगी।

इस में पूरिया-धनाश्री से बचने के लिए 'म ग म रि ग' यह स्वरावलि क़तई न छुई जाय। साथ ही अवरोह करते समय 'रिं नि ध प' 'नि रिं नि ध प' इन प्रयोगों से भी बचकर ही इसकी अलापचारी की जाय।

तद्वत् 'सा रि नि' नि सा रि नि, रि सा रि नि, सा रि सा रि नि, इस प्रकार मन्द्र 'नि' पर कभी न ठहरें। इस प्रकार 'नि' का ठहराव 'गौरी' का आविर्भाव करेगा। वैसे ही 'नि रि नि ग ऽ म गऽ नि रि ऽ सा', इस ढंग से राग के स्वरों का उच्चारण कभी न किया जाए, अन्यथा उससे पूरिया का आविर्भाव हो जायगा। पूर्वी के अपने अङ्ग के निदर्शन के लिये निम्नोक्त स्वरावलि कंठस्थ कर लें।

'नि रि ग मं रि ग, ग म रि ग म रि ऽ ग' ग म प-म ग म रि ग म ऽ ग, नि रि ग म ध म प ऽ म ग म रि ग म ऽ ग, म ग रि ऽ सा।

इसके पूर्वां, पूरबी, पूर्बा, पौरवी ऐसे अलग अलग नाम पाये जाते हैं। यह मध्य गति में गाया जाता है। थकान, निरुत्साह, दैन्य आदिक भाव इसके स्वरों में निदर्शित होते हैं।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग पूर्वी

मुक्त आलाप

सा सा नि॒ ध॒
(१) रि॒नि॒नि॒ ऽ ध॒ सा, सा ऽ सा नि॒ ध॒ सा, सा ऽ निध॒ ऽ म॒ ध॒ सा, रि॒रि॒सानि॒सा ऽ

ध॒ रि॒ नि॒
निध॒ सा, नि॒रि॒ग ऽ गमग ऽ म॒गरि॒सा।

रि॒ रि॒ रि॒ नि॒ रि॒ ध॒ नि॒
(२) नि॒रि॒ग ऽ मग, रि॒नि॒ ऽ रि॒ ग ऽ मग, ध॒नि॒रि॒ग ऽ मग, नि॒रि॒ रि॒ग ऽ मग, ध॒नि॒ नि॒रि॒ रि॒ग ऽ

रि॒ नि॒
मग ऽ, म॒ ग रि॒सा।

ग रि॒ रि॒
(३) रि॒रि॒सानि॒सा ऽ नि॒रि॒ग, गरि॒ रि॒नि॒ ऽ रि॒ ग ऽ मग, गरि॒ रि॒नि॒ निध॒ ध॒नि॒ नि॒रि॒ रि॒ग ऽ मग,

रि॒ रि॒ रि॒ रि॒
गरि॒रि॒नि॒ ऽ रि॒नि॒नि॒ध॒ ऽ ध॒नि॒नि॒रि॒रि॒ग ऽ मग, नि॒रि॒गमग, रि॒नि॒नि॒ ऽ रि॒गमग, नि॒ ऽ रि॒नि॒ रि॒ ऽ गरि॒ गमग, ध॒ ऽ निध॒

रि॒
नि ऽ रि॒नि॒ रि॒ ऽ गरि॒ गमग, म॒गरि॒सा।

रि॒ ग म॒ प ❀ रि॒ ❀ रि॒ ❀ रि॒
(४) नि॒ रि॒ ग म॒ प ऽ ऽ म॒ गमग, गम॒र ऽ म॒ गमग, गरि॒ म॒ग पम॒ प ऽ म॒ गमग, रि॒नि॒ गरि॒ म॒ग

❀ रि॒ ❀ रि॒ ❀ रि॒ ❀ रि॒
पम॒ प ऽ म॒ गमग, गमग रि॒गम॒र ऽ म॒ गमग, ममग रि॒गम॒प ऽ म॒ गमग, गगरि॒ म॒म॒ग पपम॒ ध॒म॒प ऽ म॒ गमग,

नि॒ नि॒ ❀ रि॒ नि॒
रि॒ रि॒सा निरि॒गम॒र ऽ म॒ गम ग, म॒गरि॒सा।

रि॒ ग म॒ प ध॒ रि॒ नि॒ रि॒ ग म ध॒ रि॒
(५) नि॒ रि॒ ग म॒ प ऽ म॒ ∿∿ ∿∿, गम ग, नि॒ रि॒ ग म॒ प ऽ म॒ ∿∿∿ गम॒ ग,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

❀ ध़ रि़ ❀ प म़ ❀ ध़ रि़
पम़ध़प ऽ म़ ऽ म़ 〰 〰 गम ग, प ऽ म़ ध़ प ऽ म़ म़ 〰 〰 गम ग, गम़ पम़ ऽ म़प ध़प

❀ ध़ रि़ ❀ ध़ रि़
ऽ म़ म़ 〰 〰 गम ग, निगरि़ रि़म़ग गपम़ म़ध़प ऽ म़ म़ 〰 〰 गम ग, निरि़गरि़ रि़गम़ग

❀ ध़ रि़ ❀ ध़ रि़ नि
गम़पम़ म़पध़प ऽ म़ म़ 〰 〰 गम ग, निरि़म़म़ग रि़गम़प ऽ म़ म़ 〰 गम ग, म़ ग रि़ सा।

ग म़ प म़ ❀ रि़ ❀ रि़ ❀
(५) नि रि़ ग म़ ध़प ऽ म़ गम ग, म़ ऽ ध़प ऽ म़ गम ग, रि़गमग ऽ गम़पम़ ऽ म़पध़प ऽ म़

रि़ म ❀ रि़ ❀ रि़
गम ग, म़पध़म़ध़ प ऽ म़ गम ग, गम़पगपम़ ऽ म़पध़म़ध़प ऽ म़ गम ग, रि़गमरि़मग ऽ गम़पगपम़ ऽ म़पध़म़ध़प ऽ

❀ रि़ ❀ रि़ ग म़ म़ ❀ रि़
म़ गम ग ऽ, निरि़ग निगरि़ ऽ रि़गमरि़मग ऽ गम़पगपम़ ऽ म़पध़म़ध़प ऽ म़ गम ग, गम़ म़प पध़ प ऽ म़ गम ग,

रि़ ग म़ म़ ❀ रि़ नि रि़ ग म़ ❀ रि़ नि
रि़ग गम़ म़प पध़ प ऽ म़ गम ग, निरि़ रि़ग गम़ म़प पध़ प ऽ म़ गम ग, म़गरि़ सा।

(६) म़पम़ध़प, गम़—गप—म़ध़प, रि़ग—रि़म़—गप—म़ध़प, निरि—निग—रि़म़—गप म़ध़प,

❀ रि़ म़ ❀
प ऽ म़ गम ग ऽऽ रि़ गम ऽ ग, नि ऽ रि़ग ऽ रि़ ऽ गम ऽ ग, ग ऽ म़प ऽ म़ ऽ पध़ ऽ प ऽ म़ गम रि़—गम ऽ ग,

गम—गम रि़—गम ऽ ग, म़प—म़प गम—गम रि़—गम ऽ ग, पध़—पध़ म़प—म़प गम—गम रि़ गम ऽ ग,

नि रि़ ग म़
निरि़—निरि़ रि़ग—रि़ग गम़—गम़ म़प—म़प पध़—पध़ म़प—म़प गम—गम रि़—गम ऽ ग, नि रि़ ग म़ प

❀ नि
ऽ म़ गम रि़—गम ऽ ग, म़ ग रि़ सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

❀ रि॒ प ❀ ❀ रि॒
(७) नि॒रि॒गम॒धप ऽ म॒ गम ग, ग म॒प ऽऽ म॒ धम॒प ऽ म॒ गम ग, रि॒ग ऽ रि॒ गम॒ ऽ ग म॒प ऽ म॒

❀ रि॒ रि॒ ❀ ग ❀ म॒ ❀ ❀ रि॒ ❀
पधम॒प ऽ म॒ गम ग, रि॒ग ग ऽ रि गम॒ म॒ ऽ ग म॒प प ऽ म॒ पधम॒प ऽ म॒ गम ग, गरि॒रि॒ म॒गग पमम॒ धम॒प ऽ म॒

रि॒ ❀ रि॒ ❀ रि॒ नि॒
गम ग, गम रि॒ गम ऽ ग ऽ म॒प म॒ पध॒ ऽ प ऽऽ म॒ गम ग, रि॒गम॒प ऽ म॒ गम ग, म॒गरि॒सा ।

ग म॒ ध नि ❀
(८) नि॒ रि॒ ग म॒ ध॒ नि ऽ ध॒म॒प ऽ म॒ गम रि॒ गम ऽ ग ; नि॒ ऽ गरि॒ ऽ रि॒ ऽ म॒ग ऽ ग ऽ पम॒ ऽ म॒ ऽ धप ऽ

❀ नि॒ रि॒ ग म॒ ❀
ध॒ ऽ निध॒ ऽ सांनिध॒प ऽ म॒ गम रि॒ गम ऽ ग, नि॒रि॒ रि॒ग गम॒ म॒ध॒ धनि ऽ सांनिध॒प ऽ म॒ गम रि॒ गम ऽ ग,

❀ ❀
रि॒नि॒नि॒ ऽ गरि॒रि॒ ऽ म॒गग ऽ पमम॒ ऽ ध॒ प ऽ निध॒ध॒ ऽ सांनिध॒प ऽ म॒ गम रि॒ गम ऽ ग, म॒धनि ऽ धनिरि॒ंनिध॒प ऽ म॒

प म॒
गम रि॒ गम ऽ ग, ग ऽ म॒ग म॒ ऽ धम॒ ध॒ ऽ निध॒ नि ऽ रि॒ंनि ध॒ प ऽ म॒ गम रि॒ ऽ गम ऽ ग, म॒ध॒निसां ऽ

निरि॒ंनिध॒प ऽ म॒ गम रि॒ गम ऽ ग, म॒गरि॒सा ।

नि॒ रि॒ ग म॒ ध॒ नि रि॒ ग म॒ प नि सां नि रि॒ रि॒ ग
(९) नि॒ रि॒ ग म॒ ध॒ नि सां ऽ निसां, नि॒ रि॒ ग म॒ ध॒ नि सां ऽ निसां, नि॒रि॒ग रि॒गम॒

ग म॒ म॒ ध॒ ध॒ नि
गम॒ध॒ म॒ध॒नि ध॒निसां ऽ निसां, निरि॒ग ऽ रि॒गम॒ ऽ गम॒ध॒ ऽ म॒ध॒नि ऽ ध॒निसां ऽ निसां, नि॒गरि॒ रि॒म॒ग गधम॒

नि॒ रि॒ ग म॒ ध॒ ❀ ❀ रि॒
म॒निध॒ सां ऽ निसां, नि॒रि॒ रि॒ग गम॒ म॒ध॒ ध॒नि निसां ऽ निसां, सां ऽऽ नि रि॒ंनिध॒प ऽ म॒ गमग ऽ

रि॒ नि॒
रि॒गम॒प ऽ म॒ गमग ऽ म॒गरि॒सा ।

रि॒ं रि॒ं
(१०) नि॒रि॒गम॒ ध॒निरि॒ंगं ऽ गंमंगं ऽ रि॒ंसां, निरि॒ंगंमं गं ऽ रि॒ंसां, रि॒ंनिनि गंरि॒ंरि॒ं म॒ंगंगं ऽ म॒ं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रि॒ॱ रि॒ॱ रि॒ॱ
गं ऽ रि॒ॱसां, निध॒ सानि रि॒ॱसां गंरि॒ॱ गंमं गं ऽ रि॒ॱसां, म॒ध॒निध॒ ध॒निसानि निरि॒ॱगंरि॒ॱ गंमं गं ऽ रि॒ॱसां,

रि॒ॱ रि॒ॱ रि॒ॱ रि॒ॱ
रि॒ॱरि॒ॱसांनिरि॒ॱगं ऽ मं गं ऽ रि॒ॱसां, निरि॒ॱगंमं गं, ध॒निरि॒ॱगंमं गं, ध॒ ऽ निध॒ नि ऽ रि॒ॱनि रि॒ॱ ऽ गंरि॒ॱ गंमंगं ऽ

❀ ❀ रि॒
म॒ॱगंरि॒ॱसां, रि॒ॱरि॒ॱसांनिसां ऽ नि रि॒ॱनिधप ऽ म॒ गमग, म॒गरि॒सा ।

ध॒ॱ रि॒ॱ ध॒ॱ रि॒ॱ
(११) निरि॒गम॒ ध॒निरि॒ॱगंम॒ॱपं ऽ म॒ॱ ∿∿ ∿∿ गंमंगं, म॒ॱ ∿∿ ∿∿ गंमंगं, गंमंपं ऽ म॒ॱध॒ॱम॒ॱ

रि॒ॱ रि॒ॱ ❀
∿∿ गंमंगं म॒ॱम॒ॱगंरि॒ॱगंम॒ॱपं ऽ म॒ॱध॒ॱम॒ॱ ∿∿ ∿∿ गंमंगं, निरि॒ॱ ऽ नि रि॒ॱगं ऽ रि॒ॱ गंमं ऽ गं पं ऽ म॒ॱ ध॒ॱम॒ॱ

रि॒ॱ ❀ रि॒
∿∿ ∿∿ गंमंगं ऽ ऽ म॒ॱगंरि॒ॱसां ऽ सांनिध॒प ऽ म॒ गमग ऽ म॒गरि॒सा ।

सा सा
(१२) निरि॒गम॒ ध॒निरि॒ॱगं ऽ ग, निरि॒गम॒ ध॒निरि॒ॱगंम॒ॱपं ऽ प, निरि॒गम॒ ध॒निरि॒ॱगम॒ॱपं ऽ म॒ॱध॒ॱम॒ॱ

सा रि॒ॱ सा रि॒
∿∿ प ऽ म॒ध॒म॒ ∿∿, निरि॒गम॒ध॒नि रि॒ॱगंम॒ॱपं ऽ म॒ॱध॒ॱम॒ॱ ऽ गंमंगं, प ऽ म॒ध॒म॒ ऽ गमग ऽ म॒गरि॒सा ।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग पूर्वी

मुक्त तानें

नि्रि्गग रि्गमगरि्सा, नि्रि्गम्पम् गमरि्गमगरि्सा। नि्रि्गगरि्सा नि्रि्गम्पम् गमरि्ग म्गरि्सा। नि्नि्नि् रि्रि्रि् गगग म्म्म् पम्गम रि्ग गरि्सानि्सा। नि्नि्नि् रि्रि्रि् गगग म्म्म् पधम्पम्ग रि्गमगरि्सा। नि्रि्गम् पधम्प गमरि्ग मगरि्सा, पध्प म्पम् गमग रि्गग रि्गमग रि्सानि्सा। नि्रि्गग रि्गम्म् गम्पम् गमरि्ग मगरि्सा। नि्रि्ग नि्ऽगगरि्, रि्गम् रि्ऽम्म्ग, गम्प गऽपम् गमरि्ग मगरि्सा। नि्रि्गम्गरि् रि्गम्पम्ग गमरि्ग मगरि्सा। नि्रि्गम्ग रि्गरि्, रि्गम्पम् गमग, गम्पध्प म्पम्, गमरि्ग मगरि्सा। पध्प म्पम् गमग रि्गरि्, पध्प पध्प म्पम् म्पम् गम्ग गम्ग रि्गरि् रि्गरि्, गम्पम् गमरि्ग मगरि्सा। नि्गरिसा रि्म्गरि् गपम्ग म्धपम् गमरि्ग मगरि्सा। नि्नि् गग म्म् निनिध्पम्प गमरि्ग मगरि्सा, नि्नि्नि् रि्रि्रि् गगग निनिनिध्प पध्पम् गमरि्ग मगरि्सानि्सा। नि्नि्नि् गगग म्म्म् निनिनिध्पम्प गमरि्ग मगरि्सा। नि्रि्रि्सा रि्गगरि् गम्म्ग म्धध्म् ध्निनिध् पम्म्प गमरि्ग म्गरि्सा। नि्रि्रि्सा रि्गगरि् गम्म्ग म्धध्म् ध्निनिध् पध्म्प गमरि्ग मगरि्सा। ध्निनि ध्निनि ध्प पध्म्प गमरि्ग मगरि्सा, रि्गग रि्गगरि्सा, ध्निनि ध्निनिध्प, पध्म्प गमरि्ग मगरि्सा। रि्गग रि्गग ध्निनि ध्निनि म्धध् म्धध् गम्म् गम्म् रि्गग रि्गग निरि्गम्पम् गमरि्ग मगरि्सा। नि्रि्गम्ध्नि सांनिध्पम्प गमरि्ग मगरि्सा। नि्रि्गम् ध्निसांरि्' सांनिध्प पध्म्प गमरि्ग मगरि्सा। नि्रि्गरि् रि्गम्ग गम्ध्म् म्ध्निध् ध्निसांनि ध्निसांरि्' सांनिध्प पध्म्प गमरि्ग मगरि्सा, ध्निसांरि्'सांनि ध्निनि ध्निनिध्प पध्ध् पध्म्म्प गमम् गम्म्रि्ग मगरि्सानि्सा। नि्रि्गरि् रि्गम्ग गम्पम् गमगरि् गम्पम् म्गरि्सा, नि्रि्गम् ध्निध्प म्धम्प गमगरि् गम्पम् म्गरि्सा। रि्गग रि्गगरि्सा ध्निनि ध्निनिध्प रि्'गं'गं' रि्'गं'गं'रि्'सां सांनिध्प म्धम्प गमगरि् गम्पम् म्गरि्सा। नि्रि्गरि् रि्गम्ग गम्धम् म्ध्निध् ध्निसांरि्' सांनिध्प म्धम्प गम्पम् गमरि्ग मगरि्सा। नि्रि्गम् ध्निनिरि्' गं'म्'पं'म्' म्'गं'रि्'सां सांनिध्प म्धम्प गम्पम् गमरि्ग मगरि्सा। गगरि्गरि्सा म्म्गम्गरि् धध्म्धम्ग निनिध्निध्प सांसांनिसांनिध् गं'गं'रि्'गं'रि्'सां म्'म्'गं'म्'गं'रि्' गं'गं'रि्'गं'रि्'सां सांसांनिसांनिध् निनिध्निध्प ध्धम्धम्ग म्म्गम्गरि् गगरि्गरि्सा। सारि्सा नि्सानि्, रि्गरि् सारि्सा, गम्ग रि्गरि् म्पम् गम्ग, पध्प म्पम्, ध्निध् पध्प, निसांनि ध्निध्, सांरि्'सां निसांनि, रि्'गं'रि्' सांरि्'सां, गं'म्'गं' रि्'गं'रि्', रि्'गं'रि्' सांरि्'सां, सांरि्'सां निसांनि, निसांनि ध्निध्, ध्निध् पध्प, पध्प म्पम्, गम्ग रि्गरि्, रि्गरि् सारि्सा। सांरि्'सां सांरि्'सां, निसांनि निसांनि, ध्निध् ध्निध्, पध्प पध्प, म्पम् म्पम्, गम्ग गम्ग, रि्गरि् रि्गरि्, सारि्सा सारि्सा। निसांरि्'सां ध्निसांनि, निसांरि्'सां ध्निसांनि म्ध्निध्, निसांरि्'सां ध्निसांनि म्ध्निध् गम्धम्, निसांरि्'सां ध्निसांनि म्ध्निध् गम्धम् रि्गमग, निसांरि्'सां ध्निसांनि म्ध्निध् गम्धम् रि्गमग सारि्गरि् नि्सारि्सा। निरि्रि्ग गरि्रि्सा, रि्गगम् म्गगरि्, गम्म्प पम्म्ग, म्पपध् ध्पपम् म्ध्ध्नि निध्ध्प, ध्निनिसां सांनिनिध्, निसांसांरि्' रि्'सांसांनि, रि्'सांसांनि निध्ध्प ध्पपम् पम्म्ग रि्गमग रि्गरि्सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग पूर्वी

विलम्बित ख्याल—तिलवाड़ा

गीत

स्थायी—पियरवा की बाँह सो मोहे भावे,
लागे गरवा ए पिया।

अन्तरा—तू जिन लजावही, तो सी तू बड़भागन,
सुलछनी नार, पियरवा ॥

स्थायी

०				१३			
					-- म॒ध॒	म॒ - ग -	रि॒सासानि॒ - रि॒ ग रि॒
					SS पि०	य SरS	वा०००S००की

×				५			
ग म ---	प ग ---	ग प - ध॒पपम॒ -	-- प ध॒	पध॒म॒ --	ग - रि॒ गम	ग ---	- म॒ ध॒ म॒
बाँ SSS	ह SSS	सोंS००००S	SS मो हे	भा००SS	०S०००	वे SSS	S ला ० गे

०				१३			
ग ---	रि॒गरि॒ -	सा ---	रि॒सासानि॒ - - रि॒	ग ---	-- म॒ध॒	म॒ ग --	रि॒सासानि॒ - रि॒ ग रि॒
ग SSS	र००S	वा SSS	ए ०००SSपि	या SSS	SS पि०	यरSS	वा००० S००की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

०				१२			
				– – मू – ध	धू सां – सां –	सां – सां –	– – निरिं
				ऽ ऽ तू ऽ •	जि ऽ न ऽ	ल ऽ भा ऽ	ऽ ऽ • व

×				५			
सां – – –	– नि – धू	नि – – –	- धुनि निरिं' नि	धू – – –	प – – –	पधूमूप - - मूग	रि ग रि गम
ही ऽ ऽ ऽ	ऽ तां ऽ सी	तू ऽ ऽ ऽ	ऽ व • • • ड़	भा ऽ ऽ ऽ	• ऽ ऽ ऽ	•••• ऽ ऽ ••	ग • • • •

०				१३			
ग – – –	मूधू धुनि निरिं' नि	धू – प –	पधूमूप - - मूग	रि ग रि गन	ग -, मूधू	मू – ग –	रिंसांसांनि - रिं ग रिं
न ऽ ऽ ऽ	सु • ल • छ • •	नी ऽ • ऽ	नां •• • ऽ ऽ ••	र • • • •	• ऽ, पि •	ध ऽ र ऽ	वा • • • ऽ • • की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग पूर्वी

विलम्बित ख्याल—तिलवाड़ा

गीत

स्थायी—पियरवा की बाँह सो मोहे भावे,
लागे गरवा प पिया।

अन्तरा—तू जिन लजावही, तो सी तू बड़भागन,
सुलछनी नार, पियरवा ॥

स्थायी

०				१२			
					-- म्ध्	म्-ग-	रि्सासानि्-रि्गरि्
					ऽऽपि०	यऽरऽ	वा०००ऽ००की

×				५			
(ग) म---	(प) ग---	(ग) प-ध्पपम्-	--पध्	पध्म्--	ग-रि्गम	ग---	-म्ध्म्
बाँऽऽऽ	हऽऽऽ	सोंऽ०००ऽ	ऽऽमोहे	भा००ऽऽ	०ऽ०००	वेऽऽऽ	ऽला०गे

०				१३			
ग---	रि्गरि्-	सा---	रि्सासानि्--रि्	ग---	--म्ध्	म्ग--	रि्सासानि्-रि्गरि्
गऽऽऽ	र००ऽ	वाऽऽऽ	प०००ऽऽपि	याऽऽऽ	ऽऽपि०	यरऽऽ	वा०००ऽ००की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

०				१३			
				– – मू – घ	सां – सां –	सां – सां –	– – निरिं
				ऽ ऽ तू ऽ •	जि ऽ न ऽ	ल ऽ बा ऽ	ऽ ऽ • व

×				५			
सां – – –	– नि – धू	नि – – –	- धुनि निरिं' नि	धू – – –	प – – –	पधूमूप - - मूग	रि ग रि गम
ही ऽ ऽ ऽ	ऽ तां ऽ सी	तू ऽ ऽ ऽ	ऽ व • • • ड़	भा ऽ ऽ ऽ	• ऽ ऽ ऽ	•••• ऽ ऽ ••	ग • • • •

०				१३			
ग – – –	मूधू धूनि निरिं' नि	धू – प –	पधूमूप - - मूग	रि ग रि गम	ग -, मूधू	मू – ग –	रिंसासानि - रि ग रि
न ऽ ऽ ऽ	सु • ल • छ • •	नी ऽ • ऽ	नां ••• ऽऽ ••	र • • • •	• ऽ, पि •	य ऽ र ऽ	वा • • • ऽ • • की

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग पूर्वी

त्रिताल

गीत

स्थायी—अरि ये मैं का सब सुख दीना,
दूध पूत अरु अन धन लछमी, पियु पायो गविन्द रंग भीना।

अन्तरा—अधम उधारन, जग निस्तारन, कृपा करन,
दुखहरन, सुख सदन, सब बातन मों लायक कीना॥

स्थाई

×				२				०				१३			
								ग	रि॒	गम॒	पम॒	ग	(ग)रि॒	ग	म॒
								अ	रि	ये०	००	मैं	०	का	०
प	ध॒	म॒	प	ग	(प)म	(रि॒)ग	—	म॒	—	ग	रि॒	—	सा	सा	सा
स	ब	सु	ख	दी	०	ना	ऽ	दू	ऽ	ध	पू	ऽ	त	अ	रु
नि॒	रि॒	ग	—	रि॒	सा	सा	सा	नि॒	नि॒	रि॒	—	ग	—	म॒	ध॒
अ	न	ध	ऽ	न	ल	छ	मी	पि	यु	पा	ऽ	यो	ऽ	गो	०
नि	सांरि॒	नि	ध॒	प	—	म॒ग	ध॒ग								
वि	द०	रं	ग	भी	ऽ	ना०	००								

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×				५				०				१३			
								म्	ग	ग	ग	म्	–	धम्	ध्
								अ	ध	म	उ	बा	ऽ	र•	न
सां	सां	सां	–	सां	–नि	रिं	सां	रिं	गं	–	मं	गं	रिं	सां	सां
ज	ग	नि	ऽ	स्ता	ऽ•	र	न	कु	पा	ऽ	क	र	न	दु	ख
रिं	नि	ध्	नि	ध्	प	म्	ग	म्	म्	ग	–	ध् म्	नि ध्	नि	स
ह	र	न	सु	स	स	द	न	स	ब	बा	ऽ	त	न	मों	•
ध् नि	नि रिं	नि	ध्	प	–	म्प	ध्प								
ला	•	य	क	की	ऽ	ना•	••								

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानें

	×				५				०				१३			
१)				पध्	पम्	गम	रिग	मग	अ	रि	ए०	०	मैं	०	का	०
२)				निरि	गम्	पम्	गम	रिग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३)	निरि	गम्	प –	– म्	गम	रिग	मग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४)				पध्	प, म्	पम्	गम	रिग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५)			निरि	गम्	पध्	मप	गम	रिग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
६)	निनि	रिरि	गग	मम्	पध्	पम्	गम	रिग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७)	पध्	प, प	प	मप	म, म्	पम्	गम	रग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८)	गम्	पम्	मप	धप	प ऽ	पम्	म	रिग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
९)	पध्	प ऽ	मप	मप	गम	गम	रिग	मग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
१०) नि्रि्	रि्ग	गम्	मूप	पध्	पम्	गम	रि्ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,	,,
११) निनि	निनि	निनि	ध्प	ध्	मूप	गम	रि्ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१२) मूग	रि्सा	सांनि	ध्प	पध्	प	गम	रि्ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१३) नि्रि्	गम्	ध्नि	नि,ध्	निनि	ध्प	मूग	रि्सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१४) मूग	मूग	रि्सा	सांनि	सांनि	ध्प	मूग	रि्सा	,,	,,	,	,,	,,	,,	,,	,,
१५) नि्रि्	गम्	ध्सां	– नि	ध्प	मूग	रि्सां	नि्सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१६) नि्रि्	गम्	ध्नि	मूध्	सांनि	ध्प	मूग	रि्सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१७) नि्रि्	गम्	ध्नि	सांरि्ं	सांनि	धप	मूग	रि्सा	,,	,,	,	,,	,,	,,	,,	,,
१८) सासा	सा,सां	सांसा	सांरि्ं	सांनि	ध्प	मूग	रि्सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
१९) सासां	– सां	सांनि	ध्प	पध्	मूप	गम	रि्ग	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

× ५ ० १३

२०) सासां | -रि॒ं | सांनि | धूप | मूप | -मू | गम | रि॒ग | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,, | ,,

२१) सानि॒ | रि॒सा | पमू | धूप | सांनि | रि॒ंसां | पमू | धूप | गम | रिग | अरि | ये ० | मैं ० | का | - | पध॒

पमू | गम | रि॒ग | अरि | ये ० | मैं ० | का | - | पधू | पमू | गम | रि॒ग | अरि | ये ० | मैं ० | का०

२२) नि॒रि॒ | गमू | धूनि | सांरि॒ं | सांनि | धूप | पधू | मूप | गम | रि॒ग | मूग | रि॒सा | अरि | ये ० | मैं ० | का०

- | धूमप - हो००ऽ | अरि | ये ० | मैं ० | का | - | धूमूप - हो००ऽ | अरि | ये | मैं ० | का ० | स | ब | स | ब

२३) नि॒रि॒ | गरि॒ | रि॒ग | मूग | गमू | पमू | मूप | धूप | मूधू | निधू | धूनि | सांनि | निसां | रि॒ंसां | धूनि | सांनि

मूधू | निधू | मूप | धूप | गमू | पमू | गम | रि॒ग | अरि | ये ० | अरि | ये ० | अरि | ये ० | मैं ० | का०

२४) नि॒रि॒ | गमू | धूनि | सांनि | धूप | मूग | रि॒सा | नि॒रि॒ | गमू | धूनि | सांरि॒ं | सांनि | धूप | मग | रि॒सा | नि॒रि॒

गमू | धूनि॒ | निरि॒ं | गंगं | रि॒ंसां | सांनि | धूप | मूग | रि॒सा | नि॒रि॒ | गमू | धूनि | सां ० | ०० | मैं ० | का०

२५) नि॒नि॒ | नि॒,रि॒ | रि॒रि॒, | गग | ग, मू | मूमू, | धूधू | धू, नि | निनि, | रि॒ंरि॒ं | रिं, गं | गंगं, | रि॒ंसां | सांनि | धूप | मूग

रि॒सा, | नि॒नि॒ | नि॒, ग | गग, | निनि | नि, गं | गंगं | रि॒ंसां | सांनि | धूप | मूग | रि॒ग | अरि | ये ० | मैं ० | का ०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

	X				५				०				१३			
२६)					निरि	गम्	पध्	पम्	धध्	पम्	पध्	पम्	गम	रिग	मग	रिसा
	पध	प, प	धप,	मप	म, म	पम्	गम	ग, ग	मग	रिग	मग	रिंसा	निरि	निरि	रिग	रिग
	गम	गम्	मप	म प	पध्	पध्	मप	मध्	पध्	मप	गम	गम	रिग	रिग	मग	रसा
	ओरि	ये ०	मैं	का ०	, ।	ब	अरि	ये ०	मैं ०	का ०	स	ब	अरि	ये ०	मैं ०	का ०

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग श्री

आरोह-अवरोह—सा रि॒ ऽ प ऽ ग प म॒ ध॒ ऽ प, ध॒ नि रि॒ नि ध॒ ऽ प म॒ ध॒ ऽ म॒ ग रि ऽ प रि॒ ऽ ग रि॒ ऽ सा।

जाति—औडव-वक्र सम्पूर्ण।

ग्रह—ऋषभ।

अंश—ऋषभ ; उपांश-धैवत।

न्यास—पञ्चम।

अपन्यास—ऋषभ।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य-अंग—रि॒ प ऽ प रि॒, रि॒ ऽ गरि॒ ऽ सा, ध॒ ऽ निध॒ ऽ प।

समय—सन्ध्या।

प्रकृति—द्रष्टव्य विशेष विवरण।

विशेष विवरण

राग-रागिनी की वर्गीकरण-परम्परा में 'श्री' राग का प्रमुख पुरुष रागों में स्थान पाया जाता है। शंकर के पाँच मुखों से अन्य पाँच रागों की एवं पार्वती के 'श्रीमुख' से इस छठे राग की उत्पत्ति मानी जाने के कारण इस राग का नाम 'श्री' है, ऐसी मान्यता प्रचलित है। इस राग का चलन कठिन है। इसीलिए विशेष योग्यता वाले गुणी ही इसको बरतते हुए देखे जाते हैं। 'रि॒-प' 'प-रि॒' ये संवाद-रहित स्वर-संगतियाँ और रि॒ गरि॒ ऽ सा, ध॒ निध॒ ऽ प, ऐसे आघात के स्वरोच्चार वाली क्रियाएं देखते हुए यह भयानक रस का द्योतक राग प्रतीत होता है। इसमें 'रि॒-ध' कोमल हैं और मध्यम तीव्रतर है, आरोह में गान्धार-पञ्चम वर्ज्य हैं। कुछ परम्परा ऐसी भी हैं जिन में गान्धार-धैवत वर्ज्य करके रि॒ म॒ प निसां यों इसका आरोह किया जाता है; हमारी परम्परा रि॒ म॒ ध॒ निसां ही जाने की आज्ञा देती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। साथ ही रि़ ऽ गरि़ ऽ सा, ध़ ऽ निध़ ऽ प अथवा म़ ध़ निध़ ऽ प और म़ ध़ म़ ग रि़—ये क्रियाएं जो कि मुख्यतः रागवाची हैं, 'रि़ म़ प नि' के आरोह की स्वीकृति नहीं देती हैं। कर्णाटक प्रदेश में जिस प्रकार के 'श्री राग' का प्रचार है, जो हमारे सारंग से मिलता जुलता है, उसके आरोह में 'रि़ म प निसां' जाना समुचित है। किन्तु हमारे 'श्री' के स्वरों को और चलन को देखते हुए 'रि़ म़ पनि सां' का आरोह ग्राह्य नहीं है। 'रि़ म़ पनि' का आरोह करना उतना कठिन नहीं है, जितना 'रि म़ ध़ नि' कष्ट-साध्य है। जो राग कठिन माने गये हैं, उनमें मुख्यतः स्वरों की कष्ट-साध्य अवस्था को दृष्टि में रखकर ही वैसी मान्यता बनी है। इस राग का सामान्य चलन निम्नोक्त है।

रि़ ऽ गरि़ ऽ सा, सा नि़ रि़ ऽ गरि़ ऽ सा, रि़ म़ रि़, रि़ प ऽ रि़, रि़ प म़ ध़ ऽ म़ ग रि़,

रि़ प ऽ रि़ ऽ गरि़ ऽ सा।

रि़ प, म़ ध़ ऽ निध़ ऽ प, प म़ ध़ ऽ निध़ ऽ प, रि प म़ ध़ ऽ निध़ ऽ प, रिम़ ध़नि,

रिं नि ध़ ऽ प, म़ ध़ ऽ म़ ग रि़, प रि़ ऽ गरि़ ऽ सा।

रि़ म़ ध़ नि रिं ऽ गंरिं ऽ सां, सां नि रिं ऽ गंरिं ऽ सां, नि रिं ऽ नि ध़ ऽ प, म़ ध़ ऽ

म़ ग रि़, प रि़ ऽ गरि़ ऽ सा।

इस राग के जो मुक्त आलाप दिए हैं, उनमें 'रि़ म़ प नि सां' के आरोह का भी दिग्दर्शन करा दिया गया है।

इसके चलन को देखते हुए ऋषभ इसका ग्रह, अंश और उपन्यास स्वर है, धैवत उसका उपांग और पञ्चम न्यास है। ऋषभ-पंचम, पंचम-ऋषभ की स्वर-संगतियाँ इसके रागत्व को अभिव्यक्त करती हैं। 'रि़ - प' 'प - रि़' के सदृश रि़ - ध़' 'ध़ - रि़', 'रि़ - म़', 'म़ - रि़' से भी 'श्री' की अभिव्यक्ति होती है, क्योंकि ये स्वर-संगतियाँ अन्य किसी राग में नहीं ली जातीं। रि़ ऽ गरि़ ऽ सा, ध़ निध़ ऽ प, निरिं नि ध़ ऽ प, म़ ध म़ ग रि़ ये स्वर-क्रियाएं, इस राग की अभिव्यक्ति में सहायक हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह राग शाम को, सन्ध्या की वेला में गाया बजाया जाता है। सान्ध्या-वेला में प्रकृति क्लान्त और शान्त रहती है। ऐसे वातावरण में इस भीषण राग-रूप का प्रयोग क्यों किया होगा, भावदृष्टि से यह विचारणीय है। तांत्रिकों की दृष्टि में सन्ध्या काल पैशाचिक क्रियाओं के लिए उपयुक्त माना गया है। शंकर के गणों का वह जागृति काल है। इसीलिए तो इस भीषण राग का इस काल में उपयोग नहीं होता होगा! शंकर के घोर ताण्डव नृत्य का यही काल माना गया है। इस भयानक राग के साथ उसका तो कोई संबंध नहीं है?

प्राकृतिक नियमानुसार सूर्योदय के समय जो प्राणी जागृति का अनुभव पाते हैं, वे सभी सूर्यास्त के बाद शान्त होकर विश्राम की कामना करते हैं, और निद्रा की गोद में जाना चाहते हैं, किन्तु प्राणि-मात्र का जो विश्राम काल है, वही उलूक जैसे पक्षियों का जागृति-काल है। निशाचरों का वह उदय काल है, चाहे प्राणिमात्र का वह अस्त-काल हो। महर्षियों ने इन सब पहलुओं को देखकर तो इस राग के लिये यह समय निर्धारित नहीं किया होगा?

संगीत के क्षेत्र में कितने ही अनुसन्धान कार्य हैं, जिनमें यह भी एक है। कोई द्रष्टा उसे देखेगा, जीवन के तप से खोजकर, इन रागों की विशेषताओं के रहस्य को उद्घाटित करेगा और जगत् को प्रदान करेगा।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग श्री

मुक्त आलाप

(१) सा, रि् ऽ गरि् ऽ ऽ सा, निसा सारि् ऽ गरि् ऽ ऽ सां, सा ऽ नि रि् ऽ ऽ गरि् ऽ ऽ सा,
नि ऽ ध् सा ऽ नि रि् ऽ ऽ गरि् ऽ सा, सा ऽ नि नि ऽ ध् साऽनि रि् ऽ ऽ गरि् ऽ ऽ सा, सानि निध्
सानि रि् ऽ ऽ गरि् ऽ ऽ सा।

(२) सा, रिनिध् ऽ प, प ऽ म् ऽ नि ऽ निऽनिध् ऽ ऽ प, म्प पध् ऽ नि ऽ निध् ऽ प,
ध् पपम् ऽ पम्ध् ऽ सानिरि ऽ ग ऽ गरि ऽ ऽ सा, म्पप ध् ऽ निसानिरि ऽ ग ऽ गरि ऽ सा, ग ऽ गरिऽसा निऽनिध्
ऽप सानिरि ऽ गरि ऽ सा, ग ऽ गरि ऽ निऽनिध् ऽ ध् ऽ ध म् ऽ पसानिरि ऽ ग ऽ गरि ऽऽ सा।

(३) सारिनिसा ऽ नि रि ऽ ग ऽ गरि ऽ ऽ सा, पध म् प सारिनिसा ऽ निरि ऽ ग ऽ गरि ऽ सा, रि ऽ नि
नि ऽ ध् ध् ऽ म् ध् म् निध् सानि रि ऽ ग ऽ गरि ऽ ऽ सा, रिनिनि निध् ध् ऽ निध् प् ध् म् म्
ध् म् म् निध् ध् सानिनि रि ऽऽ ग ऽ गरि ऽ सा।

(४) निसा सारि ऽ ग ऽ गरि ऽ, म्पपध् ऽ निसासारि ऽ ग ऽ गरि ऽ, म्प पध् ध्नि निसा सारि
ऽ ऽ ग ऽ गरि ऽ, पम् म् ऽ निध् ध् ऽ सानिनि ऽ रि ऽऽ गरि ऽ सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सा
(५) द्रि द्रिसानिसा द्रि ऽ गऽगद्रि ऽ, धधपमप ध ऽ नि ऽ निध ऽ ग ऽ गद्रि ऽ, द्रिद्रिसानिसा

नि प म रि नि सा
द्रि ऽ सा नि द्रि ऽ ग ऽ गद्रि ऽ, धध पम प धऽ प मध ऽ निऽनिध. ऽ ग ऽ गद्रि ऽ, नि ध ऽ सा नि

रि
द्रि सा ऽ ऽ ग ऽ गद्रि ऽ, नि ऽ निध ऽ ग ऽ गद्रि ऽ, ध ऽ ध म ऽ नि ऽ निध ऽ रिऽरिनि ऽ गऽगद्रि ऽऽ सा।

सा सा रि ग रि म म म
(६) रि रिसानिसा रि म ∿ रि, रि म ∿ रि, निम ∿ रि म नि ∿ नि

नि म म म प नि ध नि सा म म
म ∿ रि, निसाद्रिम ∿ द्रि. म प नि सा ऽ नि सा द्रिम ∿ द्रि, द्रिद्रिसानिसा—द्रिम ∿ द्रि,

म म म
ध ध पम पनिसा ऽ द्रिद्रिसानिसाद्रिम ∿ द्रि, सानिद्रिसा म ∿ द्रि, पम धप सानिद्रिसा—म ∿ द्रि, निसा

नि म म नि म म
साम ∿ द्रि, म प पसा ऽ निसा साम ∿ द्रि, द्रिसासा म ∿ द्रि, सानिनि—द्रिसासा म ∿ द्रि,

म म म
पमम—धपप सानिनि—द्रिसासा म ∿ द्रि, पम मधपप ऽ सानिनि—द्रिसासा ऽ म ∿ रि, म प पनि

ध नि सा म
निसा सारि रिम ∿ रि ऽ ऽ ग ऽ गरि ऽ सा।

सा ग प ग रि प
(७) सा, नि रि ऽ रि प ∿ रि, ग ऽ गरि ऽ प ऽ ऽ रि, रिम मप ऽ धमप ऽ रि,

सा रि प म
गरिरि रिमम मपप धमप ऽ रि, रिपम ध ऽ मग रि ऽऽ प ऽ रि ऽऽ गद्रि ऽ सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प
(८) सा ऽ नि़रि़नि़ध़ ऽ प़ ऽ सा ऽ प ऽ ऽ रि़, सारि़नि़सा ऽ प ऽ ऽ रि़, प़ध़म़प़ ऽ

प
सारि़नि़सा ऽ प ऽऽ रि़; रि़नि़नि ऽ गरि़रि़ ऽ प ऽऽ रि़, रि़ प म़ ध़ ऽ म़ग रि़ ऽऽ प ऽऽ रि़ ऽ

गरि़ ऽ सा।

ग रि़
(९) सा ऽ रि़ ऽ प ऽ म़प, नि़सारि म़ रि़ प ऽऽ म़प, नि़सारि म़ ऽ नि़सारि प़ ऽऽ म़प,

रि़रि़
नि़सारि़ नि़सारि़ म़ ऽऽ नि़सारि़ नि़सारि़ प ऽऽ म़प, रि़ ऽ रि़ सा ऽ गऽ गरि़ ऽ प ऽऽ म़प, गगरि़— नि़सारि़ प ऽऽ म़प,

रि़गि नि़नि ध़ध़ प रि़
गगरि़ रि़रि़नि़ नि़नि़ध़ ध़ध़प़ प ऽ म़प, गरि़—रि़नि़ रि़ ऽ प ऽऽ म़प, गरि़ रि़मि नि़ ध़ रि़नि़रि़ ऽ

ग ग नि़ ध़ म़
रि़ प ऽऽ म़प, गरि़ रि़मि नि़ध़ धम़ नि़ध़ रि़नि़रि ऽ प ऽऽ म़प, गरि़रि़नि़ ऽ रि़नि़नि़ध़ ऽध़ पपम़ ऽ

प प
प ऽऽ म़प, पम़ ऽ ध़ ऽ म़ग रि़, प ऽऽ रि़ ऽ ग ऽ गरि़ ऽ सा।

सा ग रि़
(१०) रि़रि़सा नि़सा रि़ ऽ प ऽ म़प, रि़ ऽ गरि़ ऽ प ऽ म़प, रि़ग—गरि़ ऽ प ऽ म़प, सारि़ रि़ सा

नि़ सा प प
रि़गगरि़ प ऽऽ म़प, रि़रि़सासा गगरि़रि़ प ऽ म़प, पम़ध़ ऽ म़ग रि़ ऽऽ प ऽ रि़ ऽ गरि़ ऽ सा।

प म़ ध़ नि़ रि़ प
(११) नि़सारि़ म़ध ऽ म़ग रि़ ऽ प ऽऽ म़प, म़ध़ ध़नि़ नि़रि़ रि़म़ म़ध़ ऽ म़ग रि़ ऽ प ऽ म़प,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निनि ध़   सासा नि   मम़ रि़ म़   प
म़-प़ सासानिनि ऽ निसारि़रि़सासा ऽ निसापपम़म़ ऽ रि़ऽपऽऽम़ध़, म़ध़ ऽ म़ग रि़ ऽ

रि़
पऽरि़ ऽगरि़ ऽसा।

(१२) रि़पम़ध़ऽ निध़ऽप. प़सानिरि़ऽऽरि़पम़ध़ऽ निध़ऽप, प़सानिरि़ ऽ गरि़ऽ रि़पम़ध़ऽ

म़   नि   म़
निध़ऽप, ध़ध़पमध़ऽ निध़ऽप, ध़ध़पप ऽम़ध़ऽ निध़ऽप, रि़रि़सासा ऽ निरि़ऽगरि़ऽ ध़ध़पप ऽम़ध़ऽ

नि   म़
निध़ऽप, रि़रि़सासा ऽ निरि़ ऽ गऽगरि़ऽ ध़ध़पप ऽम़ध़ ऽ निऽनिध़ऽप, सानि रि़सा गरि़ पम़ध़ ऽ

प रि़
निऽनिध़ऽप, पम़ध़प सानिरि़सा गरि़पम़ ध़ऽ नि ऽ निध़ऽप, म़ध़ऽम़ग रि़ऽपऽऽरि़ गरि़ऽसा।

(१३) सा, पम़ध़ऽ रि़पम़ध़ऽ निसारि़म़ध़ऽ म़प़निसारि़म़ध़ऽ नि ऽ निध़ऽप, पऽपम़ऽम़ऽम़ग

प
ऽगऽगरि़ऽपम़ध़ऽम़ग रि़ऽपऽऽरि़ऽगरि़ऽसा।

नि रि़
(१४) सा रि़ पऽम़ध़ऽ ध़म़म़ऽपसां ऽ निसां, निसारि़म़ध़नि ऽ ध़म़म़ऽ पसां ऽ निसां, निरि़रि़सा

नि सा रि़ म़
सागगरि़ रि़पपम़ म़निनिध़ऽध़म़ऽपसां ऽ निसां; निसा सारि़ रि़म़ म़ध़ ध़नि ऽ निध़ऽ ध़म़ऽ पसां ऽ निसां,

ध़   प
निरि़' ऽ निध़ऽप, म़ध़ऽम़ग रि़ऽऽप:ऽऽरि़ऽऽगरि़ऽसा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१५) ध्रिध्रिसानिसाध्रिमपनि ऽ, ध्‌ध्‌पम्‌प्‌ नि ऽ ध्रिध्रिसानिसा म्‌ ऽ धधपमप नि, पमम्‌ नि, गध्रिध्रि पमम्‌ धपप नि, सानिनि ध्रिसासा गध्रिध्रि पमम्‌ धपप नि, सां ऽ निसां, निरि॑ ऽ निध्‌ ऽ प ऽ म्‌ध्‌ ऽ म्‌गरि्‌ ऽ प ऽ रि्‌ ऽ गरि्‌ ऽ सा ।

(१६) निसारिम्‌पनि ऽ सां ऽ निसां, रिम्‌प सां ऽ निसां, पधम्‌प ऽ पसां ऽ निसां, रिम्‌ म्‌प पनि ऽ धमम्‌ ऽ प सां ऽ निसां, निरि॑ ऽ निध्‌ ऽ प, म्‌ध्‌ ऽ म्‌ग रि्‌ ऽ प ऽ ऽ रि्‌ ऽ गरि्‌ ऽ सा ।

(१७) निसारि्‌प ऽ ऽ रि्‌, रिम्‌पध्‌ ऽ ऽ रि्‌, म्‌पनिसां ऽ रि्‌, ध्‌निसां रि॑ ऽ रि्‌, प सां, रिसासा गरि रि्‌ प ऽ रि्‌, गरि रि्‌ पमम्‌ ध्‌ ऽ रि्‌, पमम्‌ धपप सां ऽ ऽ रि्‌ प सां ऽ निसां, सारि्‌ रिम म्‌प ऽ रि्‌, रिम्‌ म्‌प पध्‌ ऽ रि्‌, म्‌प पनि निसां ऽ रि॑ ऽ पसां ऽ निसां, सरि्‌निसा पधम्‌प ऽ ऽ रि्‌, पधम्‌प सारि॑निसां ऽ ऽ रि॑, सारि्‌निसा पधम्‌प सां ऽ निसां, निरि॑ ऽ निध्‌ ऽ प, म्‌ध्‌ ऽ म्‌ग रि्‌ ऽ रि्‌ ऽ ऽ रि्‌ ऽ गरि्‌ ऽ सा ।

(१८) धपम्‌ ऽ ध्‌ सां ऽ निसां, धम्‌म्‌ ऽ पसां ऽ निसां, धम्‌म्‌ ऽ ध्‌ ऽ निध्‌ ऽ प, सां ऽ निसां, रि्‌निरि्‌ ऽ गरि्‌ ऽ पमध्‌ ऽ निध्‌ ऽ पसां ऽ निसां, निसारिम्‌प सां ऽ निसां, निसा सारि्‌ रिम्‌ म्‌प पसां ऽ निसां,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रिनिनि गरिरि पमम धपप सां ऽ निसां, निरिगरि ऽ मधनिध ऽ सां ऽ निसां, गरिरि — गरिरि ऽ निधध — निधध ऽ

सां ऽ निसां, सांनिरिं ऽ गं ऽ गंरिं ऽ सां, नि ऽ निध ऽ प गं ऽ गंरिं ऽ सां, ग ऽ गरि ऽ नि ऽ निध ऽ गं ऽ गंरिं ऽ

सां, गंरिंरिं — रिंनिनि ऽ रिंनिनि — निधध ऽ गं ऽ गंरिं ऽ सां, गरिंरिं — रिंनिनि ऽ रिंनिनि — निधध धमम — निधध

सांनिनि रिंसांसां गं ऽ गंरिं ऽ सां, सा ऽ प ऽ सां ऽ रिं ऽ गं ऽ गंरिं ऽ सां, रि ऽ म ऽ नि ऽ रिं ऽ गं ऽ गंरिं ऽ

सां, निरिं ऽ निध ऽ प, मध ऽ मग रि ऽ प ऽ रि ऽ गरि ऽ सा।

नोट :— जिस प्रकार मध्य सप्तक में आलाप-विस्तार दिखाया गया है, उसी प्रकार तार सप्तक में भी करना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग श्री

मुक्त तानें

रि्ग् गरि्सासा, रि्मम् रि्गगरि्सा, रि्पप रि्गगरि्सा, रि्गग रि्मम् रि्पप रि्गगरि्सा । रि्सासा गरि्रि् पमम् धूपप मूग रि्ग गरि्सासा । सासा रि्रि् मम् पप सासासा रि्रि्रि् ममम् पपप मगरि्ग गरि्सासा । सासासा रि्रि्रि् सासासा ममम् सासासा पपप मगरि्ग रि्गगरि्सासा । रि्पऽपमग रि्गगरि्सासा, रि्पऽप मध्ऽध् निनिध्पमग रि्गगरि्सासा । रि्पऽप मगरि्सा ध्रि्'ऽरि्' निधमग रि्गरि्सा । रि्मम् मध्ध् मग रि्गरि्सा, मध्ध् ध्रि्'रि्' निध्मग रि्गगरि्सासा । रि्सासा ध्पप रि्गगरि्सासा, रि्सासा ध्पप रि्'सांसां ध्पप रि्गगरि्सासा, रि्रि्रि् ध्ध्ध् रि्'रि्'रि्' गंगंगंरि्'सां रि्'निध्प मग रि्गगरि्सासा । रि्ऽपऽ ध्मम् मगग रि्गगरि्सासा, पऽसांऽ रि्'निनि निध्ध् ध्मम् मगग रि्गगरि्सासा, रि्रि्रि् पपप मग रि्गगरि्सासा । गगरि् गगरि्सासा, निनिध् निनिध्पप, गंगंरि्'गंगंरि्'सांसां, निनिध् निनिध्पप, गगरि् गगरि्सासा । रि्रि्रि् ममम् निनिनि ध्ध्प मध्ध्म् मग रि्गगरि्सासा, निनिनि रि्रि्रि् ममम् निनिनिध्प मध्ध्म् मग रि्गगरि्सासा, ममम ध्ध्ध् रि्'रि्'रि्' निनिनि ध्प मध्ध्म् मग रि्गगरि्सासा । रि्ऽपऽ मध्ध्म् मग रि्गगरि्सासा, पऽसांऽ निरि्'रि्'निध्प मध्ध्म् मग रि्गगरि्सासा, रि्'ऽपंऽ रि्'गंगंरि्'सांसां निरि्'रि्'निध्प मध्ध्ममग रि्गगरि्सासा, रि्रि्रि् पपप मग रि्गगरि्सासा । रि्रि्रि् ध्ध्ध् रि्'रि्'रि्'निध्प मध्ध्ममग रि्गगरि्सासा । गगरि्सा निनिध्प गंगंरि्'सां निरि्'निध् मध्मग रि्गरि्सा । गगरि्गरि्सा निनिध्निध्प गंगंरि्'गंरि्'सां निनिध्निध्प गगरि्गरि्सा, रि्रि्रि् पपप मध्ध्ममग रि्गगरि्सासा । गरि्रि् गरि्रि् गरि् गगरि्सा, निध्ध् निध्ध् निध् निनिध्प, गंरि्'रि्' गंरि्'रि्' गंरि्' गंगंरि्'सां, निरि्'निध् मधमग रि्गरि्सा । रि्रि्रि् ममम् रि्रि्रि् पपप रि्रि्रि् ध्ध्ध् रि्रि्रि् निनिनि रि्रि्रि् रि्'रि्'रि्' निरि्'रि्'निध्प मध्ध्ममग रि्गगरि्सासा ।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग श्री

ख्याल—एकताल विलम्बित

गीत

स्थायी—गजरवा बाजो रे बाजो बाजो रे ।

अन्तरा—घरि पल छिन माई यों बीतत, हौं
अष्टो यामें काम किये कोऊ न रही ॥

स्थाई

		९		११	
			- - - ग	रे॒ - रे॒सा नि॒सा - -	- सानि॒ रे॒ -
			ऽ ऽ ऽ ग	ज ऽ • • • • ऽ ऽ	ऽ र • वा ऽ

x		०		५	
प - - -	म॒प - - -	म॒प - म॒ध॒ -	- - म॒ ग	(प) रे॒ - - -	नि॒सा - नि॒ ध॒
बा ऽ ऽ ऽ	• • ऽ ऽ ऽ	• • ऽ • • ऽ	ऽ ऽ जो •	रे ऽ ऽ ऽ	• • ऽ बा जो

०		९		११	
नि॒नि॒ - रे॒रे॒ -	- नि॒मारे॒म॒	ध॒ - म॒ ग	(प) रे॒ - - ग	रे॒ - रे॒सा नि॒सा - -	- सानि॒ रे॒ -
बा • ऽ • • ऽ	ऽ • • • •	• ऽ जो •	रे ऽ ऽ ग	ज ऽ • • • • ऽ ऽ	ऽ र • बा ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

०		३		११	
		म॒ - म॒ -	म॒ध॒ सां - सां -	सां - सां -	- सांनि रें -
		प ऽ रि ऽ	प ऽ क ऽ	छि ऽ न ऽ	ऽ मा • • ऽ

×		०		५	
सां - - -	निसां - - -	रेंसांसांनि - - -	- - - रें गं - - -	रें - रेंसांनिसां - -	- - - म॒ ध॒
ई ऽ ऽ ऽ	• • ऽ ऽ ऽ	यों • • • ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ • • ऽ ऽ ऽ	बी ऽ • • • • ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ त

०		३		११	
ध॒ निरें नि - -	म॒ ध॒म॒म॒ - ध॒ -	ध॒ रें - - -	रें - - -	सां - - -	नि ध॒ नि -
त • • ऽ ऽ	हौं • • ऽ - ऽ	अ ऽ ऽ ऽ	• ऽ ऽ ऽ	ष्टों ऽ ऽ ऽ	या • • ऽ

×		०		५	
ध॒म॒म॒ - ध॒ध॒ -	- - - ग रें	रें नि - - -	- - सां रें	रेंनिनिध॒ -	- - - ग रें
में • • ऽ • • ऽ	ऽ ऽ ऽ का	• ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ म कि	ये • • • ऽ	ऽ ऽ ऽ को

०		३		११	
गं रें - - -	सां - - -	रें - गरें -	सा - - ग		
उ ऽ ऽ ऽ	ना ऽ ऽ ऽ	र ऽ ही • ऽ	• ऽ ऽ ग		

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग श्री

त्रिताल

गीत

स्थायी—एरी हूँ तो आस न गइली, पास न गइली,
लोगवा घरे मैंका नाँव ।

अन्तरा—जब ते पिया परदेस गवन कीन्हो,
देहरी न दीन्हों पाँव ॥

स्थायी

×				२				०				३			×
											रि	म	ध	नि	–
											ये	री	हूँ	तो	ऽ
नि	–	सां	रिं	सां	नि	सां	–	ध सां	नि रिं	नि	~	प	प	प	–
आ	ऽ	स	न	ग	इ	ली	ऽ	पा	•	स	न	ग	इ	ली	ऽ
प	पध	–	म	ग	रि	ग	रि	सा	–	–	सा	रिरिसा	निसा	–	सा
•	••	ऽ	•	•	लो	•	ग	वा	ऽ	ऽ	घ	रे••	••	ऽ	मैं
सा प	–	प –म	ध	म	ग	रि	ग	ग रि	–	सा	रि	म	ध	नि	–
का	ऽ	ऽ•	•	•	•	•	•	नां	ऽ	व	ये	री	हूं	तो	ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×				५				०				१३			
			म॒	म॒	(ध)सां	-	सां	सां	-	-	-	निसां	-	निरि॒'	-
			ज	ब	ते	ऽ	पि	या	ऽ	ऽ	ऽ	••	ऽ	प•	ऽ
सां	-	-	रि॒'सांसांनि	-	रि॒'	गं	गंरि॒'	गं	रि॒'	रि॒'	सां	नि	-रि॒'	नि	ध॒
र	ऽ	ऽ	दे•••	ऽ	स	•	ग•	व	•	न	•	•	ऽ•	की	•
ध॒म॒म॒	-	-	ध॒	नि	-रि॒'	सं'	रि॒'	(ध॒)रि॒'	नि	ध॒	-	प	-	म॒प-	-
नो••	ऽ	ऽ	दे	ह	ऽरी	•	न	दी	•	•	ऽ	न्हो	ऽ	••ऽ	ऽ
पध॒-	-	-	म॒	ग	-	रि॒	ग	रि॒	सा	-	रि॒	म॒	ध॒	नि	-
••ऽ	ऽ	ऽ	•	•	ऽ	पाँ	•	व	•	ऽ	ये	री	हू	तो	ऽ

नोट :—जो लोग श्री के आरोह में 'रि॒म॒पनि' बरतते हैं, वे इस गीत में भी 'रि॒म॒ध॒नि' के स्थान पर 'रि॒म॒पनि' लेते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानें

	×				५				०				१३			
१)					सासा	सा, रि॒	रि॒रि॒	पप	प, रि॒	गग	रि॒सा	ए	री		तो	०
२)					नि॒सा	रि॒म्	पध्	म्प	रि॒ग	रि॒सा	नि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,
३)					सासा	सा, रि॒	रि॒रि॒,	म्म्	धध्	म्ग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,
४)					गरि॒	रि॒, प	म्म्,	ध्ध्	ग	रि॒सा	नि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,
५)					नि॒सा	रि॒म्	ध्नि	नि, ध्	निनि,	ध्प	म्ग	रि॒सा	एरी	ऽ हूँ	,,	,,
६)					नि॒सा	रि॒म्	ध्नि	सां नि	ध्प	म्ग	रि॒सा	ए	री	,,	,,	,,
७)					रि॒म्	ध्नि	म्ध्	म्नि	ध्प	म्ग	रि॒सा	,	,,	,,	,,	,,
८)					रि॒	–	–	म्म्	ध्ध	म्ग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,
९)			रि॒रि॒	रि॒, प	पप,	रि॒रि॒	रि॒, म्	म्म्	ध्ध्	म्ग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	X				५		/		०				१३			
१०)	रिरि	रि,म्	म्म्,	रिरि	रि प	पप,	रिरि	रि, ध	ध्ध्	म्ग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
११)	रिग	रि,रि	गरि,	रिग	गरि	म्ध्	म्, म्	ध्म्	म्ध्	म्ग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
१२)	निसा	रिम्	धनि	नि,ध्	निनि	म्ध्	ध्, म्	ध्ध्,	म्ग	रिसा	निसा	,,	,,	,,	,,	,,
१३)	निनि	नि,रि	रिरि	म्म्	म्, ध्	ध्ध्	निनि	ध्प	म् ध्	म्ग	रिसा	,,	,	,,	,,	,,
१४)	निसा	रिम्	ध्नि	सां -	– नि	ध्प	म्ग	रिसा	ध्प	म्ग	रिसा	,,	,,	,,	,,	,,
१५)	रि रि	रि, प	पप,	रिरि	रि, नि	निनि	रिरि	रि, रि'	रि'रि'	सांनि	ध्प	म्ध्	म्ग	रिसा	हूँ	तो
१६)	रिरि	रि, म्	म्म्,	रिरि	रि, प	पप,	रिरि	रि, ध	ध्ध्,	रिरि	रि, नि	निनि	रिरि	रि,रि'	रि'रि'	निध्
	निनि	ध्म्	ध्ध्	म्ग	म्म्	गरि	गग	रिसा	निसा	रिम्	ध्नि	सां –	ए	री	हूँ	तो ऽ
१७)	निसा	रिम्	रिम्	म्ग	रिसा,	रिम्	पध्	रिध्	ध्म्	गरि	म्ध्	निसां	म्सां	सांनि	धप,	ध्नि
	सांरि'	ध्रि'	रि'नि	ध्प,	म्नि	निध्	म्ग,	रिध्	ध्म्	गरि	निम्	म्ग	रिसा	ऐ री	- हूँ	तो -

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

× ५ ० १३

१८)
रि॒ग | ग, रि॒ | गग | रि॒ग | रि॒सा, | म॒प | प, म॒ | पप | म॒ध॒ | म॒ग, | रि॒'गं | गं, रि॒' | गंगं | रि॒'गं | रि॒'सां, | निसां

सां, नि | सांसां | निरि॒' | निध॒, | म॒प | प, म॒ | पप | म॒प | म॒ध॒ | म॒ग | रि॒ग | रि॒सा | नि॒सा | ए॒री | ऽहूँ | तो ऽ

१९)
रि॒ग | ग, रि॒ | गग | रि॒सा, | म॒प | प, म॒ | ध॒ध॒ | म॒ग, | निसां | सां, नि | रि॒'रि॒' | निध॒, | रि॒'गं | गं, रि॒' | गंगं | रि॒'सां,

निसां | सां, नि | रि॒'रि॒' | निध॒, | म॒प | प, म॒ | ध॒ध॒ | म॒ग | रि॒ग | ग, रि॒ | गग | रि॒सा | ए | री | हूँ | तो

२०)
गरि॒ | रि॒, ग | रि॒रि॒ | गग | रि॒सा | नि॒सा, | निध॒ | ध॒, नि | ध॒ध॒ | निनि | ध॒प | म॒प | गंरि॒' | रि॒, गं | रि॒'रि॒' | गंगं

रि॒'सां | निसां | निध॒ | ध॒, नि | ध॒ध॒ | निनि | ध॒प | म॒प | गरि॒ | रि॒, ग | रि॒रि॒ | गग | रि॒सा | नि॒सा | हूँ | तो

२१)
रि॒रि॒ | रि॒, प | पप | म॒म॒ | म॒, ध॒ | ध॒ध॒, | पप | प, सां | सांसां, | निनि | नि, रि॒' | रि॒'रि॒' | रि॒'रि॒' | रि॒, पं | पंपं | रि॒'गं

रि॒'सां | निसां, | सांरि॒' | सांनि | ध॒प, | म॒ध॒ | म॒ग | रि॒ग | रि॒सा | नि॒सा | ये | री | ० | हूँ | तो | ०

२२)
गरि॒ | रि॒, ग | रि॒रि॒ | ध॒प | प, ध॒ | पप, | गरि॒ | रि॒, ग | रि॒रि॒ | सांनि | नि, सां | निनि | गरि॒ | रि॒, ग | रि॒रि॒ | रि॒'सां

सां, रि॒' | सांसां, | गरि॒ | रि॒, ग | रि॒रि॒ | गंरि॒' | रि॒', गं | रि॒'रि॒' | रि॒'नि | नि, रि॒' | निनि | निध॒ | ध॒, नि | ध॒ध॒, | ध॒म॒ | म॒, ध॒
म॒म॒, | म॒ग | ग, म॒ | गग, | गरि॒ | रि॒, ग | रि॒रि॒ | रि॒सा | ग, रि॒ | सासा | ये | री | ० | हूँ | तो | ०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

x				५				०				१३			
२३) गरि॒	रि॒,ग	रि॒रि॒,	रि॒सा	सा, रि॒	सासा,	धप	प, ध॒	पप	पम॒	म॒, प	म॒म॒,	म॒ग	ग, म॒	गग,	गरि॒
रि॒,ग	रि॒रि॒,	रि॒सा	सा, रि॒	सासा,	सांनि	नि, सां	निनि	निध॒	ध॒, नि	ध॒ध॒,	धप	प,ध॒	पप,	पम॒	म॒,प
म॒म॒,	म॒ग	ग, म॒	गग	गरि॒	रि॒, ग	रि॒रि॒	रि॒सा	सा,रि॒	सासा,	गंरि॒ं	रि॒ं, गं	रि॒ंरि॒ं	रि॒ंसां	सां,रि॒ं	सांसां
सांनि	नि,सां	निनि	निध॒	ध॒,नि	ध॒ध॒,	धप	प, ध॒	पप,	पम॒	म॒, प	म॒म॒,	म॒ग	ग, म॒	गग,	गरि॒
रि॒,ग	रि॒रि॒,	रि॒सा	सा, रि॒	सा,सा,	सा	सां	–	सा	सां	–	सा	सां	–	ध॒	नि
					ये	री	ऽ	ये	री	ऽ	ये		ऽ	हूँ	तो
२४) निग	गरि॒,	रि॒सा	सा,रि॒	सा सा,	रि॒प	पम॒	म॒ग	ग, ग	रि॒रि॒,	रि॒ध॒	धप	पम॒	म॒, म॒	गग,	म॒नि
निध॒	धप	प,प	म॒म॒,	पसां	सांनि	निध॒	ध॒, ध॒	पप,	परि॒ं	रि॒ंसां	सांनि	नि,नि	ध॒ध॒	रि॒ंगं	गंरि॒ं
रि॒ंसां	सां,सां	निनि,	निध॒	ध, ध॒	पप,	पम॒	म॒, म॒	गग,	गरि॒	रि॒, रि॒	सासा	ये	री	हूँ	तो
२५) रि॒ –	– प	– प	रि॒ग	रि॒सा	नि॒सा,	म॒ –	– ध॒	– ध॒	म॒ध॒	म॒ग	रि॒सा,	प –	– सां	– सां	निरि॒ं
निध॒	म॒प	रि॒ं –	– पं	– पं	रि॒ंगं	रि॒ंसां	निसां,	नि –	– रि॒ं	– रि॒ं	निरि॒ं	निध॒	म॒प	म॒ –	– ध॒
– ध॒	म॒ध॒	म॒ग	रि॒सा	ये	री	हूँ	तो	–	–	हूँ	तो	–	–	हूँ	तो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग श्री

ध्रुपद—सूलताल

गीत

स्थायी—गौरी अरधांग, नाचत संगीत, शंकर त्रिपुर हर ॥

अन्तरा—त्रिशूल डमरू नाद, व्याघ्राम्बर अम्बर,

गज चर्माम्बर परिधानकर ॥

स्थायी

×		*		५		७		०	
नि	—	सां	—रिं॒	नि	ध॒	म॒	प	ध॒	प
गौ	ऽ	री	ऽ •	अ	र	धां	•	•	ग
(रि॒)म॒	ध॒	म॒	ग	(प)रि॒	—	—	(ग)रि॒	—	सा
ना	•	च	त	सं	ऽ	ऽ	गी	ऽ	त
(रि॒)प	—	प	प	(प)रि॒	रि॒	रि॒	(ग)रि॒	—	सा
शं	ऽ	क	र	त्रि	पु	र	ह	ऽ	र

अन्तरा

म॒	ध॒	नि	सां	रिं॒	रिं॒	सां	नि	सां	सां
त्रि	•	शू	ल	ड	म	रु	ना	•	द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×		०		५		७		०	
नि	—	रि॒'	गं॒	रि॒'	सां	ध॒ नि	रि॒'	नि	ध॒
व्या	•	ग्रा	•	स्व	र	अं	•	स्व	र
प	प	प	प	म॒	प	ध॒	नि	ध॒	प
ग	ज	च	र	मां	•	•	•	स्व	र
प	प	ध म॒	ध॒	म॒	ग	प रि॒	रि॒	सा	सा
प	रि	घा	•	•	•	•	न	क	र

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग श्री

ध्रुवपद—चौताल

गीत

स्थायी—प्रथम नाद सुर साधे,
आराधे सोई गुनियन में गावे ।।

अन्तरा—सप्त सुर, तीन ग्राम, एकीस मूर्च्छना,
तिन के ब्योरे तब कछु पावे ।।

संचारी—आरोही अवरोही उलट पुलट के होत
द्रुत मध्य विलम्बित आवे ।।

आभोग—"तानसेन" के प्रभु प्रसाद दीजै ।
ताते गायन विद्या कंठ करावे ।।

स्थायी

×		०		५		०		६		११	
(ग)रि	(ग)रि	सा	प	–म्	ध्	(नि)ध्	म्ग	(प)रि	(ग)रि	(ग)रि	सा
प्र	थ	म	ना	ऽ०	द	सु	र०	०	सा	०	धे
सा	(नि)रि	–	(ग)रि	(ग)रि	सा	रि	प	म्	ध्	म्	ग
आ	०	ऽ	रा	०	धे	सो	०	ई	०	गु	नि
नि	रि	नि	ध्	म्	ग	रि	ध्	(ग)म्	ग	(ग)रि	सा
य	न	में	०	०	०	गा	०	०	०	वे	०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×		०		५		०		९		११	
प	म॒	ध॒	नि	सां	सां	(गं)रिं॒	(गं)रिं॒	स	नि	स	सां
स	•	त	सु	•	र	ती	•	न	ग्रा	•	म
नि	सां	रिं॒	(गं)रिं॒	(गं)रिं॒	सां	नि	रिं॒	नि	ध॒	म॒	ग
ए	•	•	की	•	स	मू	•	र्च्छं	ना	•	•
रि॒	ध॒	म॒	ग	(प)रि॒	–	सा	–	रि॒	प	म॒	ध॒
ति	न	के	•	ब्यो	ऽ	रे	ऽ	त	ब	क	छु
नि	रिं॒	नि	ध॒	मं॒	ग	रि॒	ध॒	म॒	ग	(प)रि॒	सा
पा	•	•	इ•	•	•	वे	•	•	•	•	•

संचारी

सा-नि॒	रि॒	–	(ग)रि॒	(ग)रि॒	(सा)रि॒	प–म॒	ध॒	–	(नि)ध॒	(नि)ध॒	प
आ ऽ•	•	ऽ	रो	•	ही	अ ऽ •	व	ऽ	रो	•	ही
प	म॒	ध॒	(नि)ध॒	(नि)ध॒	प	नि	सां	रिं॒	(गं)रिं॒	(गं)रिं॒	सां
उ	ल	ट	पु	ल	ट	के	•	•	हो	•	त
नि	सां	रिं॒	नि	सां	रिं॒	(नि)रिं॒	नि	ध॒	प-म॒	ध॒	प
हु	त	•	म	•	ध्य	वि	ल	•	म्बि ऽ •	•	त
रि॒	रिं॒	नि	ध॒	म॒	ग	रि॒	ध॒	(ग)म॒	ग	(प)रि॒	सा
आ	•	•	,	•	•	वे	•	•	•	•	•

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

आभोग

×		०		५		०		९		११	
सा-नि॒	रि॒	रि॒	प-म॒	ध॒	ध॒	सां-नि	रि॒'	-	गं	रि॒'गंरि॒'-	सां
ताऽ•	•	न	सेऽ•	•	न	केऽ•	•	हु	प्र	भु••ऽ	•
नि	नि	रि॒'	रि॒'	(गं)रि॒'	(गं)रि॒'	सां	-	नि	रि	नि	ध॒
प्र	सा	•	द	दी	•	जे	ऽ	ता	•	ते	•
म॒	ध॒	म॒	ग	(ग)रि॒	-	सा	-	रि॒	प	म॒	ध॒
गा	•	य	न	बि	ऽ	द्या	ऽ	कं	•	ठ	क
नि	रि॒'	नि	ध॒	म॒	ग	रि॒	ध॒	(ग)म॒	ग	(प)रि॒	सा
रा	•	•	•	•	•	वे	•	•	•	•	•

———

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वं कल्याण

आरोह-अवरोह—निरिगम् धनिसां, सांनिधपमगरिसा ।

जाति—षाडव-संपूर्ण ।

ग्रह—निषाद ।

अंश— पञ्चम । ऋषभ, धैवत अनुगामी ।

न्यास—पञ्चम । धैवत के उच्चार के बाद ही पञ्चम पर न्यास ।

अपन्यास—गान्धार । धैवत का दीर्घोच्चार ।

विन्यास—मध्य षड्ज ।

मुख्य-अंग—निरिगमधऽप ।

समय—सूर्यास्त के बाद रात्रि के पूर्व । मारवा के बाद और कल्याण के पूर्व ।

रस, भाव—अनिश्चित । द्रष्टव्य विशेष विवरण ।

विशेष विवरण

पूर्वकल्याण सायंसवन का राग है । सूर्यास्त के बाद रात्रि के पूर्व यह राग बरता जाता है । इसका नाम स्वयं ही यह सूचित करता है कि कल्याण के पूर्व यह व्यवहृत होता है । कुछ लोग इसे पूर्वा या पूर्वाकल्याण भी कहते हैं । कुछ अन्य लोग इसे पूरियाकल्याण कहते हैं । किन्तु एक परंपरा ऐसी भी है जिस में यह माना जाता है कि जिस प्रकार 'पूर्वकल्याण' में पंचम से कल्याण-अंग प्रस्फुट किया जाता है, उसी प्रकार पूरियाकल्याण में शुद्ध ऋषभ से कल्याण-अंग दिखाया जाता है । यथा—निसाग ऽ मगऽ गमधगमऽग, मधनि ऽऽ धमम ऽ ऽ ग, मगरि ऽ सा । इसलिए इस राग को पूरिया-कल्याण न कह कर पूर्व-कल्याण कहना चाहिए । इन दोनों रागों की भिन्नता स्पष्ट हैं, क्योंकि पूर्वकल्याण में पञ्चम द्वारा तथा पूरिया-कल्याण में शुद्ध ऋषभ द्वारा कल्याण अंग की अभिव्यक्ति होती है । कर्णाटक संगीत में पूर्वकल्याण को ही 'गमनाश्रम' कहते हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसमें ऋषभ कोमल और मध्यम तीव्रतर लगते हैं। अन्य सब स्वर शुद्ध हैं। इसके आरोह में पञ्चम का त्याग है।

इस राग में 'रि॒ - म॑', 'ग - ध' और 'म॑ - नि' ये संवादी स्वर-जोड़ियाँ हैं। आरंभ में 'सा' कहने के बाद 'सा ऽ नि॒ ध॒ नि॒ रि॒ नि॒ ध॒ ऽ प' ये स्वर-समूह लेते ही पूर्वकल्याण का रूप आविर्भूत हो जायगा।

'निरि॒ग' लेने के बाद यदि 'रि॒गरि॒सा' लिया जायगा तो पूरिया या पूरिया-धनाश्री से बचा सकेंगे। ऋषभ लेते ही शीघ्र ही षड्ज पर आ जाएँ। अधिक मात्रा में ऋषभ लेने से भी राग के रागत्व को हानि पहुँचेगी, क्योंकि 'मारवा' अपना सिर ऊँचा करेगा। इस प्रकार पूरिया, मारवा तथा पूरिया-धनाश्री से बचने के लिए प्रायः निरि॒ग ऽऽनि॒रि॒सा (पूरिया), निरि॒ऽऽ गम॑गरि॒ऽऽ (मारवा) एवं निरि॒ग ऽ म॑रि॒ गऽ म॑गम॑रि॒ गऽऽ (पूरिया-धनाश्री) इन स्वर-संयोगों से सदैव सावधान रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त यथाशीघ्र पूर्वांग को छोड़ कर उत्तरांग के शुद्ध धैवत को दिखा कर पञ्चम पर न्यास करना चाहिए। उसीसे कल्याण अंग प्रस्फुटित होगा और पूर्वकल्याण का रूप कर्णगोचर होगा।

नि॒ रि॒ ग ग म॑ ध

निरि॒गम॑धऽप, म॑गम॑धऽप, म॑गरि॒ गम॑धऽप, निरि॒ रि॒ग गम॑ म॑धऽप, म॑धम॑प ऽ म॑ ग रि॒ ग म॑धऽप, म॑गऽऽरि॒गऽरि॒ऽसा। इन स्वरावलियों से यह राग स्पष्टतया परिस्फुट होगा। मारवा के सदृश यह भी उत्तरांग की ओर ही अधिक झुकता रहेगा और उसे उत्तरांग की ओर झुकता रखने से ही अन्य समप्रकृतिक रागों से उसे दूर रखने में अधिक सरलता होगी।

कुछ गुणी लोग स्थूल-भाव से यह कहते हैं कि मारवा में पंचम लगाने से और ऋषभ कम बरतने से पूर्वकल्याण होता है।

इसमें पञ्चम 'कल्याण' की अभिव्यक्ति करता है तो 'रि॒' 'कल्याण' अंग को तिरोहित करता है। शुद्ध 'ध' 'पूरिया-धनाश्री' से भिन्नत्व प्रदान करता है तो पञ्चम इसे 'मारवा' अंग से बचाता रहेगा।

यह द्विधा प्रवृत्ति का राग प्रतीत होता है। पूर्वांग में ऋषभ कोमल तथा तीव्रतर मध्यम के प्रयोग से कुछ थकान का अनुभव होता है और उत्तरांग में शुद्ध धैवत के साथ पंचम पर ठहराव होने से कुछ जागृति का भाव खड़ा होता है। इसलिए इसके रस का निर्णय नहीं हो पाया है।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्व-कल्याण

मुक्त आलाप

नि नि नि नि
(१) सा, नि़नि़रि़नि़ध़ऽप, म़ ध़नि़ऽध़ऽध़ ऽ, म़ ध़ सा।

नि नि म़ नि
(२) ध़नि़रि़नि़ध़ऽप़, म़ ध़नि़रि़नि़ध़ऽप़, नि़नि़ध़ ध़ऽनि़ध़ऽप़, नि़ऽसानि़ऽ ध़ऽनि़ध़ऽप़, ध़म़ ऽ नि़ध़ ऽ सा।

नि रि ध नि नि ध
(३) ध़ नि़ रि़सा़ऽरि़नि़ध़ऽप, सा ऽनि़ रि़नि़ध़ ऽप़, म़ ध़ सा ऽ नि़ ऽरि़ नि़ध़ ऽप़, सासानि़ध़नि़ ऽ

नि नि
ध़नि़रि़नि़ध़ऽप़, म़ ध़ सा।

म़ म़ ध ध म़ म़ ध
(४) म़ नि़ध़सा, ध़प़ नि़ध़ सानि़ रि़नि़ध़ऽप़, सानि़ नि़ध़ ध़प़ म़ध़ ध़नि़ नि़सा ऽ रि़नि़ नि़ध़ ध़प़,

नि नि ध नि
म़ ध़ नि़ ध़ऽप़, म़ ध़ सा।

ध नि नि
(५) नि़रि़ग, रि़गरि़ऽसा, नि़ध़ऽध़नि़रि़ग, रि़गरि़ऽसा, रि़गऽ गरि़नि़ध़ऽप, म़ ध़नि़रि़गऽ रि़गऽ रि़नि़ध़ऽप़,

ध नि
म़ नि़ नि़ध़ऽप़, म़ सासानि़ ऽ धनि़नि़ध़ऽप़, रि़गग ऽ ध़नि़नि़ ऽ नि़ध़ऽप़, म़ ध़ सा।

रि ग म़ ध म़
(६) नि़ रि़ ग म़ धऽप, म़गरि़गम़धऽप, पम़गरि़गम़धऽप, म़गरि़सानि़रि़गम़धऽप, पऽम़गरि़ सा ऽ

ध नि सा ध नि
सानि़ध़प़, म़ ध़ सा, म़गरि़ सा ऽ सानि़ध़प़ ऽ म़ ध़नि़रि़ गम़ धऽप, ध़नि़नि़ ध़नि़रि गम़धऽप, पम़धप ऽऽ म़गरि़

सा नि
गम़धऽप, धपम़ग म़गरि़ सा रि़ नि़ध़प़, म़गपम़धऽप, धपप ऽ म़ग ऽऽ रि़ गम़गरि़ ऽसा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध नि रि ग मृ ध

(७) निरि मृमृग रि गमृधऽप, धनिरि रि नि धनिरि गमृधऽप, मृ धनिनिध मृ ध नि रि ग मृ धऽप,

ग मृ प रि ग मृ ध ध

मृ नि धसा निरि निग रि मृ गप मृधऽप, धपमृ मृ ऽ ग मृ धऽप, पमृग गऽ रि ग मृ धऽप, गरि निनि ऽ

रि ग मृ ध

नि रि ग मृ धऽप, धपमृग ऽ पमगरि ऽ मृगरिसा ऽ निरिगमृधऽप, धमृप ऽ मृग ऽ रिगमृगरिऽसा ।

मृ मृ

(८) निरिनिरि रिगरिग गमृगमृ मृपमृप मृधपध प, निरिनिरि ऽ रिगरिग ऽ गमृगमृ ऽ मृपमृप ऽ मृधपध ऽ प,

धपमृधऽऽप, धपमृग ऽ पमृधऽप, धपमृग ऽ गरि मृग पमृ धऽप, धपमृग ऽ रिनि गरि मृग पमृ धऽप; मृपधपमृग ऽ,

गमृपमृ ऽ मृपधपमृग ऽ, रिगमृग ऽ गमृपमृ ऽ मृपधपमृग ऽ, निरिगरि ऽ रिगमृग ऽ गमृपमृ ऽ मृपधपमृग ऽ, धपधमृ ऽ

नि रि ग

पमृपग ऽ मृगमरि ऽ मृग पमृ धऽऽप, निगरि रिमृग गपमृ मृधप, निरि रिग गमृ मृध ऽ मृधमृप ऽ धपमृग ऽ रिगमृग ऽ

रिग ऽ रिऽसा ।

रि ग मृ ध नि मृ ग ❀ मृ ❀

(९) नि रि ग मृ ध नि ऽ निध ऽ प, निनिध ध ऽ नि ऽ निध ऽ प, पपमृ मृ ऽ ध निनिध ध ऽ नि नि ऽ

रि ❀ ग ❀ मृ ❀ ध रि ग

निध ऽ प, मृमृग ग ऽ मृ पपमृ मृ ऽ ध निनिध ध ऽ नि नि ऽ निध ऽ प, सासानि नि ऽ मृमृग ग ऽ पपमृ मृ

मृ प

ऽ धधप प ऽ निनिध ध ऽ नि ऽ निध ऽ प, निधपमृगरि गमृधनि ऽ निध ऽ प, निध धप पमृ मृग गरि मृग पमृ धप

नि ऽ निध ऽ प, धधपमृप ऽ मृग ऽ रिगमृग ऽ रिग ऽ रि ऽसा ।

मृ मृ ग

(१०) रिनि गरि मृग पमृ धप निध नि, निध निमृ निध नि, पमृ धप निध नि, निध धप पमृ मृग ऽ

गरि मृग पमृ धप निध नि, धनिनि ऽ मृधध ऽ मृपप ऽ गमृमृ ऽ रिगग ऽ रिगमृधनि, निरिगमृधनि रि निधऽप, मृधऽप,

धपमृग ऽ रिग ऽ रिऽसा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(११) निरि़गम़धनि ऽ नि़, गरि़ गम़ धनि ऽ नि़, निधपम़गरि़निध़ निरि़गम़धनि ऽ नि़, निधऽपऽ धध ऽ धम़ ऽ पग ऽ रि़गम़ग ऽ रि़गऽरि़ऽसा ।

(१२) धनिरि़ग ऽ गरि़निध़ ऽ रि़ गम़प ऽ धपम़ग ऽ गम़धनि ऽ निधमग ऽ म़गरि़नि़ ऽ रि़निधप ऽ प, ध ऽ निध ऽ प, धम़प ऽ म़ग ऽ, पऽऽम़ धम़प ऽऽ म़ग ऽ, म़ऽऽग पऽऽम़ धम़प ऽ म़ग, गऽऽरि़ म़ऽऽग पऽऽम़ धम़प ऽ म़ग, रि़ऽऽनि़ गऽऽरि़ म़ऽऽग पऽऽम़ धम़प ऽऽ म़ग, रि़गम़ध ऽ धप ऽ म़ग ऽ गरि़ ऽ रि़सा ।

(१३) निरि़गम़धनि ऽ धम़प ऽ म़ग म़ ध सां ऽऽ निसां, म़म़गरि़गम़धनि ऽ धम़प ऽ म़ग ऽ म़ ध सां ऽऽ निसां, सांनिधपम़गरि़गम़धनि ऽ धम़प ऽ म़ग म़ ध सां ऽऽ निसां, रिं निधपऽ म़गरि़सा ऽ रि़निधप ऽऽ प सां ऽऽ निसां, सांऽऽनि धपम़ग ऽ पऽऽम़ म़गरि़सा ऽ साऽऽनि़ धपम़ ग़ ग गं रि़ गं रि़ ऽसां, धनिरि़ निधऽप, म़धऽप धम़प ऽ म़ग ऽ रि़ग ऽ रि़ऽसा ।

(१४) निरि़गम़धनिरि़ गं ऽ गंरि़ सांनिधपम़ग, निरि़गम़धनिसां ऽ सांनिधपम़गरि़सा, सानि़ध़ म़ धनि़रि़ग ऽ गम़धनि ऽऽ धनिरि़ गं ऽ गंरि़ ऽ रि़नि ऽ निध ऽ धप ऽ पम़ ऽ म़ग ऽ गं ऽ गरि़ रि़ नि निध धप पम़ म़ग ऽ गं ऽऽ रि़ गंरि़ ऽ सां, धनिधऽप, रि़ गरि़ ऽसा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग पूर्वकल्याण

मुक्त तानें

निरि्गगरि्सानि्सा, नि्रि्नि्सा सानि्धप म् धनि्सा धनि्धसा नि्रि्नि्सा गगरि्गरि्सानि्सा, नि्नि्धनि्
धपम् प पम् म् धपप निध सानि रि्सा गगरि्सा। म् पधप म् धनिध धनि्सानि् नि्सारि्सा नि्रि्गगरि्सानि्सा।
धनि्सारि् गगरि्ग रि्गम्प म्गरि्सा। नि्रि्गम् धधम्प धपम्ग म्गरि्सा। गरि्गम् गम्पम् पधपध पधम्प म्गरि्सा,
गरि्म्ग पम्धप धपम्ग म्गरि्सा। गगरि्ग म्म्गम् पपम्प धधपध पधम्प पम्गम् म्गरि्सा। नि्रिगम्
निनिधप पधम्प म्गरि्सा। गरि्ऽग म्गरि्सा, निम्ऽध निनिधप पधम्प म्गरि्सा। नि्रि्गम् धनिम्ध
म्निधप म्गरि्सा। गगरि्गरि्सा पपम्पम्ग धधपधपम् निनिधनिधप म्गरि्सा। नि्रि्गम्गरि् रि्गम्पम्ग
गम्पधपम् म्पधनिधप म्रनिनिधपम्ग धरम्ग म्गरि्सा। गगरि्सा म्म्गरि् पपम्ग धधपम् निनिधप पधपम्
पपम्ग म्गरि्सा। नि्रि्गम् निनिधप पधपम् म्गरि्सा, गरि्रि् म्गग पम्म् धपप निधसांनि धपम्ग म्गरि्सा, गरि्म्ग
म्गरि्सा, म्गपम् धपम्ग, धम्निध सांनिधप, धपम्ग म्गरि्सा। म्गम्ग म्गरि्सा, पम्पम्धपम्ग, सांनिसांनिरिं सांनिध,
सांनिधप निधपम् धपम्ग म्गरि्सा। नि्रि्गग रि्गग रि्गगरि्सा, गम्पप म्पप म्पपम्ग, म्पधध पधध पधधपम्
म्धनिनि धनिनि धनिनिधप, धनिसांसां निसांसां निसांसांनिध, निसांरिं रिं सांरिं रिं सांरिं रिं सांनि, निसांसां
निसांसांनिध, धनिनि धनिनिधप, पधध पधधपम्, म्पप म्पपम्ग, गम्म् गम्म्गरि् रि्गग रि्गगरि्सा, नि्रि्गम्धनि
सांरिं सांनिधप म्गरि्सा। सांसांऽरिं सांनिधप म्गरि्सा, नि्गऽग गनिऽनि निगंऽगं रिं सांनिसां सांनिधप पधम्प
म्गरि्सा। म्गरि्सा सांनिधप म्ंगंरिं सां सांनिधप म्गरि्सा। म्गऽग म्गरि्सा, सांनिऽनि सांनिधप, म्ंगंऽगं म्ंगंरिं सां
सांनिधप म्गरि्सा। म्गग म्गग म्ग म्ग म्ग म्गरि्सा, सांनिनि सांनिनि सांनि सांनि सांनि सांनिधप, म्ंगंगं म्ंगंगं
म्गं म्गं म्गं म्ंगंरिं सां सांनिधप म्गरि्सा। साम्ऽम् म्गरि्सा, म्निऽनि निधपम्, सांम्ंऽम्ं म्ंगंरिं सां सांनिधप
म्गरि्सा। नि्म्ऽम् म्निऽनि निम्ंऽम्ं म्ंगंरिं सां सांनिधप म्गरि्सा, रि्सानि्सा पम्गम् धपम्प सांनिधनि
रिं सांनिसां पंम्ंगंम्ं म्ंगंरिं सां सांनिधप म्गरि्सा। निसांरिं सां, धनिसांनि निसांरिं सां, म्धनिध धनिसांनि
निसांरिं सां, गम्पम् म्पधप म्धनिध धनिसांनि निसांरिं सां, रि्गम्ग गम्पम् म्पधप म्धनिध धनिसांनि निसांरिं सां,
नि्रि्गरि् रि्गम्ग गम्पम् म्पधप म्धनिध धनिसांनि निसांरिं सां, सांनिधप म्गरि्सा। रिग् रि्गम्गरि्सा,
धनि धनिसांनिधप, रिं गं रिं गंम्ंगंरिं सां सांनिधप म्गरि्सा। रि्ऽऽग म्गरि्सा, धऽऽनि सांनिधप, रिंऽऽगं
म्ंगंरिं सां सांनिधप म्गरि्सा। रि्गरि्ग गम्गम् म्पम्प पधपध म्पम्प गम्गम् रि्गरि्ग म्गरि्सा, नि्रि्नि्रि्
रि्गरि्ग गम्गम् म्पम्प पधपध धनिधनि पधपध म्पम्प गम्गम् रि्गरि्ग म्गरि्सा। रि्गरि्ग गम्गम् म्पम्प

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पधपध धनिधनि निसांनिसां धनिधनि पधपध म्रम्र गम्गम् रि्गरि्ग म्गरि्सा, रि्गरि्ग गम्गम् म्पम्प पधपध धनिधनि निसांनिसां सांरिं सांरिं निसांनिसां धनिधनि पधपध म्रम्प गम्गम् रि्गरि्ग म्गरि्सा, रि्गरि्ग गम्गम् रि्गरि्ग म्गरि्सा, रि्गरि्ग गम्गम् म्रम्प पधपध धनिधनि निसांनिसां सांरिं सांरिं रिं गरिं गं सांरिं सांरिं निसांनिसां धनिधनि पधपध म्पम्र गम्गम् रि्गरि्ग म्गरि्सा। रि्गगग मगरि्सा, धनिनिनि सांनिधप, रिं गंगंगं म्ंगंरिं सां सांनिधप म्गरि्सा। गरि्ऽग म्गरि्सा, निधऽनि सांनिधप, गंरिं ऽगं म्ंगंरिं सां सांनिधप म्गरि्सा। रि्गऽग म्ग म्गरि्सा, धनिऽनि धनिसांनिधप, रिं गंऽगं म्ंगं मंगंरिं सां सांनिधप म्गरि्सानि्सा। नि्नि्नि् गगग, रि्रि्रि् म्म्म्, गगग पपप, म्म्म् धधध, म्म्म् निनिनि, धधध सांसांसां, निनिनि रिंरिंरिं, गंगंरिं सां सांनिधप म्गरि्सानि्सा। नि्रि्गम्गरि् रि्गम्गरि्सा, गम्पधपम् म्पधपम्ग, म्धनिसांनिध धनिसांनिधप, धनिसांरिं सांनि निसांरिं सांनिध, धनिसांनिधप म्धनिधपम् मपधपम्ग रि्गम्गरि्सा। रिं गंरिं रि्गंरि्, सांरिं सां सांरिं सां, निसांनि निसांनि, धनिध धनिध, पधप पधप, म्रम् म्पम्, गम्ग गम्ग, रि्गम्गरि्सा। नि्रि्गम्ग रि्गरि् सारि्सा, रि्गम्पम् गम्ग रि्गरि्, गम्पधप म्पम् गम्ग, म्धनिसांनि धनिध पधप, धनिसांरि्सां निसांनि धनिध, सांरिं सां निसांनि धनिध पधप म्पम् गम्ग म्गरि्सानि्साऽ।

—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग पूर्वकल्याण

ख्याल—विलम्बित आड़ा चौताल

गीत

स्थायी—बुला ला आली, श्यामसुन्दर वनमाली ।

अन्तरा—देखहुँ नैन भरी, रसिया की सोहनी सूरत
निराली मतवाली ॥

स्थाई

०		११	
		– – – निसा	म्-म्गरि ग - - ध-धम्गम् - -
		ऽ ऽ ऽ बु •	लाऽ•• • • ऽ ऽ • ऽ •• •• ऽऽ

०			
नि-निधम्ध - - सां-सांनिधनि - -	- - - ध निरिं निध		
• ऽ •• •• ऽऽ • ऽ •• •• ऽऽ	ऽऽऽ • • • ला •		

×		२	
नि – निध –	प – म्प –	म्–म्गरि गम्प –	पधम् – – म्धग– ऽ
आ ऽ • • ऽ	ली ऽ • • ऽ	श्या ऽ•• •• •• ऽ	म ••ऽ ऽ •• • ऽ ऽ

०		७	
रिगम्रिगारिम्ध ग	रि – – –	सा – – –	रिसानिधनिसाम् –
सुं • • • • • • • •	द ऽ ऽ ऽ	र ऽ ऽ ऽ	व • • • • • • ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

०		११	
म्	म्	ग	
ग - - -	म् - ग -	रि॒ - सा ऩिसा	म्-म्गरि॒ग - - ध-धम्गम् - -
न ऽ ऽ ऽ	मा ऽ • ऽ	ली ऽ • बु •	लाऽ •• •• ऽऽ •ऽ •• •• ऽऽ

०			
नि-निधम्ध - - सां-सांनिधनि - -	- - - ध निरिं निध		
• ऽ •• •• ऽऽ • ऽ •• •• ऽ ऽ	ऽऽऽ• •• ली •		

अन्तरा

०		११	
		धपम्ग - - -	प म् धप
		दे ••• ऽऽऽ	ख • हु •

७		०	
निध - - - निम् - - -	- - ध म्		
नै • ऽऽऽऽ •• ऽऽऽ	ऽ ऽ न भ		

×		३	
धनिसां - - - -	निसां - - -	रिं-रिंसांनिसां - - - - निध	धनिरिंगं - - -
री •• ऽ ऽ ऽ ऽ	•• ऽ ऽ ऽ	रऽ••••• ऽऽ ऽऽसि •	या •••• ऽ ऽ ऽ

०		७	
गं			
रिं - सां -	सां - - रिंसांनिधप म्ग - -	ग रि म् ग प म् ध प	निनि - निध - धप - पम् -
की ऽ • ऽ	सोऽऽ • ह •नी• •• ऽऽ	सू • र • त • नि •	रा • ऽ •• ऽ •• ऽ •• ऽ

०		११	
म्-म्गरिगम्प - - म्ग	रिगम्रिगरिम्म् ग	रि - सा निसा	
लीऽ •• •• •• ऽ ऽ मत	वा • •• •• •• •	ली ऽ • बु •	

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग पूर्वकल्याण

त्रिताल

गीत

स्थायी—दुह दे रे, लाल मोरी गैयां ।

अन्तरा—कारी काजर, धौरी धूमर, एहो 'प्रणव' गोपाल,
नन्द दुलाल, कुँवर कन्हैया ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
														ग	रि̲
														दु	ह
ग	म्	प	म्	म्	ग	रि̲	सा	प	म्	ध	प	म्	ग	ग	रि̲
दे	•	•	•	रे	•	•	•	•	•	•	•	•	•	दु	ह
ग	म्	प	म्	म्	ग	रि̲	सा	नि̲	रि̲	ग	रि̲	ग	म्	प	म्
दे	•	•	•	रे	•	•	•	ला	•	•	ल	मो	•	री	•
ग	म्	ध	प	नि	ध	नि	रिं̲	सां	नि	ध	प	म्	ग	ग	रि̲
गैं	•	•	•	यां	•	•	•	•	•	•	•	•	•	दु	ह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×				५				०				१३			
म़ ग	–	म़	ध	सां	–	सां	सां	नि	ध	नि	रिं़	नि	ध	प	प
का	ऽ	री	०	का	ऽ	ज	र	घौ	०	री	०	घू	०	म	र
म़	ग	रि़	ग	ध	म़	ग	म	नि	ध	म़	ध	सां	नि	ध	नि
ऐ	०	हो	०	प्र	ण	व	गो	पा	०	०	ल	नं	०	द	दु
रिं़	सां	नि	सां	ध	नि	ध	रिं़	सां	नि	ध	प	म़	ग	ग	रि़
ला	०	०	ल	कुँ	व	र	क	न्है	०	या	०	०	०	दु	ह

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुखड़े के प्रकार

	×				५				०				१३			
१)									प	म्	ध	प	म्	ग	ग	रि्
									ए	•	•	•	•	•	दु	ह
२)							म्	ग	प	म्	ध	प	म्	ग	,,	,,
							ए	•	•	•	•	•	•	•	,,	,,
३)							ग	म्	प	ध	ग	ध	प	म्	,,	,,
							ए	•	•	•	•	•	•	•	,,	,,
४)							रि	रि्	ग	म्	ध	प	म्	ग	,,	,,
							ए	•	•	•	•	•	•	•	,,	,,
५)							म्	ग	–	म्	ध	प	म	ग	,,	,,
							ए	•	ऽ	•	•	•	•	•	,,	,,
६)					नि̱	रि̱	ग	म्	ध	नि	ध	प	म्	ग	,,	,,
					ए	•	•	•	•	•	•	•	•	•	,,	,,
७)	ध	नि	ध	ध	नि	ध	म्	ध	म्	नि	ध	प	म्	ग	,,	,,
	दे	•	•	•	•	•	रे	•	•	•	•	•	•	•	,,	,,
८)									धप	प	–	म्	म्	ग	रि̱	,,
									ए•	•	ऽ	•	•	•	दु	ह
९)	प	–	–	म	म्	ग	प	म्	धम	प	–	म्	म्	ग	रि̱	ग
	दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	ए	•	••	•	ऽ	•	•	•	दु	ह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	×				५				०				१३			
१०)	प	–	–	म्	म्	ग	म्	प	म्	ध	प	म्	म्	ग	रे॒	ग
	दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	ए	•	•	•	•	•	•	•	दु	ह
११)	प	–	–	म्	म्	ग	ग	म्	ग	ध	प	म्	म्	ग	रे॒	ग
	दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	मो	री	गै	•	•	•	यां	•	दु	ह
१२)	प	–	–	म्	म्	ग	नि	ध	सां	नि	ध	प	म्	ग	रे॒	ग
	दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	मो	री	गै	•	यां	•	•	•	दु	ह
१३)	प	–	–	म्	म्	ग	नि	रें	सां	नि	ध	प	म्	ग	रे॒	ग
	दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	मो	री	गै	•	या	•	•	•	दु	ह
१४)	प	–	–	म्	म्	–	नि	–	सां	नि	ध	प	म्	ग	रे॒	ग
	दे	ऽ	ऽ	•	मो	ऽ	री	ऽ	गै	•	यां	•	•	•	दु	ह
१५)	प	–	–	म्	म्	–	नि	–	रें	नि	ध	प	म्	ग	रे॒	ग
	दे	ऽ	ऽ	•	मो	ऽ	री	ऽ	गै	•	यां	•	•	•	दु	ह
१६)	प	ध	प	प	ध	प	म्	प	म्	म्	प	म्	म्	ग	रे॒	ग
	दे	•	•	•	•	•	रे	•	•	•	•	•	•	•	दु	ह
	प	–	–	म्	म्	ग	रे॒	ग	प	–	–	म्	म्	ग	रे॒	ग
	दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	दु	ह	दे	ऽ	ऽ	•	रे	•	दु	ह
१७)	नि॒	रे॒	ग	म्	ध	नि	म्	ध	म्	नि	ध	प	म्	ग	रे॒	ग
	दे	•	•	•	•	•	रे	•	•	•	•	•	•	•	दु	ह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानें

×				५				०				१३			
१)				नि॒रि॒	गम्	नि॒म्	म्ग	रि॒सा,	नि॒रि॒	गम्	पसा	पम्	म्ग	रि॒सा	नि॒रि॒
गम्	धग	निनि	धप	म्ग	रि॒सा	नि॒रि॒	गम्	धनि	सांसा	—सां	सांनि	धप	म्ग	रि॒सा	नि॒रि॒
गम्	धनि	सांरिं	सांनि	धप	म्ग	रि॒	ग	प	—म्	रि॒	ग	प	—म्	रि॒	ग
						दु	ह	दे	ऽ ०	दु	ह	दे	ऽ ०	दु	ह
२)								नि॒रि॒	गरि॒	रि॒ग	म्ग	गम्	–म्	म्ध	निध
धनि	स न	धनि	सांरिं	सांनि	धप	म्ग	रि॒सा	धनि	सांरिं	सांनि	धप	म्ग	रि॒सा	धनि	सांरिं
सांनि	धप	म्ग	रि॒सा	निध	मध	पम्	मग	रि॒सा	निध	म्ध	पम्	म्ग	रि॒सा	- रि॒	- ग
				दु ह	दे ०	० ०	० ०	० ०	दु ह	दे ०	० ०	० ०	० ०	ऽ दु	ऽ ह
३)				गग	रि॒ग	रि॒सा	मम्	गम्	गरि॒	धध	पध	पम्	निनि	धनि	प
सांसां	निसां	निध	रिंरिं	सांरिं	सांनि	सांसां	निसां	निध	निनि	धनि	धप	धध	पध	पम्	पप
म्प	म्ग	म्म्	गम्	गरि॒	गग	रि॒ग	रि॒सा	धप	प	पम्	गरि॒	धप	धप	पम्	गरि॒
								दे ०	० ०	रे ०	दु ह	दे ०	० ०	रे ०	दु ह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	×				५				०				१३			
४)											निरि	गग	रिग	मम	गम	धध
	मध	निनि	धनि	सांसां	निसां	रिंरिं	सांनि	सांसां	निध	निंनि	धप	धध	पम	पप	मग	मम
	गरि	गग	रिसा	रिरि	सानि	सासा	—	निरि	निध	निध	प	पध	पम	पम	मग	गरि
								दुह	दे•	••	रे•	दुह	दे•	••	रे•	दुह
	गम	प	—	म	म	ग	रि	सा								
	दे•	•	ऽ	•	रे	•	•	•								
५)		निरि	गग	रिग	रिसा	रिग	मम	गम	गरि	गम	पप	मप	मग	मप	धध
	पध	पम	मध	निनि	धनि	धप	धनि	सांसां	निसां	निध	निसां	रिंरिं	सांरिं	सांनि	धनि	सांसां
	निसां	निध	मध	निनि	धनि	धप	मप	धध	पध	पम	म	पप	मप	मग	रिग	मम
	गम	गरि	निरि	गग	रिग	रिसा	गरि	मग	धम	निध	सांनि	रिंसां	निध	पम	गरि	मग
							दुह	दे•	••	••	रे•	••	••	••	दुह	दे•
	धम	निध	सांनि	रिंसां	निध	पम	गरि	मग	पम	निध	सांनि	रिंसां	निध	पम	—ग	—रि
	••	••	रे•	••	••	••	दुह	दे•	••	••	रे•	••	••	••	ऽदु	ऽह
६)											निरि	रिसा	रिग	गरि	गम	मग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
मूध	धमू	धनि	निध	निसां	सांनि	सांरिं	रिंसां	रिंगं	गंरिं	सांरि	रिसां	निसां	सांनि	धनि	निध
पध	धप	मूप	पमू	गमू	मूग	रिग	गरि	सारि	रिसा	गमू	धनि	सांरि	सांनि	धप	मूग
रिसा	गमू	धनि	सांरि	सांनि	धप	मूग	रिसा	गमू	धनि	सांरि	सांनि	धप	मूग	रिसा	गरि
															दुह
७)						मूग	–मू	मूग	रिसा	निसा	सांनि	–रिं	सांनि	धप	मूग
मूंगं	–मूं	मूंगं	रिंसां	निसां	सांनि	धप	मूग	रिसा	निरि	गमू	धनि	सां	सा	सां	गरि
															दुह
८) ध										निरिग	मूगरि	रिगमू	धमूग	गमूध	निधमू
मूधनि	सांनध	धनिसां	रिंसांनि	धनिरिं	गंरिंसां	सांरिंसां	निसांनि	धनिध	पधप	मूपमू	गमूग	सा	मूध	प	–मू
													दुह	दे	ऽ०
मूग	रिसा	निसा	मूध	प	–मू	मूग	रिसा	निसा	मूध	प	–मू	मूग	रिसा	निसा	निध
रे०	००	००	दुह	दे	ऽ०	रे०	००	००	दुह	दे	ऽ०	रे०	००	००	दुह
९)				निरिग	निगरि	रिगमू	रिमूग	गमूप	गपमू	मूपध	मूधप	मूधनि	मूनिध	धनिसां	धसांनि
निसांरिं	निरिंसां	निसांरिं	सांनिध	धनिसां	निधप	मूधनि	धपमू	मूपध	पमूग	गमूप	मूगरि	रिगमू	गरिसा	–ग	–रि
														दु	ऽह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग पूर्वकल्याण

तराना—त्रिताल

गीत

स्थायी—ना दिर दिर दानि तदानि ता देरे ना,
ना दिर दिर दानि, तुं दिर दिर दानि, दिर दिर दानि,
तननन देरे ना, तारे तदारे दानि, धा किट तक धुम किट तक गदि गन,
धागे धिगन धा, धागे धिगन धा, धागे धिगन धा।

अन्तरा—ना दिर दिर दिर तुं दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर दिर,
यललि यालि यललि यालि यलला,
नग धेत् धिरकिट तक् धा, धीना तिर किट नग धिर किट तक,
धान धान धा, धान धान धा, धान धान धा ॥

स्थायी

×				२				०				१३			
								सा	निनि	धध	नि	ध	प	म॒	गम॒
								ना	दिर	दिर	दा	नी	त	दा	नि•
प	–	म॒ग	म॒	ग	रि॒	सा	–	सा	निनि	रिरि	ग	–	ग	ग	रिरि
ता	ऽ	••	दे	•	रे	ना	ऽ	ना	दिर	दिर	दा	ऽ	नि	तुं	दिर
गग	म॒	–	म॒	गग	म॒म॒	ध	ध	म॒	नि	ध	नि	प	प ध	म॒ प	म॒
दिर	दा	ऽ	नि	दिर	दिर	दा	नि	त	:न	न	न	दे	रे	ना	•
ग	रि॒	ग	म॒	ग	रि॒	सा	सा	सा	सासा	सासा	गग	गग	गग	म॒म॒	म॒म॒
ता	•	रे	त	दा	रे	दा	नि	धा	किट	तक	धुम	किट	तक	गदि	गन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१२			
ग	नि	ध	नि	ध	प	म्	ग	ग	(प) म्	–	ध	म	ग	रि	ग
धा	गे	•	धि	ग	नँ	धा	•	धा	गे	ऽ	धि	ग	न	धा	•
रि	ग	–	म्	ग	रिं	सा	–								
धा	गे	ऽ	धि	ग	न	धा	ऽ								

अन्तरा

×				५				०				१३			
ग	गग	गग	गग	म्	मम	धध	धध	सांसां	सांसां	सांसां	सांसां	निनि	रिंरिं	सांसां	सांसां
ना	दिर	दिर	दिर	तुं	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर
ध	नि	रिं	नि	–	ध	म्	ध	नि	ध	–	प	म्	ध	प	–
य	ल	लि	या	ऽ	लि	य	ल	लि	या	ऽ	लि	य	ल	ला	ऽ
पप	गं	-गं	मंमं	गंगं	रिंरिं	सां	–	नि	रिं	निनि	निनि	धध	निनि	धध	पप
नग	धे	ऽत्	धिर	किड़	तक	धा	ऽ	धी	ना	तिर	किट	नग	धिर	किट	तक
म्	–	ध	ध	नि	ध	प	–	प	–	प	प	म्	(ध) प	म्	ग
धा	ऽ	न	धा	•	न	धा	ऽ	धा	ऽ	न	धा	•	न	धा	•
ग	रि	ग	म्	ग	रि	सा	–								
धा	•	न	धा	•	न	धा	ऽ								

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग बसन्त

आरोह-अवरोह—सा मऽमॄग, मॄ धॄ र्सा ऽ नि धॄ ऽ ऽ प धमॄप ऽ मॄग मॄ ऽ ऽ ग, मॄ ग रॄि ऽ सा।

जाति—औडव वक्र-संपूर्ण। क्योंकि आरोह में 'रि - प' का प्रयोग नहीं होता और अवरोह वक्र रहता है।

ग्रह—आलाप में मध्यम, और तान-क्रिया में गान्धार।

अंश—तार षड्ज। ऋषभ, धैवत उपांश।

न्यास—पञ्चम।

अपन्यास—गान्धार।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य-अंग—मॄर्सा ऽ निधॄप, धमॄप ऽ मॄग मॄऽग।

प्रकृति—गंभीर और तरल मिश्र।

समय—वसन्त ऋतु में चौबीसों घंटे एवं सामान्य रूप से मध्य रात्रि के पश्चात्।

विशेष विवरण

बसन्त एक बड़ा प्रसिद्ध राग है। इस राग के गीतों में बसन्त ऋतु का वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलता है। राग रागिनी के वर्गीकरण को स्वीकार करने वाले कई एक ग्रंथों में बसंत को मुख्य पुरुष रागों में गिनाया गया है।

इस राग में ऋषभ-धैवत कोमल, दो मध्यम (शुद्ध और तीव्रतर) एवं अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं। परज, गौरी, पूर्वी वगैरह रागों में भी सामान्यतः यही स्वर लगते हैं। किन्तु इन सबके चलन में, स्वरों के उच्चार में, स्पर्श में, ठहराव में काफ़ी अन्तर है। इसका आरंभ प्रायः मॄ धॄ र्सा ऽ नि धॄ ऽ प, इस प्रकार मध्यम से होता है, और आरोह करते समय प्रायः निषाद को लांघकर ही तार षड्ज पर पहुंचते हैं, साथ ही तार षड्जसे गंभीर मींड के साथ निषाद-धैवत का प्रयोग करते हुए, पंचम पर कुछ देर ठहरते हैं। तत्पश्चात् 'मॄग मॄ ऽ ग' कहकर गान्धार पर अपन्यास करते हैं और फिर मॄ ग रॄि सा कहकर विन्यास यानी पूर्णविराम करते हैं। यथा मॄ धॄ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सां ऽ नि ध् ऽ प, धूमूप ऽ मूग मूऽग, मूग रि् ऽ सा। सा म-मूऽ मूग, मूनि धूऽ प, प धूमूप ऽ मूग मूऽ ग, मूधू रि्ं नि धूऽप, धूमूप ऽ मूग मूऽग, मूग रि् ऽ सा।

'बसन्त' का निकटवर्ती राग 'परज' है। 'परज' का पूरा विवरण तो, उसी राग के प्रकरण में देख लेना चाहिए। यहाँ बसन्त एवं 'परज', दोनों में भिन्नत्व दिखाने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि परज के पूर्व और उत्तर दोनों अंगों में 'रि्ं सां रि्ं निसां ऽ, ध प धूमूप ऽ ग म ग' यों 'कालिङ्गड़ा' के ढंग से स्वरों के उच्चार किये जाते हैं। इस प्रकार परज के स्वर त्वरित गति से बिना मींड के उच्चारे जायँगे और बसन्त के सभी स्वर विलम्बित गति से मींड सहित उच्चारे जायँगे। इससे दोनों की प्रकृति में भी भेद हो जाता है, और राग के अंग में भी परिवर्तन पाया जाता है। बसन्त गंभीर हैं, परज चंचल है। बसन्त की दूसरी विशेषता यह है कि—मूधू सां ऽ रि्ं नि धूऽ प यों पचंम पर उतरने के बाद, तुरन्त ही धूमूप ऽ मूग मूऽ ग यों 'मूग मूऽ ग' का पुनरुच्चार किया जाता है। इसमें एक बार 'मूग' कहना पर्याप्त नहीं होता, दो बार 'मूग मूऽग' कहना आवश्यक है। क्योंकि यह भी इस राग की अभिव्यक्ति का एक अंग है। जैसे उपर्युक्त 'मूधू सां' वाले स्वर बसन्त की अभिव्यक्त करते हैं, वैसे ही 'मूग मूऽ ग' यह स्वर-क्रिया भी इसमें रागवाची है। जब मध्य-सप्तक के 'सा' पर पहुचना होगा, तब 'मूग मूऽग' के पुनरुच्चार के बाद आलाप में 'मूग रि् ऽ सा' करना होगा। षड्ज के बाद पुनः उत्तरांग की ओर जाते समय साम ऽ मूऽ मूग, यों जरा-सा ललित का आभास देकर मूनि धूऽप, मूधू सां, यों पुनः तार षड्ज पर जाना पड़ेगा। बसन्त को छोड़कर ललिताङ्ग का यह छोटा-सा टुकड़ा अन्य किसी राग में नहीं लिया जाता है। कुछ गुणीजन इस टुकड़े को लिये बिना भी 'बसन्त' को प्रस्तुत करते हैं। इसलिए प्रचार में यह स्वरांग सर्वमान्य होने पर भी, ऐसा नहीं मानना चाहिए कि इस टुकड़े के बिना बसन्त हो ही नहीं सकता। पूर्वी, गौरी या परज में दो मध्यम लगाने के ढंग निराले हैं। तीनों में ही विशेष ढंग से दो मध्यम लगाये जाते हैं, और इन तीनों से बसन्त का शुद्ध मध्यम लगाने का तरीका बिलकुल भिन्न है। इन स्वरों के लगाव को प्रत्यक्ष गुरुमुख से सुन कर अनेकों बार गुरु के सम्मुख ही गा लेना चाहिए। और गले में उनकी विशेषताएँ बिठा लेनी चाहिए। तभी रागों के रूप को आत्मसात् किया जा सकता है।

कुछ लोग 'नि धूमूग' या 'गमू नि धूमूग' यों पंचम को छोड़कर जब ऐसे टुकड़े लगाते हैं, तब शुद्ध धैवत का उपयोग करते देखे गये हैं। संभवतः ऐसे टुकड़ों में शुद्ध धैवत का स्पर्श अनजाने हो जाता है और इसीलिए व्यवहार में यह क्रिया प्रचार-सम्मत मानी गयी है। फिर भी इस प्रयोग से बचने में ही कुशलता है। इस राग का चलन यों होगा।

म धू सां ऽ नि धूऽप, धूमूप ऽ मूग मूऽग, मूधू रि्ं ऽ नि धूऽप, मूधूमूप ऽ मूग मूऽग,

धमूम् निधूधू सां ऽ नि धूऽप, पधूमूप ऽ मूग मूऽग मूग रि् ऽ सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रि्रि्सानि्सा म-म् म्ग, गम् नि ध् ऽ प, म् ध् रि्ं नि ध् ऽ प, धम्प ऽ म्ग म् ऽ ग, गम्

म् नि
नि ध् म् ग ऽ म् ऽ ग रि् ऽ सा, म ऽ म्ग ऽ म् ध् र्सा, म् ध् रि्ं ऽ नि ध् ऽ प।

सामान्य रूपसे इसकी आलापचारी म् ध् र्सा ऽ नि ध् ऽ प, यों मध्यम से ही आरंभ होती है। इसलिए तीव्रतर मध्यम इसका ग्रहस्वर माना जायगा। हाँ, तानक्रिया में गान्धार से उठना सुविधाजनक होता है। इसलिए आलप्ति में मध्यम स्वर ग्रह मानना चाहिए और तानक्रिया में गान्धार। इसका चलन अधिकतर उत्तरांग में ही होता है। इस दृष्टि से तार-षड्ज इसका अंश-स्वर होगा; पंचम न्यास और गान्धार अपन्यास स्वर होगा। धैवत और ऋषभ उपांग-स्वर

नि
होंगे। म् ध् र्सा ऽ नि ध् ऽ प और म् ग म् ऽ ग म् ग रि् ऽ सा एवं पूर्वाङ्ग में ली जानेवाली ललितांग की शुद्ध-मध्यम की क्रिया—ये स्वर क्रियाएं इसमें रागवाची हैं।

इसकी प्रकृति कहीं चंचल, कहीं गंभीर यों मिश्र रहती है। तारगति होने से तरल भाव सूचित होता है और मींड-प्रयोग का बाहुल्य होने से यह गंभीर-भाव धारण करता है। ऋषभ, धैवत, कोमल, तीव्रतर मध्यम और तारगति इनसे विप्रलंभ-शृंगार, बसन्त में प्रिय का वियोग, और तज्जन्य भावनाओं का दर्शन इस राग में मुख्य रूप से प्रतीत होता है। बहार में बसन्त का जो उल्लास है, वह उल्लास बसन्त में दिखाई नहीं देता, हाँ, केवल शुद्ध मध्यम दिखाते समय, कुछ क्षण के लिए उल्लास का दर्शन हो जाता है, फिर भी पुनः वही कोमल 'रि् ध्' और तीव्रतर मध्यम स्वरों से विरहावस्था के भाव कर्ण-गोचर होने लगते हैं। बसन्त ऋतु में यह राग चौबीसों घण्टे गाया जाता है, और सामान्य रूप से इसे मध्य-रात्रि के पश्चात् गाने बजाने का प्रचार है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग बसन्त

मुक्त आलाप

म॒ ध॒ ❀ सां

(१) म॒ ध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, धम॒प ऽ म॒ग म॒ ऽऽ ग ऽ म॒गरि॒सा, रि॒नि॒सा म ऽ म॒ म॒ग ऽ ग नि

ध॒ म॒ ध॒ ❀ सां

ध॒ ऽऽ प म॒ ध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, धम॒प ऽ म॒ग म॒ ऽऽ ग ऽ म॒गरिसा ।

सां

(२) म॒ग धम॒ निध सां, म॒ग ऽ धम॒ ऽ निध॒ सां ऽऽ धम॒प ऽ म॒ग म॒ ऽऽ ग ऽ गम॒नि ध॒ ऽऽ प,

प प म॒ ध ❀ ❀

ध॒ धपम॒प ऽ म॒ग म॒ ऽ ग, म॒ऽऽ ध सां ऽऽ निध॒ ऽऽ प, धम॒ निध॒ सां ऽऽ निध॒ ऽऽ प, म॒ग धम॒ निध॒ सां ऽऽ नि

❀ ध॒ ❀

ध॒ ऽऽ प, सानि॒रि॒सा म॒गधम॒ निध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, धधप म॒ ऽ ध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, म॒म॒ग धधम॒ निध॒

❀ ❀ सां

सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, रि॒रि॒सानि॒सा म॒ध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, ध॒ ध॒ पम॒प ऽ म॒ग म॒ ऽऽ ग ऽ म॒गरि॒सा ।

प म॒ प म॒

(३) रि॒नि॒सा म ऽऽ म॒ ऽ ग ऽ, रि॒रि॒सानि॒सा म ऽऽ म॒ ऽ ग ऽ, पधम॒प ऽऽ म॒ग म॒ ऽऽ ग ऽ,

प म॒ ❀ ❀

रि॒नि॒सा म ऽऽ म॒ ऽ ग ऽ म॒धम॒प ऽ म॒ग म॒ ऽऽ ग ऽ, सानि॒रि॒सा म॒ ऽऽ ग प ऽऽ म॒ धम॒प ऽ म॒ग म॒ऽऽ ग ऽ,

सां

गम॒निध॒ म॒ग म॒गरि॒ ऽ सा ।

प म॒ सां

(४) रि॒रि॒सानि॒सा म ऽऽ म॒ ऽ ग ऽ, गम॒ निध॒ ऽऽ प, धम॒प ऽ म॒ग म॒ ऽऽ ग ऽ, सा म॒ ऽ ग रि॒ ऽ सा,

म॒ ध॒ ❀

म॒ ध॒ सां ऽऽ नि ध॒ ऽऽ प, म॒ग म॒ ऽऽ ग म॒गरि॒ ऽ सा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(५) सानिरिसा म् ऽऽ ग, ध्म् निध् सानिरिसा म् ऽऽ ग, सानिनि रिसासा म् ऽऽ ग, रिरिसानिसा

सा ❀
म् ऽऽ ग, सासानिध् नि रिरिसानिसा म् ऽऽ ग, म्गरि ऽ सा ऽ म ऽ म्ग ऽ, म्धसां ऽऽ निध् ऽऽ प, धध्पम्र ऽ म्ग

सा
म् ऽऽ ग, गम् निध् ऽ प ऽ धम्प ऽ म्ग म् ऽऽ ग, म्गरि ऽ सा ।

ध् ❀ ❀
(६) रिरिसानिसा म् ∿∿ निनिधम्ध् सां ऽऽ नि ध् ऽऽ प, सानिरिसा म् ∿∿ धम् निध् सांऽऽनि

❀
ध्ऽऽप, सानिनि रिसासा म् ∿∿ धम्म् निध्ध् सां ऽऽ नि ध् ऽऽ प, सानिरिसासा ऽ रिसाम्गग ऽ म्गधम्म् ऽ

ध् ❀ सा
धम्निध्ध ऽ सांनिरिंसांसां ऽ सां ऽऽ नि ध् ऽऽ प, ध्धपम्र ऽ म्ग म् ऽऽ ग म्गरि ऽ सा ।

ध् ❀ ❀ ❀
(७) धध्प म्ध् सां ऽऽ नि ध् ऽऽ प, ध्ध्र म्ध् सां ऽऽ नि रिंनिसां ऽऽ नि ध् ऽऽ प, रिरिसानिसा

❀ ❀ सा
म् ऽ निनिधम्ध् सां ऽऽ नि रिंनिसां ऽऽ नि ध् ऽऽ प धम्प ऽ म्ग म् ऽऽ ग ऽ म्गरि ऽ सा ।

ध् ❀ ❀
(८) सानि रिसा म ऽ म् ऽ म्ग ऽ, धम् निध् सां ऽ नि रिंनिसां ऽऽ नि ध् ऽऽ प, ध्धपम्प ऽ म्ग म्ऽऽग,

म ध् ध् ❀ ❀
म् ध् रिं सां ऽऽ नि ध् ऽऽ प, धम निध सांनि रिंरिंसांनिसां ऽऽ नि ध् ऽऽ प, निनिधम्ध् सांसांनिध्नि रिंरिंसांनिसां

❀
ऽऽ नि ध् ऽऽ प, म्धम्प ऽ म्गम् ऽऽ ग ऽ म्गरि ऽ सां ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सां
(९) निसा म़ग ध़म़ निध़ सांनि रें सां म़ं ∿∿ गं म़ं ऽऽ गं रें ऽ सां, रें रें सांनिसां म़ं ∿∿ म़ंगंऽ,

ध़ नि म़ ध़ नि
सांनिरें सां म़ं ऽ म़ंगं, सां ऽ नि नि ऽ रें ऽ सां सां ऽ म़ं ∿∿ गं, नि ऽ ध़ ध़ ऽ सांऽ नि निऽ रें ऽ सां सांऽ

सा गं
म़ं ऽ गं, म़ंऽम़ंगंऽ रें ऽ सां, निसां म़ं ∿∿ गं, म़ ∿∿ ग, म़ं ऽऽ गं म़ंगंरें ऽऽ सां, म़ग रें ऽ सा ।

(१०) म़गग ध़म़म़ निध़ध़ सांनिनि रेंसांसां म़ं ∿∿ गं, सांमं ऽ म़ं ऽ म़ंगं, रेंनिसां मं ऽ

सां नि ध़ सा
म़ं ऽ म़ंगं, म़ंगंरें ऽ सां, रें रें सांनिसां ऽ म़ ऽ ध़ सां ऽऽ नि ध़ ऽऽ प, ध़म़प ऽ म़ग म़ ∿∿ ग, म़गरें ऽ सा ।

———

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग बसन्त

मुक्त तानें

सारिनिसा मगमगरिसा, रिरिसारिनिसा मगमगरिसानिसा, मगग म्‌ मगमगरिसा । निनिसाम् मगरिसा, निसामगरिसानिसा, ममग ममग मगमगरिसा, रिरिसारिनिसा मगमगरिसा । रिनिसा मगग धम् धम् मगमगरिसा । मधसां-निधप मगमगरिसा । रिनिसा सांऽनिधप मगमगरिसानिसा, रिनिसा ममम् निनिधप मगमगरिसा, रिनिसा ममम मम् मग निनिधप मगमगरिसा ! मधसांसांऽनिधप मगमग मगरिसा । सासासा पपप मधसांसांऽनिधप मगमगरिसा, निसागम् धसांऽनि धप मगमगरिसा । धमम् निधध् सांनिरिं सांऽनिधप मगमगरिसा । धमम् धमम् निधसांनि रिंसांऽनिधप मगरिसा । सासासा मम ममग मगमगरिसा । धमम् निधध् निधनिध् निधपधमप मगमग मगरिसा । पधमप मगमग मगरिसा, धमप धमप मगमग मगमगरिसा । निसागमधनिसांरिं सांनिधप मगमगरिसानिसा । धमनिध् सांनिरिंसां सांनिधप मगमग मगरिसा । सासासा गगग मगमगमग मगरिसा, धमनिध् सांनिरिंसां रिंसांनिध् सांनिधप धपमग मगरिसा । सासासा ममम् गग निनिधप मगरिसा । सासा ममगग निनिधध् सांसांनिनि रिंरिंसांनिधप मगमग मगरिसा । धनि धसां निरिं-सांनिधपमग, मधमनि धसांनिरिंसांनि धपमग, गमगध् मनिधसां निरिंसांनि धपमग, साम् गनि धसां निरिंसांनिधपमग, मगमग मगरिसा । निधध् सांऽरिं सांनिधपमग मगरिसा, धमम् निधध सांनिरिंसांऽनि धपमग मगरिसा, मगग धमम् निध् सांनिरिंसांऽऽनि धपमग मगरिसानिसा । रिसासा मगग धमम् निधध् सांनिरिंसांऽनि धपमग मगरिसानिसा । सासासा गगग मग धम् निध् सांनिरिंसां सांनिधप मगरिसा । मगग मगग मग, निधध् निधध् निध् सांनिरिंसां सांनिधप मगरिसा । गगग निनिनि गंगं मंगंरिंसां सांनिधप मगमग मगरिसा । साममगरिसा, मसांसांनिधप मगरिसा । पगरिसा सांनिधप मंगंरिंसां सांनिधप मगमग मगरिसा । मगऽग मगरिसा मंगंऽगं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा । सामऽम् मनिऽनि सांमंऽमं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा । सासासा ममम् मममम् मगरिसा, ममम् निनिनि निनिनिनि धपमग, निनिनि मंमंमं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसानिसा । निसानिम मगरिसा, मधमसां सांनिधप, निसांनिमं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा । निसासा निसासा निसा निसानिम् मगरिसा, मधध् मधध् मध् मधमसां सांनिधप, निसांसां निसांसां निसां निसांनिमं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा । निसा निसा सामगम् मगरिसा, मधमध् धसांनिसां सांनिधप, निसां निसां सांमंगंमं मंगंरिंसां सांनिधप मगरिसा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग बसन्त

ख्याल—तिलवाड़ा

गीत

स्थायी—फूली री बसंत बहारिया,
प्यारे की छवि देखी मन में ।

अन्तरा—बेला, चमेली, गेंदा, गुलाब, जाइ, जुही,
और बेलरिया बन में ।।

स्थाई

०				१३			
					- - मू - घू	घुसां निसां - -	— — निधू
					ऽ ऽ फू ० ऽ	ली ० ० ० ऽ ऽ	ऽ ऽ री ब

×				५			
निं - घू -	मू प - प प	पधूमूप - - मूग	मू - ग -	मूगरिसा	निसा - - सा	रि - रेंसा निसा - -	म - - म
सं ० ऽ ० ऽ	० ० ऽ त ब	हा ० ० ० ऽ ऽ रि ०	यां ऽ ० ऽ	प्या ० ० ०	० ० ऽ ऽ रे	की ऽ ० ० ० ० ऽऽ	० ऽऽ छ

०				१३			
मूपमूपमूग - -	- मू - घू	घुसां - निसां -	- - निधू	नि - घू -	प - मू - घू	घुसां निसां - -	— — निधू
ब ० ० ० ० ० ऽऽ	ऽऽ दे ऽ ०	खी ० ऽ ० ० ऽ	ऽ ऽ म न	में ऽ ० ऽ	० ० फू ऽ ०	ली ० ० ० ऽ ऽ	ऽ ऽ री ब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

०				१३			
				पधूमूप - - मूग	मू - ग मू - धू	धूसां - -	- - - निसां
				वे • •• ऽऽ ••	ला ऽ • च ऽ •	मे • ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ • •

×				५			
सां - - -	निसां - - -	रिं'सांसांनि - मूं' -	मूं' गं - - मूं'	गं - रिं' -	सां - - सां	सांरिं'निसां नि - धू -	निधूप -
ली ऽ ऽ ऽ	• • ऽऽऽ	गौं • • • ऽ • ऽ	दा ऽ ऽ गु	ला ऽ • ऽ	• ऽ ऽ ब	जा • • • ई ऽ जु ऽ	दो • • ऽ

०				१३			
पधूमूप - - मूग	मू • मू ग	रिं - सा - सांरिं'सांसां	- - निधू	नि - धू -	प -, म - धू	धूसां निसां - -	- - निधू
औ••• ऽऽर •	वे • ल रिं	यां ऽ • ऽ • • • •	ऽ ऽ ब न	में ऽ • ऽ	• ऽ, फू ऽ •	लो • • • ऽ ऽ	ऽ ऽ री त्र

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग बसन्त

त्रिताल

गीत

स्थायी—फगवा ब्रिज देखन को चलो री,
फगवा में मिलेंगे कुँवर कान्ह जू, बाट चलत बोले फगवा ॥

अन्तरा—आई बहार सकल बन फूली,
रसीले लाल को ले फगवा ॥

स्थायी

×				२				०				३			
						म्	म्ध्	ध्सां	निसां	नि	ध्	प	म्ग	म्	ग
						फ	ग•	वा•	••	ब्रि	ज	दे	••	ख	न
म्	ध्	नि	सां	सांरिं	निसां	म्	म्ध्	ध्सां	निसां	नि	ध	प	म्ग	म्	ग
को	•	च	लो	री•	••	फ	ग•	वा•	••	में	मि	लें	••	गे	•
ग	रि	ग	म्	ग	रि	सा	–	नि	रि	ग	ग	म्	म्ध्	ध्नि	म्ध्
कुँ	व	र	का	•	न	जू	ऽ	बा	•	ट	च	ल	त•	बो•	••
ध्सां	निसां	नि	ध्	प	–ध्										
ले•	•	फ	ग	वा	ऽ•										

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×				५				०				१३			
								म॒	–	ग	ग	ध॒ म॒	–	ध॒	म॒ध॒
								आ	ऽ	ई	व	हा	ऽ	र	स•
सां	सां	सां	सां	ध॒ सांनि	रें	सां	–	सां	गं	रेंगं	गंमं	गं	रें	सां	–
क	ल	ब	न	फू•	•	ले	ऽ	र	सी	ले•	खा•	•	ल	को	ऽ
नि	ध॒-नि	नि॒ रें	नि	ध॒	प-ध॒										
ले	•ऽ•	अ	ग	वा	•ऽ•										

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानें

	×				५				०				१३			
१)				निसां	ड्रिं'सां	निसां	फ	ग	वा	ऽ	त्रि	ज	दे	•	ख	न
२)				म॒ध	निसां	ड्रिं'सां	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३)	म॒ध॒	निध॒	ध॒नि	स न	निसां	ड्रिं'सां	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४)	म॒	–	–	–ध॒	सांनि	ध॒प	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५)	ड्रिं'सां	सां,ड्रिं'	सांसां		प, ध॒	पप	,,	,,	,,	,,	,,	,,		,,	,,	,,
६)	म॒'गं	म॒'गं	ड्रिं'सां	स न	सांनि	ध॒प	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७)	म॒ग	ड्रिसा	सांनि	प	म॒'गं	ड्रिं'सां	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८)	सासा	सा, म॒	म॒म॒	निनि	निम॒'	म॒'म॒'	म॒'गं	ड्रिं'सां	सांनि	ध॒प	म॒ग	ड्रिसा	सांनि	ध॒प	म॒ग	ड्रिसा
	पनि	धप	म॒ग	ड्रिसा	ध॒नि ए•	सांनि ••	फ	ग	वा	ऽ	त्रि	ज	दे	ऽ	ख	न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

×			५				०					१३			
९) सारि'	सां,सां	रि'सां	निसां	निं,नि	स न	धनि	ध़,ध़	निध़	पध़	प,प	ध़ प	मप	म,म़	पम़	मम़
ग,ग	मग	गम़	निनि	धप	मग	रिसा	फग	ऽ वा	ऽ	त्रि	ज	दे	ऽ	ख	न
१०) मग	ग,म़	गग	मग	मग	मग	मग	रिसा	सांनि	नि,सां	निनि	सांनि	सांनि	सांनि	सांनि	धप
मं'गं	गं,मं'	गंगं	मं'गं	मं'ग	मं'गं	मं'गं	रिं'सां	सांनि	धप	मग	रिसा	मं'गं	रिसां	सांनि	धप
मग	रिसा	मं'गं	रिं'सां	सांनि	धप	मग	रिसा	फ	ग	वा	त्रि	ज	दे	ख	न
११) गं	-	-	मं'मं'	मं'गं	रिं'सां	सांनि	धप	मग	रिसा	ग	·	-	मम़	मग	रिसा
गं	-	-	मं'मं'	मं'गं	रिं'सां	सांनि	धप	मग	रिसा	फग	ऽ वा	ऽ त्रि	ज दे	ऽ ख	ऽ न

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग बसन्त

द्रुत एकताल

गीत

स्थायी—ऐण्डी ऐयडी गैण्डी गैण्डी फिरे ब्रजनार गोरी,
गरवा लागो, रंग बरसे रुत बसन्त में आली
जोबन माती बैस (वयस) थोरी ॥

अन्तरा—सोलह सिंगार करि आभरन, पहर पहर भूखन,
गूँद गूँद गूँद्द ए, अबिर गुलाल लिए भर झोरी ॥

स्थायी

×		०		५		०		९		११	
	सां	नि	ध॒	प	प	प	प	म॑ग	म॑	–	ग
ऐं •	•	डी	ऐं	•	डी	गैं	•	डी •	गैं	ऽ	डी
म॑	ग		ध॒	नि	सां	सांरें॒	निसां	नि	ध॒ म॑	–	ध॒
फि	•	रे	•	ब्र	ज	ना •	• •	र	गो	ऽ	री
म॑	म॑	ध	न	सां	स	ध॒नि	निरें॒	नि	ध॒	म॑	ग
ग	र	वा	ला •	•	गो	र •	ग	ब	र	से	•
गम॑	नि	ध॒	म॑	ग	म॑	ग	–	–	रे॒	–	सा
• रु	त •	ब	सं	•	त	में	ऽ	ऽ	आ	ऽ	लो
सा	नि॒	सा	ग	–	ग	म॑	–	ध॒	ध॒नि	म॑	म॑
जो	•ब	न	मा	ऽ	ती	बे	ऽ	स	थो •	•	री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×		०		५		०		३		११	
म॒	ध॒	म॒	ध॒	सां	सां	सां	सां	नि	रि॒ं	सां	सां
सो	ल	ह	सिं	गा	र	क	रि	आ	म	र	न
सां	सां	सां	सां	सां	सां	ध॒ नि	रि॒ं	–	नि	ध	–
प	ह	र	प	ह	र	भू	•	ऽ	ख	न	ऽ
म॒	–	ध॒	ध॒ नि	निरि॒ं	नि	ध॒ नि॒	म॒	ध॒	ग म॒	–	ग
ग॒	ऽ	द	गं॒ •	• •	द	गं॒	•	द	गं	ऽ	द
ग	म॒	नि	नि	ध॒	म॒	ग	म॒	ग	रि॒	सा	सा
ए	•	•	•	•	•	•	•	•	•	•	•
सां	गं	रि॒ं	म॒ं	गं	रि॒ं	सां	सां	नि रि॒ं	नि	म॒	ध॒
भ	बी	र	गु	ला	ल	लि	ए	म	र	झो	री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग परज

आरोह-अवरोह :—नि सा ग, ग म् ध् नि सां, निर्िं निसां नि ध् प ऽ गमग, म् ग रे ।

जाति :—औडव वक्र सम्पूर्ण ।

ग्रह :—मन्द्र निषाद और मध्य तीव्रतर मध्यम । द्रष्टव्य :—विशेष विवरण ।

अंश :—पूर्वांग में गान्धार और उत्तरांग में निषाद ।

उपांश :—ऋषभ, धैवत ।

न्यास :—गान्धार, पञ्चम ।

अपन्यास :—तार षड्ज ।

विन्यास :—मध्य षड्ज ।

मुख्य अंग :—र्िं सार्िं निसां ध्पध्म्प ऽ गमग ।

समय :—शेष रात्रि ।

प्रकृति :—चंचल ।

विशेष विवरण

स्थूल दृष्टि से परज की स्वरावलि और वसन्त की स्वरावलि एक-सी दिखाई देती है। दोनों में 'रि-ध्' कोमल और दो मध्यम लगते हैं। स्वरावलि की समानता होने पर भी दोनों राग अपने चलन से भिन्न हैं। यदि स्थूल मान से वसन्त और परज की भिन्नता दिखानी हो तो यों कह सकते हैं कि वसन्त के स्वर विलम्बित गति, मींड, दीर्घ-उच्चार से प्रयोग में लाये जाते हैं, और परज में मींड-रहित स्वरों के द्रुत उच्चार किये जाते हैं।

परज के स्वरोच्चार की एक विशेष खामी यह है कि उसके स्वर कालिङ्गड़ा के सदृश उच्चारे जायँ, यानि प ऽ ग म ग, ध् प ध् मप ऽ ग म ग, र्िं सां र्िं नि सां, नि र्िं सां र्िं नि सां ऽ नि ध् प, ध् प ध् म प ऽ ग म ग, म् ग रि सा। 'ध् प ध् म् प' में यों तीव्र मध्यम का भी प्रयोग होता है। इस प्रकार की स्वरावलियों के शीघ्रोच्चार से परज का अविर्भाव होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बसन्त में 'म॒ ध॒ सां ऽ नि ध॒ ऽ प इन स्वरावलियों के दीर्घोच्चार से राग का दर्शन होता है। ध्यान रहे कि-परज में कभी भी 'म॒ ध॒ सां ऽ म॒ ध॒ रें॒ नि ध॒ ऽ प', ऐसे दीर्घोच्चार से स्वरों का प्रयोग न किया जाय, अपितु म॒ ध॒ नि-सां, नि रें॒ सां रें॒ नि सां ऽ नि ध॒ प, ध॒ प ध॒ म॒ ग ऽ गमग, यों द्रुतगति से स्वर लिये जायँ। पूर्वांग में 'म॒ ग म॒ ऽ ग' यों 'म॒ ग' की जोड़ी जैसे बसन्त में दुहरायी जाती है, वैसी परज में न दुहरायी जाय, और उसके स्थान पर 'प ऽ ऽ ग म ग, ध॒ प ऽ गमग, ध॒ प ध॒ म॒ प ऽ गमग, यों लिया जाय। इस 'प ऽ ग म ग' या 'ध॒ प ऽ ग म ग' में अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में छिपा हुआ तीव्रतर 'म॒' रहता है। 'नोटेशन' में इसे ठीक से नहीं दिखा सकते। इसलिए प' के सामने लगे हुए अवग्रह के ऊपर तीव्रतर मध्यम दिखा दिया गया है। साथ ही 'सा म ऽ म॒ मग, बसन्त में यह जो ललितांग का किंचित् आभास दिखाया जाता है, परज में इसका समूचा त्याग होगा। परज में जब भी शुद्ध मध्यम का प्रयोग करना होगा "प ध॒ म॒ प ऽ ग म ग" यों ही किया जायगा। बसन्त के अवरोह में धैवत को दीर्घ करने के कारण निषाद दुर्बल दीखता है, परज में धैवत की अपेक्षा निषाद कुछ दीर्घ रहता है। परज का सामान्य आरोह-अवरोह निम्नोक्त है :--

नि॒साग, म॒ ध॒ नि सां, रें॒सां नि ध॒ प : ग म ग, म॒ ग रे॒ सा अथवा म ग रे॒ सा।

'प ऽ म॒ ग म ग' यह टुकड़ा, बिहाग, पूर्वी और परज तीनों में प्रयुक्त होता है, किन्तु तीनों रागों में इसके प्रयोग और उच्चार का ढंग निराला है। यथा--

सा प म प प प—म॒ ग म ग	बिहाग
सा रे॒ प—म॒ ग म ग	पूर्वी
म॒ प ऽ गमग	परज

परज के भिन्न-भिन्न पदों की रचना, उनका उठाव, और इस राग के स्वरांग-चलन को देखते हुए, मन्द्र-निषाद और तीव्रतर मध्यम दोनों को ग्रह का स्थान देना उचित है।

इस राग का सारा चलन तार-मध्य स्थान में और मध्यद्रुतगति में ही होता है। मन्द्र-स्थान, विलंबित-गति, मींड, स्वरान्दोलन आदि सर्वथा त्याज्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग परज

मुक्त आलाप

म्　　　　　म्　　रिं　　　म्　　　म्

(१) सा, धपधम्प ऽऽ गमग, सारिंनिसा पधम्प ऽऽ गमग, निसाग, प ऽऽ गमग, धपधम्प ऽऽ गमग, सारिंनिसा ग ऽ गमग, गरिंसा ।

म्　　　　　म्

(२) रिं निसा ग, धधपमप ऽऽ गमग, सानिरिंसा ऽ पम्धप ऽऽ गमग, सानिसारिं ग ऽ मग, गम्पधम्प ऽऽ गमग ऽ म्गरिंसा ।

म्　　　　　म्

(३) सारिंसारिंनि ऽऽ सारिंग, पधपध प ऽऽ गमग, निसारिंसा निसाग ऽ सागमग गमप ऽऽ गमग, गमग सागमप ऽऽ मधपधमप ऽऽ गमग, म्मगसागमप ऽऽ धपधप ऽऽ गमग ऽ सानिरिंसामग ऽ पम्धप ऽऽ गमग, म्गरिंसा ।

म्　　म्　　म्　　नि　　सा

(४) मधमप ऽऽ गमग, गमगप ऽऽ गमग, साग साम गप ऽऽ गमग, निसा साग साग गम्

ग　म्　　　　म　　　　　म्

गम् मप ऽऽ गमग, गम गप मध पध मप ऽऽ गमग, निसानिरिं सरिंनिसा, गमगप मधमप ऽऽ गमग, रिंनिसा गसाग मगम पमप धपधमप ऽऽ गमग, म्गरिंसा ।

म्　　नि　　　　म्

(५) निसाग ऽ मधनि ऽ धपधमप, धपधमप नि ऽ धपधप, निसारिंसा ऽ धपधप, धम् ऽ पधनि ऽ धपधप,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtlon by eGangotri

धूपधूप ऽऽ गमग, सागमध् पध्मूप ऽऽ गमग, मूग पम् धूप नि ऽऽ धूपधूप, निसागम् नि ऽऽ धूपधूप ऽ मूगमग ऽ

धूपधूप ऽ मूधूनि ऽऽ धूप, धूप ऽऽ गमग ऽ मूगरिसा ।

(६) रिनिसा ग ऽ मूधूनि ऽ पमूधूप नि, धूपधूमप ऽऽ गमग ऽ नि, धूपधूमूप ऽ मगमसाग ऽ गमनि,

सारिनिसा ऽ पधमूप ऽ धूमूधूप नि, रिरिसानिसा ऽ ममगसाग ऽ धधूपमूप ऽ नि, धूनि धूनि पध् पध् मूप मूप गमग,

साग साग गम गम मप मप पध् पध् मप मप नि ऽऽ धूपधूप ऽ ऽ गमग, सानिरिसा ऽ पमूधूप ऽ सांनिरिंसां ऽ

धूपधूप ऽऽ गमग, नि ऽऽ धूपधूप ऽऽ गमग, सांनि ऽऽ धूपधूप ऽऽ गमग, गमूपसानि ऽ धूपधूप ऽऽ गमग, निध

सानि रिंसां नि ऽऽ धूपधूप ऽऽ गमग, सागमग ऽ गमूपम् ऽ मूपधूप ऽ धनिसानि ऽ धूपधूप ऽऽ गमग, मग ऽ पम् ऽ

धूप ऽ सांनि ऽ धपधमूप ऽऽ गमग ऽऽ मूगरिसा ।

(७) निसाग ऽ मूधूनि ऽ निसांगं ऽ रिंसांरिं निसां, रिनिसा ग ऽ धमूप नि ऽ रिंनिसां गं ऽ रिंसांरिं निसां,

सानिरिसा ग ऽ पमूधूप नि ऽ सांनिरिंसां गं ऽ रिंसांरिं निसां, रिनिसारिग ऽ रिसारिनिसा, धमूपध् नि ऽ धूपधमूप, रिंनिसां

रिंगं ऽ रिंसांरिं निसां ऽ धूपधमूप ऽ पमूप गमग, साग साग गमगम मूपमूप ऽऽ गमग ऽऽ मूगरिसा ।

(८) रिरिसानिसाग ऽ धधूपमूपनि ऽ रिंरिंसांनिसांगं ऽ गंमं गंमं रिंगं ऽ सांरिंसांरिं निसां ऽ निसांनिसां

धूनि ऽ पध् पध् मूप ऽ गमगमरिग, सारिसा गऽमग मूऽपम् पऽधूप धूऽनिध् निऽसानि साऽरिंसां, सांरिंसां सांरिंसां

निसां ऽ पधूप पधूप मूप ऽ गमग गमग साग ऽ, साऽगसा गऽमूग मूऽपम् पऽधूप धूपधूप ऽऽ गमग ऽ मूगरिसा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग परज

शुक्त तानें

निसागग मधनिसां मधमर गमगग मगरिसा । पधपध प गमगग मगमगरिसा, निसागग गमरधपधमप गमगग मगरिसा, गमग गमग पधपधमर गमगग मगरिसा । निसागग सागमम गम प पधपधमपमपगमगग मगरिसा, मगग मगग पधपधमप गमगग, गम गप मध पधपधमप गमगग, सागमग गमपम , पधमप गमगग मगरिसा । निनिनि साससा गग मग मग मगरिसा, मधनिसां धनिसांरिं निसांधनि पधमप गमगग मगरिसा । मप पम धप निध सांनि रिंसां सांनिधप पधमप गमगग मगरिसा । निसागम धनिसांरिं सांनिधप पधमप गमगग मगरिसा, गमग गमग धनिध धनिध निसांनि निसांनि सांरिंसां सांरिंसां निसांनिसां धनिधनि पधपध मपमप गमगग मगरिसा । ममग गऽग मगरिसानिसा, सांसांनि निऽरिंसांनिधपमग, पधपधमप गमगग मगरिसानिसा । सामग गपम मधप पनिध धसांनि निरिंसां सांरिं सांरिं सांनिधपमप पधमप गमगग मगरिसा । मगरिसानिसा सांनिधपमप गमगग मगरिसानिसा । निसानि निसानि गमग गमग मपम मपम पधप पधप मपम मपम गमग गमग, निसांनि निसांनि धनिध धनिध पधप पधप मपम मपम गमग गमग सांरिंसां सांरिंसां निसांनि निसांनि धनिध धनिध पधप पधप मपम मपम गमग गमग मगरिसानिसा । सांसांऽरिं सांनिधप पधमप गमगग, सांनिरिंसां सांनिधप पधमप गमगग गंगंरिंसां सांरिंनिसां पधमप गमगग, गंमंगंरिं सांनिसां सांरिंसांनिधपमप पधमप गमगग मगरिसा ; निसागम पधनिसां गंमंगंरिं सांनिधप पधमप गमगग मगरिसा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग परज

त्रिताल

गीत

स्थायी—बंसरी तू कवन गुमान भरी ।

अन्तरा १—सोने की नाहीं, रूपे की नाहीं, नाहीं रतन जरी ॥

अन्तरा २—जात सिफत तोरी सब कोउ जानत, मधुबन की लकरी ॥

अन्तरा ३—का री भयो जो हरिमुख लागी, बाजत विरह भरी ॥

स्थायी

×				५				०				१३			
			म़	–	ध़	नि	ध़नि	रें	नि	ध़	प	ध़म़प-	म़	प	ध़
			बं	ऽ	स	री	तू॰	क	व	न	गु	मा॰॰ऽ	॰	न	म
प	–	–	म़	–	ध़	नि	ध़नि	रें	नि	ध़	प	ध़म़प-	– म़	ग	म
री	ऽ	ऽ	बं	ऽ	स	रो	तू॰	क	ब	न	गु	मा॰॰ऽ	ऽ॰	न	भ
ग	–	–	म़	–	ध़	नि	ध़नि	–							
री	ऽ	ऽ	बं	ऽ	स	री	तू॰	ऽ							

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×				५				०				१३			
								-	ध्	म्	ध्	नि	-	सां	-
								ऽ	सो	ने	की	ना	ऽ	हीं	ऽ
-	रें	सां	रें	नि	-	सां	-	-	मध्	-नि	सां	-	निध्	-प	धम्
ऽ	रू	पे	की	ना	ऽ	हीं	ऽ	ऽ	ना०	ऽहीं	०	ऽ	रत	ऽन	०ज
।	-	-	म्	-	ध्	नि	धनि								
री	ऽ	ऽ	बं	ऽ	स	री	तू०								

अन्य अन्तरे भी इसी प्रकार रहेंगे ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग परज

त्रिताल

गीत

स्थायी—मैं क्यों गई जमुना पानी री, देखत ही मन मोह लियो,
मैं तो साँवल हाथ बिकानी री।

अन्तरा—मेरे मन बसी साँवरी सूरत, लोग कहैं बौरानी री सखी,
प्रगट भई बलिहारी श्याम सों, लागी प्रीत न छानी री॥

स्थायी

×				५				०				१३			
						म्	ध्	सांनि	रिं'सां	–नि	ध्	–	मृध्	–मृ	ध्
						मैं	•	क्यों •	••	ऽग	ई	ऽ	जमु	ऽना	•
नि	–	सां	रिं'	निसां	–नि	म्	ध्	सांनि	रिं'सां	–नि	ध्	–	मृध्	–म्	ध्
पा	ऽ	नी	ऽ•	री•	ऽ•	मैं	•	क्यों •	••	ऽग	ई	ऽ	जमु	ऽना	•
नि	–	सां	–रिं'	निसां	–	–	–	नि	–	सां	रिं'	सांरिं	सांसां-नि	ध्	प
पा	ऽ	नी	ऽ•	री•	ऽ	ऽ	ऽ	दे	ऽ	ख	त	ही•	••ऽ•	म	न
पध्मप	–म्	ग	म	ग	मग	सारि	निसा	–	निरि	–ग	ग	ध् म्	ध्	नि	सां
मो•••	ऽ•	ह	लि	यो	••	मैं•	तो•	ऽ	सां•	ऽव	ल	हा	•	थ	बि
सांरिं	सांरिं'	निसां	–नि	ध्नि	सांनि	म्	ध्								
का•	••	नी•	ऽ•	री•	••	मैं	•								

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×				५				०				१३			
								म्	ध्	म्	ध्	नि	नि	सां	सां
								मे	॰	रे	॰	म	न	व	सी
सां	रिं	सां	रिं	नि	–	सांरिं	निसां	–	म्ध्	–म्	ध्	नि	नि	सां	सां
सां	॰	व	री	सू	ऽ	र॰	त॰	ऽ	मे॰	ऽरे	॰	म	न	व	सी
–	सांरिं	–सां	रिं	नि	–	सांरिं	निसां	ध्	रिं	सां	रिं	नि	सांनि	म्	ध्
ऽ	सां॰	ऽव	री	सू	ऽ	र॰	त॰	लो	॰	ग	क	हे	॰॰	बौ	॰
धनि	रिं सां	नि	ध्	प	ध्	म्	प	–	निनि	–सां	–रिं	सांरिंसांसां	–नि	ध्	प
रा॰	॰	नी	॰	री	॰	स	खी	ऽ	प्रग	ऽट	ऽभ	ई॰॰॰	ऽ॰	व	लि
पध्म्प	–म्	ग	म्	ग	रि	सा	–	नि	रि	ग	–	म्	ध्	नि	सां
हा॰॰॰	ऽ॰	री	श्या	॰	म	सों	ऽ	ला	॰	गी	ऽ	प्री	॰	त	न
सांरिं	सांरिं	निसां	–नि	धनि	सांनि	म्	ध्								
छा॰	॰॰	नी॰	ऽ॰	री॰	॰॰	मैं	॰								

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानें

	×				५				०				१२			
१)			मृध्	निसां	–	धृप	मैं	ऽ	क्यों	ऽ	•	•	•	•	•	•
२)			मृध्	निसां	रिंसां	–नि	धृप	मैं	क्यों	”	”	”	”	”	”	”
३)	मृध्	निसां	सांरिं	सांरिं	निसां	–नि	धृप	”	”	”	”	”	”	”	”	”
४)	मृध्	निसां	धनि	सांरिं	निसां	–नि	धृप	”	”	”	”	”	”	”	”	”
५)	निसां	–नि	धृप	पधृ	पधृ	मृप	गम	ग–	क्यों	”	”	”	”	”	”	”
६)	मृग	रिसा	निसा	गमृ	धृनि	सां–	–मैं	––	क्यों	”	”	”	”	”	”	”
७)	सांनि	धृप	मृग	रिसा	मृध	निसां	––	मैं	”	”	”	”	”	”	”	”
८)	धृप	धम	प–	–मृ	गम	ग–	मृग	रिसा	”	”	”	”	”	”	”	”
९)	पध	पधृ	मृप	मृप	गम	ग, मृ	मृग	रिसा	”	”	”	”	”	”	”	”

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

X				५				०				१३			
१०) सांरिं'	सांरिं'	निसां	निसां	धूनि	धूनि	पध्	मूप	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
११) सांरिं'	सां,नि	सांनि	धनि	ध्, प	धूप,	मूप	म्, ग	मग	गम्	मूग	रिसा	क्यों–	गई	जमु	ना–
१२) धम्	प, ध	मूप	निध्	ध, नि	धध्	धम्	प, नि	धध्,	सांनि	नि, रिं'	सांसां,	रिं'नि	नि,नि	धूध,	धम्
प, प	मम्,	पम्	ग म	ग –	– म्	मूग	रिसा	क्यों	ऽ	क्यों	ऽ	क्यों -	गई,	जमु	ना–
१३) सांरिं'	सांनि,	निसां	निरिं'	सांनि,	धनि	धसां	निरिं'	सांनि	मध्	मूनि	धसां	निरिं'	सांनि	सांरिं'	सांनि
धूप	पध्	मूप	गम	ग –	– म्	मूग	रिसा	क्यों ऽ	गई	जमु	ना ऽ	जमु	ना ऽ	जमु	ना ऽ
१४) सांरिं'	सां,सां	रिं'सां,	सांरिं'	सांरिं'	निसां	निरिं'	निसां	धनि	ध, ध्	निध,	धूनि	धसां	निरिं'	सांरिं'	निसां
मध्	म, म	धम्	मूनि	धसां	निरिं'	सांरिं'	निसां	सांरिं'	सांनि	धूप	पध्	मूप	गम	ग –	जमु
– ना	– –	पा •	– –	नी –	– –	जमु	– ना	– –	पा –	– –	नी –	– –	जमु	– ना	– –
१५) सांरिं'	सांरिं'	निसां	निसां	निरिं'	सांरिं'	निसां	निसां,	धनि	धूनि	निसां	निसां	सांरिं'	सांरिं'	निसां	निसां
धूनि	धनि	मध्	मध्	धूनि	धनि	निसां	निसां	सांरिं'	सांरिं'	निसां	निसां	धनि	धनि	पध्	पध्
मूप	मूप	गम	ग,ध्	पध्	मूप	गम	ग, ध्	पध्	मूप	गम	ग –	क्योंऽ	गई	जमु	नाऽ

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
१६) सांरिं	रिंसां	निसां	सांनि	सांरिं	रिंसां	निसां	सांनि	धनि	निध्	निसां	सांनि	सांरिं	रिंसां	निसां	सांनि
धनि	निध्	पध्	ध्प	मप	पम्	गम	ग –	रिंसा	ऽरिं	सांनि	ध्प	पध्	मप	गम	ग,रिं
सांनि	ध्प	पध्	मप	गम	ग, रिं	सांनि	ध्प	पध्	मप -	गम	ग –	क्योंऽ	गई	जमु	नाऽ
१७) ध्प	– ध्	मप	गम	ग –	– म्	मग	रिसा,	रिंसां	– रिं	सानि	ध्प	ध्प	– ध्	मप	गम
ग –	– म्	मग	रिसा	निसा	गम्	धनि	सां –	क्योंऽ	गई	जमु	नाऽ	जमु	नाऽ	जमु	नाऽ

अतिरिक्त तानें

×				५				०				१३			
१)	मध्	निसां	सांरिं	निसां	– नि	ध्प	मैं	क्यों	•	•	•	•	•	•	•
२) सांरिं	निसां	निसां	धनि	धनि	पध्	पध्	मप	मप	गम्	गम्	मग	रिसा	जमु	– ना	ऽ
३) धनि	धसां	सांरिं	सांरिं	निसां	– नि	धप	मैं	क्यों	•	•	•	•	•	•	•

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	×				२				०				३			
४)	सांरें	निसां	धनि	पध	मप	गम	मग	रेसा	क्यों	गई	क्यों	गई	क्यों	गई	जमु	नाऽ
५)	सांनि	नि,रें	सांसां,	निध	ध,सां	निनि,	पम	म,ध	पप,	निध	ध,	सांनि	नि,रें	सांसां	सांनि	धप
	पध	मप	गम	ग –	मम	मग	रेसा	मैं	क्यों	०	०	०	०	०	०	०
६)	धप	– ध	पध	मप	गम	ग –	रेंसां	– रें	सांरें	निसां,	धप	– ध	पध	मप	गम	ग –
	मग	रेसा	निसा	गम	धनि	सां –	निसा	गम	धनि	सां –	निसा	गम	धनि	सां –	जमु	नाऽ
७)	मप	ध,म	पध	पध	मप	गम	ग –	निसां	रें,नि	सांरें	सांरें	सांनि	धप	पध	मप	गम
	ग –	– म	मग	रेसा.	क्यों	गई	जमु	ना०	क्यों	गई	जमु	ना०	क्यों	गई	जमु	ना०
८)	पध	मप	गम	ग –	– म	मग	रेसा,	सांरें	निसां	धनि	पध	मप	गम	ग –	– म	मग
	रेसा	मैं	क्यों	गई	ऽऽ	ऽऽ	मैं	क्यों	गई	ऽऽ	ऽऽ	मैं	क्यों	गई	जमु	नाऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग परज

धमार

गीत

स्थायी—लाल गुलाल जिन डारो, बरजोरी न करो रघुनंदन
छोरो जी हाथ हमारो ।।

अन्तरा—झकझोरो न मुरक जाय बैंया,
छूट जाय कचवारो, राम सखे थारे पैंया परत
मेरो घूँघट पट न उघारो ।।

स्थायी

×			०		६		०			११		०	
सां	—	नि	ध्	प	—	प	ध्	प-म्	ग	म	ग	—	—
ला	ऽ	ल	गु	ला	ऽ	ल	जि	नऽ•	डा	•	रो	ऽ	ऽ
सा	नि़	सा	ग	—	म्	ध्	नि	सां	रें	नि	सां	नि	ध्
ब	र	जो	री	ऽ	न	क	रो	र	घु	न	•	द	नं
ध्	रें	सां	रें	नि	सां	नि	म्	ध्	नि	ध्	सां	म्	ध्
छो	०	रो	जी	हा	•	थ	ह	मा	•	रो	•	•	•

अन्तरा

											नि		
म	ग	म्	प	—	प	म्	ध्	नि	नि	—नि	ध्	सां	नि
झ	क	झो	रो	ऽ	न	मु	र	क	जा	ऽय	बैं	•	या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×			•		५		•			११		•	
ध॒	सां	नि	प‿-	-‿म॒	गम‿	ग	म॒	ध॒	नि	-	ध॒	सां	नि
छू	•	ट	जा‿ऽ	ऽ‿•	•‿•	य	क	च	वा	ऽ	रो	•	•
नि	-	रि॒'	गं	गं	रि॒'-गं‿	म॒'	गं	रि॒'	सां	रि॒' सां‿	-‿रि॒'	नि सां‿	नि ध॒‿
रा	ऽ	म	स	खे	था‿ऽ•	री	पैं	•	या	पर‿	•‿त	मे‿•	रो‿•
ध॒	रि॒'	सां	रि॒'	नि	सां	नि	म॒	ध॒	नि	ध॒	ध॒ सां-नि‿	म॒	ध॒
घूं	•	घ	ट़	प	ट	न	ड़	घा	•	रो	•‿ऽ	•	•

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग ललित

आरोह-अवरोह—नि़रे॒ग़म् ध॒निसां निध॒म् मगरे॒सा । द्रष्टव्य—विशेष विवरण

जाति—षाडव-षाडव।

ग्रह—मन्द्र निषाद और मध्य तीव्रतर मध्यम।

अंश— शुद्ध मध्यम ; अनिवार्य सहवर्ती तीव्र मध्यम। उपांश-पूर्वाङ्ग में गान्धार, उत्तराङ्ग में धैवत ।

न्यास—शुद्ध मध्यम।

विन्यास—षड्ज।

मुख्य-अंग—नि़रे॒ग़म म॒ऽम ।

प्रकृति—गंभीर।

समय—शेष रात्रि।

विशेष विवरण

ललित एक प्रसिद्ध और मधुर राग है। इसमें ऋषभ धैवत कोमल और स्थूल रूप से दो मध्यम का प्रयोग होता है, ऐसा माना जाता है। पञ्चम का समूचा त्याग होने से, इस राग के प्रयोग के समय तानपूरे पर शुद्ध मध्यम ही मिला रहेगा। इसलिए शुद्ध मध्यम से षट् श्रुति अन्तर से संवाद करने वाला कोमल 'ध' इस राग में प्रयुक्त होता है। तद्वत् 'म-म॒-म' करते समय शुद्ध 'म' से एक श्रुति के अन्तर पर स्थित तीव्र 'म' का प्रयोग हो जाता है। और 'म॒ ग रे॒ सा' अथवा 'म॒ ध॒ सां' ऐसी अन्य क्रिया करते समय शुद्ध मध्यम से दो श्रुत्यन्तर पर स्थित तीव्रतर मध्यम सहज रूप से लगता है-स्वरों के परस्पर संवाद-सम्बन्ध के आधार पर ऊपर लिखे स्वर अनायास स्व भाविक-रीत्या लग जाया करते हैं।

भारत-भर में सभी हिन्दू-मुस्लिम गायक-वादक जो ख्याल अङ्ग से गाते बजाते हैं, वे ललित में कोमल धैवत का प्रयोग करते हैं। हमारी परम्परा में हमें ऐसे 'ध्रुपद' और 'धमार' की भी शिक्षा मिली है, जिनमें धैवत कोमल ही बरता गया है, फिर भी भारत में कहीं कहीं कुछ 'ध्रुपद' गायक शुद्ध धैवत ही प्रयोग में लाते हैं। पंजाब की ओर पंचम रहित 'ललित-पंचम' नाम का जो राग प्रचार में है उसमें शुद्ध धैवत का प्रयोग होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस राग का दर्शन 'नु रि ग म मू ऽ म' इतने ही स्वरों में पूर्ण रूप से हो जाता है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए उत्तरांग के किसी स्वर की अपेक्षा नहीं है। ऊपर लिखे अक्षरों का उच्चार होते ही ललित राग प्रत्यक्ष हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि ललित पूर्वांग प्रधान राग है उत्तरांग प्रधान नहीं। जो राग जिस अंग में स्थापित होता है, वही उसका प्रधान अंग है, चाहे वह पूर्व हो या उत्तर। पंडित भतखण्डे ने इस राग को उत्तरांग प्रधान माना है, यद्यपि वह निस्सन्देह पूर्वांग प्रधान है, जैसा कि ऊपर कह आये हैं। हाँ, यह शेष रात्रि के समय गाया जाता है, इसलिए उन्हें अपने ही बनाये हुए स्थूल नियम से बाध्य होकर इसे उत्तरांग प्रधान मनना पड़ा हो तो आश्चर्य नहीं है। वास्तव में तोड़ी, देवगिरि, देशी, भैरव आदि कई ऐसे राग हैं, जो पूर्वांग प्रधान ही हैं और प्रातः काल में गाये जाते हैं।

अपना कोई ढाँचा बनाकर, उसी में सब रागों को ढालने का यत्न करने के बजाय, राग के निजी रूप, प्रकृति, गति, अभिव्यक्ति यादि का विचार करके रागों की रचना में निहित नियमों को खोजना चाहिए, और उन्हें शास्त्रीय रूप देना चाहिये। तभी लक्ष्य और लक्षण का समन्वय हो सकता है। शास्त्र पहले नहीं, कला पहले है, प्रचार पहले है।

पण्डित भातखण्डे ने इस को मारवा थाट में रखा है। ध्यान रहे, जिस मारवा थाट में शुद्ध मध्यम है ही नहीं उससे ललित को संभूत बताकर भी इसका वादी स्वर उन्होंने शुद्ध मध्यम ही कहा है। पण्डित भातखण्डे के विधान की असंगति आश्चर्य में डालने वाली है, जिसकी ओर हम पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं। जो मूल में ही नहीं, वह अंकुर में या फल फूल में कहाँ से आया? इससे यह स्पष्ट है कि उनकी थाट व्यवस्था भी असंगत, असमंजस्य अवैज्ञानिक और अपूर्ण है।

'म मू ऽ म' या 'धु मू ऽ म' यों दो मध्यमों का सह-प्रयोग इस राग की प्राण-क्रिया है। इस राग का ग्रह स्वर निषाद और तीव्रतर मध्यम है शुद्ध मध्यम इसका अंश-स्वर है और तीव्र 'म' उसका अनिवार्य सहवर्ती है। न्यास-स्वर भी शुद्ध मध्यम ही है और षड्ज विन्यास है। इसकी प्रकृति शान्त गम्भीर है। शुद्ध मध्यम का अधत्व, दीर्घोच्चार और विपुल प्रयोग इस राग में सर्वथा प्रौढ़ गम्भीर भाव को अभिव्यक्त करने वाले तत्व हैं।

इसका आरोहावरोह 'नि रि ग मू धु नि सां नि धु मू-म ग रि सा' होने पर इस राग के चलन में, उसकी आलाप चारी में 'धु नि-सां' कभी नहीं जाते हैं, अपितु मू धु सां ही जाना चाहिए। मन्द्र मध्य की आलापचारी में हमेशा 'मू-धु-सां' ही होगा। और वहाँ पर 'म' तीव्रतर ही रहेगा। यही लक्ष्य है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग ललित

मुक्त आलाप

रि॒ म॒ ग रि॒ ध॒ नि॒ नि॒
(१) सा, नि॒रि॒गरि॒ म, म॒म॒न गम ऽ म ऽ गरि॒म॒गरि॒ ऽ सा। सा ऽ नि॒ध॒ ऽ म॒ ऽ म॒ ऽ गम॒म॒, म॒ध॒ सा,

नि॒ नि॒
सारि॒नि॒सा ऽ नि॒ध॒ ऽ म॒ ऽ म॒, रि॒रि॒सानि॒सा ऽ नि॒ध॒ ऽ म॒ ऽ म॒, म॒नि॒ध॒ ऽ म॒ ध॒ सा।

ध॒
(२) सा, रि॒सानि॒ध॒ ऽ सा, ऽ नि॒ ध॒ म॒ म॒ ऽ सा, सा ऽ नि॒ध॒ सा, साऽ नि॒ध॒ म॒ ऽ सा, ध॒ म॒ऽ म॒ऽऽ

ध॒ ध॒ म॒ म॒
सा, म॒नि॒ध॒ ऽ सा, नि॒ध॒ ऽ ध॒ म॒ ऽ म॒ म॒ ऽऽ सा, नि॒नि॒ध॒ म॒ध॒सा, ध॒ध॒म॒गम॒ सा, रि॒नि॒ नि॒ध॒ ध॒म॒ म॒म॒

नि॒ नि॒
ऽ म॒ ध॒ सा।।

(३) सा, रि॒सानि॒ध॒ ऽ सा ऽ नि॒ध॒ ऽ म॒ ऽ म॒, ध॒म॒नि॒ध॒ सा, नि॒ध॒ ऽ म॒ ऽ म॒ ऽ नि॒नि॒ध॒ म॒ ध॒

नि॒ नि॒
सा, नि॒ध॒ ऽ म ऽ म॒ ऽ म॒ ध॒ ऽ म॒ ऽ म॒, म॒ ध॒ सा ऽ नि॒सा।

म॒ ध॒
(४) रि॒रि॒सानि॒सा ऽ नि॒ध॒ ऽ म॒ ऽ म॒, सासानि॒ध॒ नि॒ ऽ रि॒रि॒सानि॒सा ऽ नि॒ध॒ ऽ म॒ ऽ म॒, म॒नि॒ध॒ म॒ ध॒

ध॒ नि॒ नि॒ सा नि॒ नि॒
सासानि॒ध॒ नि रि॒रि॒सानि॒सा ऽ नि॒ध॒ ऽ म॒ ऽ म, म॒ ध॒ म॒ ध॒ सा ऽ नि॒सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नि रि रि

(५) निरिगरि म, रिनि ऽ गरि ऽ गनि ऽ गरि ऽ म, रिरिसानिसा गरिम, निरि रिग ग ऽ म, निगगरि ऽ

ग रि म ध सारि

रिमगग ऽ गरि ऽ म, निनिधमध सा ऽ गगरिनिरि ऽ म, मगरिम ऽऽ सानिध मध सा, मगरि निरि म,

नि ग रि ग

सानि ऽ निध ऽ सा ऽ, मग ऽ गरि ऽ स, गरि मगरि ऽ सा ।

नि सा सा रि साग ध ध नि नि सा सा रि रि

(६) रिरिस निसा गगरिनिरि ममगरिग ऽ गरि म, निनिधमध सा निधनि रिरिनिसा गगरिनिरि ऽ

गग ग रि ध नि रि रि ❀ ❀ रि

ममगरिग ऽ गरि ऽ म, मनिनिध ऽ धसासानि ऽ निगगरि ऽ म, मऽधमघ सा ऽ निऽरिनिरिग ऽ गरिऽम,

ध रि रि रि ग रि

मधसासानि निध ऽ निरिमगग गरि ऽ म, मध नि ऽ निरिमग ऽ गरि म ऽ, म म ऽ म ग ऽ गरिमगरिऽसा ।

ध ग ध ग

(७) निरिगम म ∿∿ म, म म म ऽ म मग, गरि गम म ∿∿ म ऽ म ऽ म, निरिगम

ध ग ध

म ∿∿ म म ऽ मग, गरिगम म ∿∿ म म ऽ मग, रिरिसानिरिगम म ∿∿ म ऽ म ऽ मग, रिरिसानिसा

ध ध ग रि

गगरिनिरि ममगरिग ऽ म म ∿∿ म ऽ म ऽ मग, रिनि गरि मग गम म ∿∿ म ऽ म ऽ मग, ग ऽ गरि ऽ

ग ग ध रि ग व

म ऽ मग ऽ म ऽ मम ऽ म ∿∿ म ऽ म ऽ मग, निरिगरि ऽ रिगमग ऽ गममम ऽ म ∿∿ म ऽ म ऽ मग ऽ

गरिमग रि ऽ सा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(८) नि ऽ रिनि रि ऽ गरि ग ऽ मग म ऽ मृम मृ ऽ ऽ म ऽ मृम मग ऽ, निरिरिग ऽ रिगगम ऽ गममृम ऽ मृ ऽऽ म ऽ मृममग ऽ, निरिरिग ऽ रि रिगगम ऽ ग गममम् ऽ म मृ ऽ म ऽ मृममग ऽ गरिमृगरि ऽ सा ।

(९) निरिरिग ऽ निरिरिगगम ऽ निरिरिम म मम् ऽऽ म ऽ मृममग ऽ, निरिगम ऽ मृमगरि ऽ रिगमम् ऽ मृममग ऽ गममध् ऽ धम् मृम ऽ गरि मृगरिसा ।

(१०) निरिगम मृ ∿∿ म, म मृ ∿∿ म ऽ मृध् ऽ धृ मृ ∿∿ म, गम मृम ऽ ममृधम, रिग गम मृ ∿∿ म, रिग ऽ रिम ऽगम् ऽम, निरि रिग ऽ गम म मृ ऽ म, निरि रिग ऽ रि रिग गम ऽ ग गम मम ऽ म मृ ऽ म, मृमृमगम ऽ गरि मृगरि ऽ सा ।

(११) निरिगम मृ ∿∿ म, मृ धृ ऽ ऽ नि धृमृम् ऽ म, मृमृम गमध् ऽऽ नि धृमृम् ऽ म, ममग मृमृम धृ ऽ ऽ नि धमृम् ऽ म, गगरि ममग मृमृम धृ ऽ ऽ नि धृमृम् ऽ म, रिरिनि गगरि ममग मृमृम धृ ऽ ऽ नि धृमृम् ऽ म, मगरिमृगरि ऽ सा ।

(१२) निरिगम धनि ध्, निरि रिग गम मध् धृनि ध्, निधृनि मृ ऽ धृ नि ध्, धृमृध मृ ऽ निधृनि धृ ऽ ऽ धृनि ध्, मृमम् म ऽ धमृध् मृ ऽ निधृनि धृ ऽ मृनिधृ ऽ, गरिग रि ऽ मगम ग ऽ मृमम् म ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ग म् ध् ❀ म् ग म ❀ ❀ म् ग
ध्म्ध् म् ऽ निध्नि ध् ऽ नि ऽ ध्, निध्नि ध् ऽ ध्म्ध् म् ऽ; ध् ऽ म् नि ऽ ध्, निधनि ध् ऽ ध्म्ध् ऽ म्

ग ग म् ध् ❀ म् ग ग रि नि
म्मम् म ऽ धमध् म् ऽ निध्नि ध ऽ नि ऽ ध्, निध्नि ध् ऽ ध्म्ध् म् ऽ म्मम् म् ऽ मगम ग ऽ गरिग रि ऽ

रि ग ग म् ध ❀ ❀
मगम ग ऽ म्मम् म् ऽ ध्म्ध् म् ऽ निध्नि ध् ऽ नि ऽ ध्, धधम निनिध् म्ध् नि ऽ ध्, म्म्म ध्ध्म् निनिध्

❀ ❀ ❀
म्ध् नि ऽ ध्, ममग म्मन ध्धम् निनिध् म्ध् नि ऽ ध्, गगरि ममग म्मम ध्धम निनिध म्ध नि ऽ ध्,

❀
निरिगरि ऽ रिगमग ऽ ममम ऽ मम्धम् ऽ म्धनिध् ऽ नि ऽ ध्, म्ध्नि म्निध् मम्ध् म्ध्नि म्निध्, गमम्

रि
ध् म्ध्नि म्निध् ऽ, निध् ऽ धम् ऽ म्म् ऽ मग ऽ गरि म्गरि ऽ सा।

रि ग म् नि
(१३) नि रि गम ध् नि ऽ ध्, रिनि गरि मग म्म धम् निध् नि ऽ ध्; रिनिनि गरिरि

ध्
मगग म्मम धम्म् निध्ध् नि ऽ ध, रिनिगरि ऽ गरिनग ऽ मगम ऽ म्मधम् ऽ धम्निध् नि ऽ ध्,

ग म् म् ध् नि ध् रि
मिग रि ऽ रिम ग ऽ गम् म् ऽ मध् म ऽ म्नि ध् ऽ नि ऽ ध्, धम्धम् ऽ म्मम्ग ऽ मगमग ऽ गरि म्गरि ऽ सा।

नि
(१४) निरिग म धनि म्ध् सां ऽ निसां, निरि ऽ नि रिग ऽ रि गम ऽ ग मम् ऽ म मध् ऽ म् ध्

नि ग
सां ऽ निसां, निरिगरि रिगमग गमम्म मम्धम् म्धनिध् सां ऽ निसां, निरिगरि ऽ रिगमग ऽ गमम्म ऽ म्धनिध

ध ध्
ऽ सां ऽ निसां, रिनि गरि मग म्न धम् निध् सां ऽ निसां, रिनिनि गरिरि मगग म्मम धमन निधध सां ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निसा, गगरि रि ऽ ऽ ग ममग ग ऽ ऽ म मूमम म ऽ ऽ मू धधमू म ऽ धू निनिधू धू ऽ ऽ नि सा ऽ निसा,

निगगरि ऽ रि मग ऽ गममूग ऽ मूधधमू ऽ धूनिनिधू ऽ सा ऽ निसा, निगगरि रिनि ऽ रिममग गरि ऽ

गममूग मग ऽ मूधधमू मूग ऽ धूनिनिधू धूम ऽ धूमासानि निधू ऽ साऽनिसा, नि रि' निधमू ऽ म ग म धू

मू ऽ न ऽ म ऽ मूग ऽ ग रि मूगरि ऽ सा ।

(१५) निरि मूधूना ऽ निसा, निधू ऽ निमू ऽ निधू ऽ सा ऽ निसा, नि रि गम ऽ मू धू सा ऽ निसा, सा ऽ

निधू सा ऽ निसा, सा ऽ निधू मू धू सा ऽ निसा, सा ऽ सानिधू सा ऽ सानिधमू ऽ सा ऽ सानिधमूमगरिसा सा ऽ निसा,

निरि'निधमूऽन ऽ गरिमूगरिऽसा ।

(१६) सा ऽ रि'रि'सानिसा ऽ निऽनिधू, सा ऽ रि'रि'सानिसा ऽ सासानिधूनि ऽनिऽनिधू; सा ऽ निरि'सा ऽ

निऽनिध, साऽ धूसानिऽ निरि'सा ऽ निऽनिधू, सा ऽ मूनिधू ऽ धूसानिऽ निरि'सा ऽ नि ऽ निधू, सा ऽ ममम ऽ मूधमू ऽ

मूनिधू ऽ धसानि ऽ निरि'सा ऽ निऽनिधू, मू धू साऽनिसा; निरि'सा ऽ निऽनिधू ऽ, धूसानिरि'सा ऽ निऽनिधू ऽ,

मूनिधूसानिरि'सा ऽ निऽनिधू, मूध मूनिधसा निरि'साऽ नि ऽ निधू, मू धू सा ऽ, निरि'निधमूऽम, गरिमूगरिऽसा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(१७) निरि॒गम॒ध॒ निरि॒'ग ऽऽ गरि॒'म, ममगरि॒'ग ऽ मम॒'म ऽ म॒'म॒'मगम ऽ गरि॒' म॒'गरि॒'ऽसां, सां ऽ

रि॒'सांनिध॒ ऽ सांनिध॒म॒ ऽ निध॒म॒म ऽ ध॒म॒मग ऽ गमम॒म ऽ मम॒ध॒म॒ ऽ म॒ध॒निध॒ ऽ ध॒निरि॒'नध॒ऽम॒ऽम, म॒म॒मगम ऽ ममगरि॒ग

ऽ गरि॒म॒गरि॒ऽसा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग ललित

मुक्त तानें

निरिगम मगरिसा, निरिगममम मगरिसा, निरिगममगम रिगमगरिसानिसा, निरिगम । रिगरिगमगरिसा निरिगममम गम धधमध मममगम ममगम रिगमग रिसानिसा । निरिगम रिगमम गममम ममगम रिगमम रिसानिसा, निरगरि रिगमग गममम ममगम रिगमग रिसानिसा । निनिनि रिरिरि गग ममम ममगम रिगमग रिसानिसा । गरिरि मगग ममम ममगम रिगमग रिसानिसा । निरिगम धमऽम धममम ममगम रिगमग रिसानिसा । रिरिसा रिसासा गगरिगरिरि ममगमगग ममममगम रिगमग रिसानिसा । गरिरि गगगरिसा, मगग मममममग, धमम धधधमग, मममग रिसानिसा । निरिगम धधमम ममगग रिसानिसा, धमम धमम ममगग मगरिसानिसा । गमम गमम गम गमधधु ममगम ममगम रिसानिसा । गमगम मममम मधमध ममधम गमगम गममम मगरिसा । गरिरि मगग मम धमम धमम ममम ममगम गममम मगरिसा । निरिगमगरि रिगममगग मममधमम ममगम रिगमगरिसानिसा । रिसानिसा म रिग मगम धममम ममगम गममम मगरिसा । रिरिसानिसा गगरिनिरि ममगरिग ममगम धधमम ममगम ममगरिग रिगमगरिसानिसा । गरि रिसासा मग गरिरि मम मगग धम ममम मम मगग मग गरिरि गरि रिसासा । निगगरि रिसासा, रिममग गरिरि, गममम मगग, मधधम ममम, ममम मगग, रिममग गरिरि, रिगगरि रिसासा । निरिगम धधमम मगरिसा; निरिगमग रिगरि रिगममम गमग गमधम ममम, गमगमम गमग, रिगरिमग रिगरि, रिगमग रिसानिसा । निरिगमग रिगमम गमग रिगरि, रिगमम गममधम ममम गमग, गममधम ममनिध मधम ममम, धनिध मधम, मधम ममम गमग, ममम गमग रिगरि, गमग रिगरि सारिसा । निरिगम धनिसानि धममगरिसा, निधसानिधम मगरिसा, धमनिध सानिधम मगरिसा, मगमम धमनिध सानिधम मगरिसा, गरिमग मनधम निधसानिधम मगरिसा, रिनिगरि मगमम धमनिध सानिधम मगरिसानिसा । निरिगम धनिमध सानिधम मगरिसा । निरिगमगरि रिगमममग गममधमम ममधनिधम मधनि निनिध धनि-सारि सानिधम मगरिसानिसा । गरिमग मनिऽम रिगमगरिसानिसा, धमनि सानिरि सानि धममगरिसा । रिऽऽगमगरिसा, धऽऽनि सानिधम मगरिसा । रिगम रिगम रिग रिग रिग मगरिसा, धनिसा धनिसा धनि धनि धनि सानिधम, ममध ममध मम मम मम । धधमम, गमम गमम गम गम गम ममगग, रिगम रिगम रिग रिग रिग मगरिसा । निरिगम धनिसारि सानिधममगरिसा । निनिनि गगगरिसा, गगग निनिनि धम, ममम रिरि रिरि सानि धममगरिसानिसा । निनिनि गगग निनिनि गंगं रिंसासानि धममग रिसानिसा । निगऽग रिसानिसा, गनिऽनि धमगम, निगऽगं रिंसानिसां सानिधम मगरिसा । निरिगमधनि निरिंगंमं मंगंरिंसां सानिधम मगरिसानिसा । मगरिसा सानिधम मंगंरिंसा सानिधम मगरिसा । निरिगम मगरिसा, मधनिसां सानिधम, निरिंगंमं मंगंरिंसां सानिधम मगरिसा । गरिरि गगगरिसा, निधध निनिनिधम, गंरिंरिं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गंगंगरि्'सां सांनिधम् मगरि्सा। रि्गमंगरि्सा धनिसांनिधम् रि्'गंमंगंरि्'सां धनिसांनिधम् रि्गमगरि्सानि्सा। रि्गमऽऽम मगं
रि्सा, धनिसांऽऽसां सांनिधम्, रि्'गंमंऽऽमं मंगंरि्'सां, धनिसांऽऽसां सांनिधम्, रि्गमऽऽम मगरि्सानि्सा रि्गरि्मऽम मगरि्सा,
मधमसांऽसां सांनिधम्, रि्'गंरि्'मंऽमं मंगंरि्'सां, सांनिधम् मगरि्सानि्सा निसांरि्'सां निसांरि्'सांनिध्, धनिसांनि धनिसांनिधम्,
रि् ध् रि्' ध्
ममधम् ममधमग, रि्गमग रि्गमगरि्सा। रि्गग गमगरि्सा, धनिनि निसांनिधम्, रि्'गंगं गंमंगरि्'सां, धनिनि निसां-
रि्
निधम्, रि्गग गमगरि सा नि्रि्गग धनिसांरि्' सांनिधम् मगरि्सा। निसांरि्'सां धनिसांनि निसांरि्'सां धनिसांनि
मधनिध्, निसांरि्'सां धनिसांनि मधनिध् ममधम्, निसांरि्'सां धनिसांनि मधनिध् ममधम् गममम, निसांरि्'सां धनिसांनि
मधनिध् ममधम्, गममम रि्गमग, निसांरि्'सां धनिसांनि मधनिध् ममधम् गममग रि्गमग रि्सानि्सा। रि्'सांनिसां
सांनिधनि, रि्'सांनिसां सांनिधनि निधमध्, रि्'सांनि। सांनिधनि निधमध् धममम्, रि्'सांनिसां सांनिधनि निधमध्
धममम् ममगम, रि्'सांनिसां सांनिधनि निधमध् धममम् मगरि्ग, रि्'सांनिसां सांनिधनि निधमध् धममम् ममगम
मगरि्ग गरि्सारि्, रि्'सांनि्सां सांनिधनि निधमध् धममम् ममगम मगरि्ग गरि्सारि् रि्सानि्सा। नि्रि्गमधनि
मरि्'गंमंगंरि्सांनिधम् मगरि्सा। नि्रि रि्ग गम मम् मध धनि निसां निरि्' रि्'गं गंमं मंगं गंरि्' रि्'सां सांनि
निध् धम् मम मग गरि् रि्सा। नि्रि् रि् रि्गग गमम ममम् मधध् धनिनि निसांसां निरि्'रि्' रि्'गंगं, गंमंमं, मंमंगं
गंगंरि्' रि्'रि्'नि निनिध् धधम् ममम ममग गगरि् रि्रि्सा नि्रिसा। नि्रिगमगरि् रि्गममग गमधमम्
ममधनिधम् मधनिसांनिध् धनिसांरि्'सांनि धमगरि्सा। नि्रि्रि् रि्गग, रि्गग गमम, गमम ममम्, ममम् मधध्,
मधध् धनिनि, धनिनि निसांसां, निसांसां निरि्रि्' निरि्'रि्' रि्'गंगं गंमंमं, मंमंगं गंगंरि्', गंगंरि्' रि्'रि्'नि,
रि्'रि्'नि निनिध्, निनिध् धधम्, धधम ममम, ममग, गगरि् गगरि् रि्रि्सानि्सा। नि्रि्मऽम मधनिसांऽसां
निरि्'गंमंऽमं मंगंरि्'सां, सांनिधमऽम् मगरि्सा, सांनिधमऽम् मधनिसांऽसां सांनिधमऽम् मगरि्सानि्सा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग ललित

विलम्बित ख्याल—एकताल

गीत

स्थायी—रैन का सपना,
कासे कहूँ मोरी आली।

अन्तरा—सोवत सोवत आँख खुली जब,
कोउ न पायो अपना ॥

स्थायी

७		९		११	
				– ग मृ ग	रिंसासानि़ रि़ ग म
				ऽ रै • न	का • • • • स प
×	.	०	.	५	
धृ मृ – – –	म – – – मृ	ग ग ममभग – – – रि़	रि़ ग – मृग रि़	सा – – –	रि़ नि़ रि ग म
ना ऽ ऽ ऽ	• ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ •	• •• ऽऽऽ •	• ऽ • • •	• ऽ ऽ ऽ	का • से क
०		९		११	
धृ मृ ~~~	म – – म मृ	मृधृ - नि धृ - धमृ -	मृममग - म म	धृ - - नि धृ-धमृ - ग	रि़सासानि़ - रि़गम
हूँ ~~~	• ऽ ऽ मो •	री • • ऽ आ ऽ•• ऽ	ली ••• ऽ • •	ऽऽ • रैं ऽ • ऽ न	का • • • ऽ • सप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

×		०		५	
	ध़				
निध़ - निम़ - ध़	सां सां	सां	निसां - - - नि रिं -	सां	निसां - - -
सो • ऽ • • • ऽ	व त	सो	• • ऽ ऽ ऽ ऽ • व ऽ	त	• • ऽ ऽ ऽ

०		३		११	
	गं				
रिं सांसांनि - - -	- रिं गंरिं	सां	निसां • • - सांरिं • • -	रिं सां निध़ - नि	धम़ धम़ - ध़
आँ • • • ऽ ऽ ऽ	ऽ ख • खु	ली	• • ऽ ऽ ऽ • • ऽ ऽ	ज • ब • ऽ •	• • • • ऽ •

×		०		५	
ग ग	ग	ध़		ध़ नि	
मम़ मम़ - - - म़	म़म मग - - -	• म़ ध़ - नि म़ - - ध़	सां	सां - नि रिं -	- - । रिं
• • • • ऽ ऽ ऽ •	• • • • ऽ ऽ ऽ	ऽ को उ ऽ ऽ • न ऽ ऽ •	पा	यो ऽ • • ऽ	ऽ ऽ अ प

०		९
नि - - रिं नि - - रिं निध़ ध़ - - नि	ध़ - - नि धम़ म़ - - ध म़ - - ध़	म़म म - - म़ म - - म़ म
बा ऽ ऽ • • ऽ ऽ • • • • ऽ ऽ •	• ऽ ऽ • • • • ऽ • • ऽ ऽ •	• • • ऽ ऽ • • ऽ ऽ • •

	११	
म ग		
म म़मग - म म़	ध़ - - नि ध़ - ध म़ - ग	रिंसांसांनि रिं ग म
• • • • ऽ • •	• ऽ ऽ • रै ऽ • • ऽ न	का • • • • स प

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग ललित

त्रिताल

गीत

स्थायी—पियु पियु करत पपीहरा,
उड़ री कोयलिया कवन देस मोरे पिया को मिलन कब होवे।

अन्तरा—झिंगर झिंगर दादुर बोले, मुरवा बोले बन बन के।
आवन सुनी प्रीतम मन रंग की, मगन भए सब घर के जियरा।

स्थाई

				५				०				११			
								ग	रि्	ग	म्	ग	रि	रि्नि्	रि्
								पि		पि	यु	क	र	त •	प
म	–	–	म	म्	–	म	–	म्	ध्	म्	(नि)ध्	सां	सां	सां	–
पी	ऽ	ऽ	ह	रा	ऽ	•	ऽ	उ	ड़	रि	को	य	लि	या	ऽ
(नि)रि्ं	नि	ध्	(नि)म्	ध्	म्	म	ग	म्	ध्	म्	(नि)ध्	सां	सां	(ध्)नि	रिं
क	व	न	दे	•	स	मो	रे	पि	या	को	मि	ल	न	•	•
नि	ध्	म्	ध्ध्	म्	–	(ग)म	ग								
क	व	•	• •	हो	ऽ	•	वे								

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा

				५				०				१३			
								म्	ध्	म्	ध्	सांसां	–	–	सां
								झि	ग	र	झि	गा ॰	ऽ	ऽ	र
सां	सांनि	सां	रिं'	रिं'निनि	–	ˎ	–	रिं'	नि	ध्	–नि	धन	धनि	म्	ध
दा	॰॰	दु	र	बो ॰ ॰	ऽ	ले	ऽ	मु	र	वा	ऽ ॰	बो	॰	ले	॰
म्	मध्	रिं'	नि	म्	म्	म	–	–	मम	म	म	म	–	म	–
ब	न ॰	ब	न ॰	के	ऽ	॰	ऽ	ऽ	आव	न	सु	नी	ऽ	प्री	ऽ
											नि				
ग	रि	ग	म्	ग	रि	सा	–	–	मध्	म्	ध्	सां	–	सां	सांनि
त	म	म	न	रं	ग	की	ऽ	ऽ	मग	न	भ	ये	ऽ	स	ब ॰
रिं'	नि	ध्	म्-ध्	नि	ध्	म्	म								
ष	र	के	॰ऽ॰	जि	य	रा	॰								

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तानें

	×				५				०				१३			
१)						रि॒ग	मग	रि॒सा	पि	यु	पि	यु	र	ट्	त	प
२)					नि॒रि॒	गम	मग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
३)				नि॒रि॒	गम	मग	मग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
४)				नि॒रि॒	गम	-म॒	मग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
५)			नि॒रि॒	गम	ध॒ध॒	म॒म	मग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
६)	नि॒रि॒	गरि॒	रिग	मग	गम	म॒म	ग मग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
७)	नि॒रि॒	गग	रि॒ग	मम	गम	म॒म	ग मग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८)	गरि॒	नि॒रि॒	मग	रि॒ग	म॒म	गम	ग मग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,
९)	नि॒रि॒	रि॒ग	गम	मध॒	ध॒म॒	म॒म	ग मग	रि॒सा	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	×				५				०				१३			
१०) रि॒ग	(रि॒) गरि॒	गम	(ग) मग	मध॒	(म) ध॒म॒	(ग) मग	रि॒सा	,		„		„	„			
११) नि॒रि॒	गम	गरि॒	रि॒ग	मम॒	मग	(ग) मग	रि॒सा	„	„	„		„	,	„	„	
१२) (ग) नि॒रि॒	(म) रि॒,ग	गग,	(म) मम	म, म	म॒म॒,	मग	रि सा	„	„	„	„	„	„	„	„	
१३) गग	रि॒ग	रि॒सा	म॒ध॒	मम॒	मग	मग	रि॒सा		,	„	„	„	„	„	„	
१४) ध॒ध॒	म, म॒	म॒म,	(ग) मम	(रि॒) ग, ग	गरि॒,	(रि॒) गग	रिं॒सां	„	„	„	„	„	„	„	„	
१५) (रि॒) नि॒ गग	(रि॒) नि॒ग	गरि॒,	नि॒रि॒,	(ग) मम	(ग) ग, म	मग,	रि॒ग,	म॒म॒	(म) म, म॒	म॒म,	गम,	(म) धध॒	(म॒) म, ध॒	ध॒म॒,	म	
(ग) म॒म॒	(ग) म, म॒	म॒म,	गम	(ग) मग	रि॒ग	मग	रि॒सा	पि	यु	पि	यु	„	,	„	„	
१६) नि॒रि॒	गम	ध॒सां	– नि	ध॒म॒	मग	रि॒सा	नि॒सा	„	„	„	„	„	„	„	„	
१७) नि॒रि॒	गम	धसां	सांनि	धम॒	मग	रि॒सा	नि॒सा	„	„	„	„	„	„	„	„	
१८) निरि॒	गम	– म	मग	रि॒सा	नि॒सा	म॒ध॒	निसां	– रिं॒	सांनि	ध॒म॒	मग	रि॒सा	गरि॒	गम॒	गरि॒	नि॒रि॒
													पियु	पियु	कर	त प

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×				५				०				१३			
म	–	ऽ	म	गरि्	गम्	गरि्	नि॒रि्	म	–	–	म	गरि्	गम्	गरि्	नि॒रि्
पी	ऽ	–	ह	पियु	पियु	कर	तप	पी	ऽ	ऽ	ह	पियु	पियु	कर	तप

१९) नि॒रि्	गग	रि्सा	रि्ग	मम	गरि्,	गम	म्म्	मग,	मम्	ध्ध्	म्म,	म्ध्	निनि	ध्म्,	ध्सां
निरि्	सांनि	ध्म्	मग्	रि्स	नि॒रि्	गम	ध्नि	सां -	गरि्	– ग	म् –	गरि्	– सा	– –	रि्
									पियु	ऽ पि	यु ऽ	कर	ऽ त	ऽ ऽ	प

२० नि॒रि्	नि॒रि्	रि्ग	रि्ग	गम	गम	मम्	मम्	म्ध्	म्ध्	्नि	धनि	म्ध	म्ध्	मम	मम्
गम	गम	रि्ग	रि्ग	रि्ग	मग	रि्सा	नि॒सा	पि	यु	पि	यु	क	र	त	प

२१) रि्ग	रि्,रि्	गरि्,	गम	ग,ग	मग,	मम्	म,म	म्म,	म्ध्	म्,म्	ध्म्	ध्नि	ध्ध्	निध्	म्ध्
म्,म्	ध्म्,	मम्	म,म	म्म,	गम	ग,ग	मग,	रि्ग	मम्	मग	रि्सा	गरि्	गम	गरि्	सारि्
												पियु	पियु	कर	त प

२२) नि॒रि्	सा रि्सा,	रि्ग	रि् गरि्,	गम	ग मग,	मम्	म म्म,	म्ध्,	म् ध्म्,	ध्नि	ध निध्,	निरि्'	नि रि्'नि,	ध्नि	ध नि
म्ध्	म् ध्म्,	म्म्	म म्म,	गम	ग मग,	रि्	रि् गरि्,	नि॒रि्	सा रि्सा,	पियु	– पि	यु –	कर	ऽ त	ऽ प

२३) रि्ग	रि्,रि्	गरि्,	रि्ग	रि् गरि्,	गम	ग, ग	मग	गम	ग मग,	मम	म, म	म्म,	मम	म म्म,	म्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मम्	धम्	मध्	म धम्,	धनि	ध, ध्	निध,	धनि	ध् निध्,	निरिं'	नि, नि	रिं'नि,	निरिं'	निं रिं'नि	धनि	ध्,ध्

निध्,	धनि	ध निध्,	मध्	म, म	धम्	मंध्	म धम्,	मम्	म, म	मम,	मम्	मम,	गम	ग, ग	म ग

गम	ग मग,	रिग	रि, रि	गरि,	रिग	रि गरि	निरि	नि रिसा	गरि	– ग	म –	ग	रि	नि	रि
									पियु	ऽ पि	ऊ ऽ	क	र	त	प

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राग ललित

धमार

गीत

स्थायी—लाल हो कैसे जाउँ आली निकसी ननद की चोरी।

अन्तरा—वा दिन को डर मेरे हिरदिया (हृदय) में ता दि बाँह मरोरी ॥

स्थायी

×			०		६		०			११		०	
										–नि॒	–रे॒	ग	म
										ऽला	ऽल	हो	•
म	–	–	म	–	म	म	म	म्म	म्ग	–म	ध्	सां	–
कै	ऽ	ऽ	से	ऽ	जा	उँ	आ	ली•	••	ऽनि	क	सी	ऽ
नि	रें॒	नि	म्	ध्	म्	गम	ग	म	ग	–नि॒	–रे॒	ग	म
न	न	द	की	•	–	••	चो	–	री	ऽला	ऽल	हो	•

अन्तरा

म्	ध्	–	सां	–	सां	–	सां	–	–	सां	–	सां	–
वा	•	ऽ	दि	ऽ	न	ऽ	को	ऽ	ऽ	ड	ऽ	र	ऽ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

×			०		१		०			११		०	
नि	–	–	रिं'	–	गं	रिं'	सं'	–	–	नि	रिं'	नि	ध्
में	ऽ	ऽ	रे	ऽ	हि	इ	या	ऽ	ऽ	में	०	०	०
म	ध	म	ग	–	म	–	सां	–	–	सां	–		–
०	०	०	०	ऽ	०	ऽ	ता	ऽ	ऽ	दि	ऽ	न	ऽ
नि	–	रिं'	नि	ध्	म्	ध्	ग	म	ग	–नि्	–रि्	ग	म
बाँ	ऽ	०	ह	म	रो	०	०	०	री	छा	ऽल	हो	०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिशिष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लेखक के अन्य प्रकाशन

१. सङ्गीताञ्जलि—प्रथम भाग (सङ्गीत प्रवेशिका प्रथम वर्ष का पाठ्यक्रम) द्वितीय संस्करण—मू० ३)

२. सङ्गीताञ्जलि—द्वितीय भाग (सङ्गीत प्रवेशिका द्वितीय वर्ष का पाठ्यक्रम) मू० ३)

३. सङ्गीताञ्जलि—तृतीय भाग (डिप्लोमा प्रथम वर्ष का पाठ्यक्रम) मू० ५)

४. सङ्गीताञ्जलि—चतुर्थ भाग (डिप्लोमा द्वितीय वर्ष का पाठ्यक्रम) मू० ५)

५. सङ्गीताञ्जलि—पञ्चम भाग (बी० म्यूज़० प्रथम वर्ष का पाठ्यक्रम) मू० २)

६. प्रणव-भारती—प्रथम भाग (स्वर-शास्त्र) मू० ९)

सब की सम्पादिका – डॉ. प्रेमलता शर्मा

आगामी प्रकाशन

१. सङ्गीताञ्जलि—सप्तम भाग (एम० म्यूज़० प्रथम वर्ष का पाठ्यक्रम)

२. सङ्गीताञ्जलि—अष्टम भाग (एम० म्यूज़० द्वितीय वर्ष का पाठ्यक्रम)

३. प्रणव-भारती—द्वितीय भाग (राग-शास्त्र)

४. प्रणव-भारती—तृतीय भाग (रस-शास्त्र)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi